बृहद्

संस्कार-पद्धतिः

(बृहद् कर्मकाण्ड पद्धतिः द्वितीयार्द्धः)

जिसमें
जीवन में होने वाले समस्त सोलहों
संस्कार कर्म्म की सम्पूर्ण विधि
दी गई है।



सम्पादक-
स्व० पं० गोपालदत्त शास्त्री



प्रकाशक-

उदित प्रकाशन

मथुरा (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण सन् १९[illegible]

मूल्य २८)००

मुद्रक- गोवर्द्धन प्रेस, काजी पाड़ा मथुरा।

बृहद्

संस्कार-पद्धतिः

(बृहद् कर्मकाण्ड पद्धतिः द्वितोयार्द्धः)

जिसमें
जीवन में होने वाले समस्त सोलहों
संस्कार कर्म्म की सम्पूर्ण विधि
दी गई है।



सम्पादक-

स्व० पं० गोपालदत्त शास्त्री



प्रकाशक-

उदित प्रकाशन

मथुरा (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण	सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन	मूल्य
सन् १९८५		२८)००

मुद्रक—गोवर्द्धन प्रेस, काजी पाड़ामथुरा।

विषय–सूची

❀ संस्कार पद्धति ❀

षोडश संस्कारों का रहस्य–प्राचीन प्रथा यह प्रचलित थी कि-सभी व्यक्ति अपनी-अपनी कुल-मर्यादाके अनुसार अपनेवेद, संहिता, परम्परा एवं गृह्य-सूत्र का आधार लेते हुएही संस्कार किया करते थे, तथा उनके लिखित-वचनों का सर्वथा पूर्णतया पालन करते थे। जैसे कि,ऋग्वेदी आश्वालायन-संहिता वाले व्यक्ति-'आश्वालायन गृह्य-सूत्र' का, शुक्ल-यजुर्वेदी वाजपेयी-संहितावाले-'पारस्कर गृह्य-सूत्र'का,कृष्ण-यजुर्वेदी,अपनी कृष्ण यजु० संहिताके अनुसार-'आपस्तम्बगृह्य-सूत्र' का, सामवेदी जैमिनी संहिता वाले-'जैमिनी गृह्य-सूत्र' का, कौथुमी-संहिता वाले-'गोभिल सूत्र' का एवं अथर्ववेदी-पैप्पलाद संहिता वाले व्यक्ति-'कौशिक गृह्य-सूत्र' का तथा शौनक संहिता वाले व्यक्ति-'शौनक गृह्य सूत्र' का पूर्ण-अनुसरण किया करते थे। आजसभी व्यक्ति अपने वेद,संहिता,तथा सूत्रों को प्रायः भूल चुके हैं। वे अपनी परम्परागत कुल-मर्यादा तकको भी नहीं जानते। यही एक अपनी हिन्दू-जातिके पतन का मुख्य कारण है। हमकौन हैं? किस धर्म मर्यादाके हैं? एवं किस गृह्य-सूत्रके अधिकारी हैं? यह प्रत्येक व्यक्तिको जानना, परम-आवश्यक है। इस विषय में विद्वानों ने पूर्व ऋषि-महर्षियों के अकाट्य-वचनानुसार अनेक निबन्ध-ग्रन्थ लिखे हैं, यथा-धर्म्म-सिन्धु, निर्णय-सिन्धु, वीर–मित्रोदय, संस्कार–दीपक

संस्कार-गणपति, स्मृति-चन्द्रिका, एवं 'प्रयोग-पारिजात' आदि। संस्कारों में प्रथम वेद, संहिता, सूत्र, ऋषि-गोत्र, प्रवर, शाखा-आदि का ज्ञान होना परम-आवश्यक है, साथ-साथ अपनी कुल-मर्यादा [कुलाचार] जानना भी मुख्य है। सभी द्विज-मात्र षोडश संस्कारों के पूर्णाऽधिकारी हैं। उन्हें सविधि १६ संस्कार करने एवं कराने चाहिए। षोडश-संस्कारों के निम्न नाम हैं–

'गर्भाधानं पुंसवनं, सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रिया निष्क्रमणोऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥ १ ॥
कर्णवेधो व्रतादेशो, वेदारम्भक्रिया-विधिः।
केशान्तः स्नानमुद्वाहो, विवाहाग्नि-परिग्रहः
चेताऽग्निसग्रहश्चेति,संस्काराः शोडशस्मृताः ॥ २ ॥

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, मेधा-जनक जात-कर्म, षष्ठीकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ा [मुण्डन] करण, कर्णभेध, विद्यारम्भ [अक्षरारम्भ] उपनयन [यज्ञोपवीत] केशान्त, वेदारम्भ,समावर्तन[स्नान], वाग्दान, विवाह [अग्न्याधान], वानप्रस्थ धर्म,संन्यास धर्म तथा पितृमेध वा अन्त्येष्टि कर्म-इत्यादि सभी संस्कार एवं कर्म, शास्त्रविधि द्वारा करने चाहिए।

संस्कारों के लिए यह स्मरण रखना चाहिए कि कर्ता स्नान करके पूर्वाऽभिमुख होकर, नवीन वस्त्र धारण करके मार्जन, आसन शुद्धि,शिखा बन्धन,तिलक आचमन,प्राणाया-मादि करे, पुनः ब्राह्मणों के द्वारा 'स्वस्तिवाचन' आदि करा-

कर देशकाल उच्चारण-पूर्वक प्रधान-संकल्प करे। गणपति, मातृका, नवग्रहादि-पूजन करे। मन्त्रों के आदि में 'ॐ' का उच्चारण अवश्य करे। बालकों का संस्कार समन्त्रक तथा बालिकाओं का निर्मन्त्रिक करना चाहिये, किन्तु-विवाह एवं हवनादि में दोनों के समंत्रक ही होंगे। संस्कार समाप्ति होने पर उत्तरांग-पूजन करके देवताओं का विसर्जन करे पुनः ब्राह्मणों को भोजन करावे एवं उन्हें यथेष्ठ-दक्षिणा देवे।

❀ अथ गर्भाधान संस्कार: ❀

ऋतुमती शुद्ध जल से चौथे-दिन स्नान करके किसी सुन्दर-देवता के चित्र का, अथवा दर्पण में अपने-मुख का अवलोकन करे। पुत्र की इच्छावाली-पत्नी समदिनों में, एवं कन्या की इच्छावाली-पत्नी विषम-दिनों में सुमुहूर्त देखकर प्रातःस्नान करे और नूतन-वस्त्रालंकार धारण करे। पति भी गर्भाधान के निमित्त मङ्गल-स्नान करके वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अपनी पत्नी के साथ पूर्वाऽभिमुख करके शुभासन पर बैठ जावे और पत्नी को वाम-भाग में बिठावे। पीछे से उनके ऊपर सौभाग्यवती-स्त्रियाँ मङ्गल-गान करती हुई चन्दनाक्षत पुष्पों का प्रक्षेप करें।

ॐस्वस्ति न ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाःस्वस्ति नःपूषा विश्शव वेदाः। स्वस्तिनस्ताक्ष्यों ऽअरिष्ट-नेमिःस्वस्तिनो बृहस्पतिर्द्दधातु ॥ ॐशान्तिः ३ सुशान्तिर्भवतु ॥

ॐ मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुड़ध्वजः
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनो हरिः ॥

पुनः पति-पत्नी की परस्पर ग्रन्थि-बन्धन करके, सौभाग्यवती-स्त्रियाँ पत्नी की झोली में ऋतुफल एवं हरा-श्रीफल रक्खें-

ॐ याः फलिनीर्य्या अफलाऽअपुष्प्पा याश्च पुष्प्पिणीः। बृहस्प्पति प्प्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्व ७ हसः ॥

ततः कर्ता, संकल्पं कुर्य्यात्-

ॐ अद्येत्यादि० अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकप्रवरो ऽमुकनाम शर्म्मा, वर्म्मा, गुप्तोऽहं, अमुकनामराशेरस्याः पत्न्याः संस्कारातिशय द्वारा, अस्याञ्जनिष्यमाणसर्वगर्भाणां बीजगर्भसमुद्भव दुरितानां निबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं, तदङ्गत्वेनादौ श्रीगणपत्यादिदेवता–पूजनपुरस्परं सुखशान्तिपूर्वकं गर्भाधानसंस्कारञ्च करिष्ये ॥

इति संङ्कल्प्य, सूर्य्यदर्शनं कुर्य्यात् ॥ ततो दम्पती ॐ आदित्यमिति मन्त्रेण सूर्य्यायनमस्कारं कुरुताम्। मन्त्रो-यथा-

ॐआदित्यङ्गर्ब्भम्पयसा समङ्ग्धि सहस्त्रस्य प्रतिमां व्विश्वरूपम् । परिवृङ्ग्धि हरसामाभिम ँ स्तथाः शतायुषङ्कृणु हि चीयमानः ॥

ततः कर्त्ता सायङ्कालीनं नित्यकर्म कृत्वा, निशीथे शयनागारेप्रविश्य, शुभमञ्चके प्राक्शिरः शयानामुत्तानां पत्नीं कृत्वोदङ् मुखो दक्षिणकरेण पतिर्वध्वा नाभिदेशे हस्तं धत्त्वाऽभिमृशन्-

"ॐ पूषेत्यादि" मन्त्रञ्जपेत्—ॐ पूषा भग ँ सविता मे दधातु रुद्र स्तष्टारूपाणि तेजो व्वैश्वानरो दधातु । कल्पयतु ललामगुम् । ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पि ँ शतु । आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्ब्भं दधातु ते ॥

ततः तत्रोपविष्टः पूर्वाभिमुखोभूत्वा ॐ गर्भं धेहीत्यनेनैतामाभिमन्त्रयेत्-

ॐ गर्ब्भं धेहीति—प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो भगोदेवताऽभिमन्त्रणे विनियोगः ॥

ॐ गर्ब्भन्धेहि सिनीवालि गर्ब्भन्धेहि पृथु-

ष्णुके । गर्भं तेऽअश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ ।

ततो अङ्गालिंगनम् । तन्मन्त्रः-

ॐ गायत्त्रेण त्वा चच्छन्दसा परिगृह्णामि त्त्रैष्टुभेन त्वा चच्छन्दसा परिगृह्णामि जाग्र-तेन त्वा चच्छन्दसा परिगृह्णामि सुक्ष्माचासि शिवाच्चासि स्योनाचासि सुषदा चास्यू-र्ज्जस्वती चासि पयस्वती च ॥ ॐ सुपर्णो-ऽसि गुरुत्माँ स्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृह-द्रथन्तरे पक्षौ । स्तोमऽआत्मा छन्दा ᳪ स्य-ङ्गानि यजू ᳪ षि नाम । सामते तनूर्वामदेव्यं यज्ञा यज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः । सुप-र्णोऽसि गुरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥

ततो रेतः स्रावणम् ॥ तत्र-मन्त्रः--

ॐरेतोमूत्त्रं व्विजहाति योनिम्प्रविशदिन्द्रि-यम् । गर्भो जरायुणावृतऽउल्वञ्जहाति जन्मना ऋतेन सत्यमिन्द्रियंव्विपान ᳪ शुक्र-मन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतम्मधु ॥

इतिमन्त्रेण वीर्यं स्त्रावणम् ।।

फिर सुसज्जित अभग्न-शय्या पर लेटी हुई कामातुरा-पत्नी के साथ पति प्रदोष काल के उपरान्त प्रसन्न चित्त होता हुआ अभिगमन करे। पुनः दम्पत्ती परस्पर हृदय मिला कर मिलें। तत्र मन्त्रः-

ॐ यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शत ७ शृणुयाम शरदः शतम् ।।सङ्कल्पः।। कृतस्य गर्भाधान-कर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं यथासंख्याकान् ब्राह्मणान् तृप्तिपूर्वकं भोजयिष्ये तेन श्रीकर्माङ्गदेवताः प्रीयन्ताम् ।।

फिर 'स्वस्ति वाचन' पढ़कर कुल-देवियों तथा मातृकाओं की यथाविधि पूजा करके उनका विसर्जन करे--

"ॐ" यान्तु मातृगणाः सर्वाः, पूजां संगृह्य मामकीम्। इष्टकामार्थसिद्ध्यर्थं, पुनरागमनाय च ।।" इत्यलम् ।।

* गर्भाधान के संबन्ध में ध्यान रखने योग्य बातें *

प्रथम संस्कार "गर्भाधान संस्कार है" आत्मा-प्रकृति-विकार-युक्त रज [स्त्री-अंश] तथा वीर्य [पुरुष-अंश] का

सम्मिश्रण होना 'गर्भ' कहलाता है तथा उसका गर्भाशय में स्थापित करना ही 'गर्भाधान' है। गर्भाधान-संस्कार पितृऋण से मुक्त होने के लिये तथा धार्मिक-बुद्धिवाली सन्तान उत्पन्न करने के लिये किया जाता है। इससे क्षेत्र शुद्धि होती है। इस संस्कार से भावी-सन्तान धर्ममयी बुद्धि-वाली होती हुई, विश्व विजयता प्राप्त करती है। धर्म-शास्त्र एवं ज्योतिष-शास्त्र के वचनानुसार शुभ-मुहूर्त-

"उत्तरात्रयमृगहस्ताऽनुराधारोहिणीस्वातिश्रवणधनिष्ठाशततारकासु, षष्ठ्यष्टमीं पञ्चदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वाऽन्य तिथीषु,सूर्य-शनिभौमवारान्हित्वान्य वारेषु वृषमिथुनकर्कसिंहकन्यातुलाधनुमीन-लग्नेषु, समरात्रौ गर्भाधानं कार्यम् [मु०चि० संस्का० प्र०५ पी०टीका०]

में किया गया गर्भाधान कभी निष्फल नहीं जाता, अपितु गर्भस्थबालक बलिष्ठ होता है तथा माता एवं बालक को आरोग्यता भी मिलती है। गर्भस्थिरता के लिये ऋतुस्नान से १६ रात्रियां ही आयुर्वेद एवं धर्मशास्त्रों में बताई गई हैं जिनमें ऋतुकाल से ५ रात्रियों [रजोदर्शन से पाँचवे दिन तक] गर्भ-स्थापित करना अत्यन्त निषेध है। कारण कि-मासिक धर्म के समय स्त्री के गर्भाशय में रज की गर्मी रहती है, ऐसी स्थिति में संयोगवश यदि गर्भ रुक जाय, तो गर्भोत्पन्न सन्तान को उसी गर्मी के कारणमाता, मोती-झला आदि रक्त-विकारात्मक जटिल-रोग उत्पन्न हो जाते हैं। 'युग्मासु पुत्रा जायन्ते'-[मनुः] अर्थात् समदिनों में [जैसे कि.६-८-१०-१२-१४-१६ वीं रात्रि में] गर्भाधान पुत्रो-

त्पत्ति-कारक है, तथा विषम-दिनों में [अर्थात् ७।९।१५ वीं रात्रि में] गर्भाधान कन्या-उत्पत्ति कारक है। ग्यारहवीं, तेरहवीं रात्रि में नपुंसक-सन्तान होने का भय रहता है। ऋतुमती स्नाता चौथे दिन जैसे भी पुरुष को देखती है, उसी के अनुसार गर्भ स्थिति होने पर सन्तान का वैसा ही स्वरूप एवं लक्षण आदि बन जाता है। [सुश्रुत सं० शारी०]। अतः पुत्रार्थिनी-स्त्रियों को चाहिए कि वे ऋतु के चतुर्थ दिन शुद्ध स्नान करके किसी सुन्दर, रूपवान् एवं बलवान् बालक का अथवा किसी सुन्दर-चित्र का अवलोकन करें। पुरुषों को चाहिए कि वे निरन्तर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अपनी स्त्री के मासिक धर्म [ऋतुकाल] के अनन्तर ही सम-रात्रियों में चतुर्दशी अमावस्या, षष्ठी तथा अष्टमी तिथियों को तथा मंगल-शनिवारों को त्यागकर स्त्री सहवास करें [मनु० ४।१२८।३४५]। समागम काल [गर्भाधान] में वीर्य की अधिकता से पुत्र तथा रज की अधिकता से कन्या होती है। 'पुमान पुंसोऽधिके शुक्रे, तथा 'स्त्री भवत्यधि के [रजसि] स्त्रियाः' [मनु० ३।४९]। गर्भाधान के समय स्त्री-पुरुषों का चित्त परस्पर प्रसन्न रहना चाहिए। उस समय स्त्री शृंगार युक्त रहे कारण कि होनेवाली सन्तान पर इन्हीं बातों का प्रायः अधिक प्रभाव पड़ा करता है।

उक्तञ्च-आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ। स्त्रीपुंसौ समुपेयातां, तयोः पुत्रोऽपि तादृशः [सुश्रुत सं० शारी०.२।४६।५०]॥

विशेष-यदि वह स्त्री गर्भ-धारण करने में असमर्थ हो तो पति अपनी पत्नी के ऋतु-स्नान करने पर उपवास कराके पुष्य या मूल-नक्षत्र में बृहती [भटकटैया], सिंही [पृश्नपर्णी] की जड़ उखाड़ कर [यह याद रहे कि वह श्वेत:फूलों वाली हो] शीतल जलसे पीसकर पत्नीके दाहिने नासिका के छिद्र [नथूने] में निम्न-लिखित मन्त्रसे दो-तीन बिन्दु [बूंद] रस छोड़े। मन्त्र:-"ॐ इयमौषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती। अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम्" ॥ १ ॥

गर्भवती होने का उपाय–पिण्डपितृयज्ञ का बिना सूंघा हुआ बीचका पिण्ड अधोलिखित-मन्त्र से पत्नीको प्राशन करावै। "ॐ आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजं यथेह पुरुषो सदत्" ॥ १ ॥ अवश्य ही स्त्री गर्भवती होती है।

* अथ रजोदर्शन-निर्णय *

भद्रानिद्रासंक्रमे दर्शरिक्तासन्ध्याषष्ठीद्वादशीवैधृतेषु। रोगेऽष्टभ्यां चन्द्रसूर्य्योपरागे पाते चाद्यं नो रजोदर्शनं सत्॥ तत्र भरणी ज्येष्ठाऽऽर्द्राश्लेषापूर्वात्रियेषु नक्षत्रेषु प्रथम रजोदर्शनं त्वनिष्ट फलदं भवति।

[मु०चि० सं० प्र० ५ श्लो० ः पीयू० टीकायाम्]

यदि उपरोक्त निन्द्य-मास, नक्षत्र: तिथि-वार में प्रथम रजोदर्शन हो तो १ माला गायत्री मन्त्र से हवन करे। इससे प्रथम-रजोदर्शन का दोष शान्त होता है। "मारुत-नामाग्नि स्थापयामि पूजायामि" कह कर होम करे। क्योंकि

आचार्यों ने अग्नि के नाम पृथक २ दिये हैं। यथा-गर्भाधान में मारुत-नामक-अग्नि है ॥ १ ॥ पुंसवन में पावमान ॥ २ ॥ सीमन्तोन्नयन में मंगल ॥ ३ ॥ जातकर्म में प्रबल ॥ ४ ॥ नामकरण में पार्थिव ॥ ५ ॥ अन्नप्राशन में शुचि ॥ ६ ॥ चूड़ाकर्म में सभ्य ॥ ७ ॥ उपनयन में समुद्भव ॥ ८ ॥ केशान्त में सूर्य ॥ ९ ॥ विवाह में योजक ॥ १० ॥ इत्यादि ॥ इसी प्रकार क्रमशः देवता हैं, यथा-ब्रह्मा ॥ १ ॥ प्रजापति ॥ २ ॥ धाता ॥ ३ ॥ सविता ॥४॥ प्रजापति ॥५॥ एवं निष्क्रमण तथा अन्न प्राशन में सविता ॥ ६ ॥ चूड़ाकर्म-केशान्त में प्रजापति ॥ ७ ॥ उपनयन में इन्द्र ॥८॥ वेदारम्भ में अपावक ॥९॥ उपाकर्म में सविता ॥१०॥ विवाह में प्रजापति-देवता है॥११॥विवाह के पुण्याहवाचन में "अग्निःप्रीयताम्" यह भी कहा गया है। अतः विवाह संस्कार का अग्नि भी देवता है। हवन के अनन्तर आचार्य को गौ, स्वर्ण तथा-दान अवश्य करे ॥

❀ अथ पुंसवनम् ❀

तत्र गर्भाधानानन्तरं तृतीये-मासे विधेयम्। यस्मिन्दिने पुन्नक्षत्रयुक्तश्चन्द्रःस्यातस्मिन्दिने गर्भवती मुपवासं स्वयञ्च कारयित्वा, ताञ्च स्नपयित्वा ऽहतेशुद्धवाससी परिधाय, गणेशादिपञ्चदेवार्चन पुरः सरं स्वयमाभ्युदयिकादिकमुप कृत्य * वट प्ररोहं ×वटशुंगांश्च (आचारात्कुशकण्टकमपि) शीतलेन जलेन पिष्ट्वा पत्न्याः क्षिणनासापुटे किञ्चि-

* वढ वृक्ष की जटा। × बट अंकुर [पत्ती]

द्रसं (नस्यं) दद्यात् ॥ परञ्च तद्रसप्रदानात्पूर्वं फलसिद्धि-प्राप्तये प्राङ्.मुखो पविश्य, आचम्य, प्राणानायम्य, देशकालौ संकीर्त्य सङ्कल्पं कुर्यात्-

ॐ अद्यामुकगोत्रः ममास्यां भार्याया-मुत्पत्स्यमानाऽपत्यगर्भस्य बीजगर्भसमुद्भ-वैनो निबर्हण-पुंरूपताज्ञानोदयप्रतिरोधि-कर्मनिरसनद्वारा- श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थंपुंस-वनाऽऽख्यं संस्कारमहं करिष्ये, तत्राऽऽदौ पुंसवनकर्माङ्गत्वेन मातृकार्चनादिकञ्च करिष्ये ॥

इस प्रकार संकल्प करके आवाहित देवताओं का एवं मातृकाओं का विधिपूर्वक अर्चन करे। फिर गर्भवती पत्नी की दक्षिण नासिका के रन्ध्र में नीचे लिखे-मन्त्रों द्वारा कुछ रस गेरे-

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्। स दाधार पृथिवी-न्द्यामुते मां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥ ॐ अद्भ्यःसम्भृतःपृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्म्मणः समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा

व्विदधद्रूपमेति तन्न्मर्त्यस्य देवत्वमाजान-मग्ग्रे ॥२॥

फिर यजमान आचार्य आदि ब्राह्मणों को दक्षिणा संकल्प करै-

ॐअद्येहामुकोऽहं कृतस्यास्य पुंसवन कर्मणः साद्गुण्यार्थ मिमां दक्षिणां भोजनञ्च ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दास्ये ॥

फिर यजमान ब्राह्मणों को भोजन कराके, यथाशक्ति दक्षिणा देकर प्रसन्न करै तथा नमस्कार करके उनको विदा करै ॥ इति पुंसवनम् ॥

❀ पुंसवन–संस्कार से सम्बन्धित आवश्यक बातें ❀

पुंसवन-संस्कार-तृतीये मासि पुसवः-[व्याससमृतौ १।१६] अर्थात्-यह संस्कार गर्भाधान से तृतीय-मास में किया जाता है। इसमें अस्त गुरु-शुक्र-मलमासादि कोई दोष नहीं होता। 'येन स गर्भः पुमान् प्रभवति-तत्पुंसवनम्। अथवा-'पुमान् सूयते येन कर्म्मणा, तदिदं पुंसवनम्'। अर्थात्-जिस संस्कार-द्वारा वह गर्भ पुरुष बन जाता है, वह पुंसवन-संस्कार है। अथवा जिस संस्कार से पुत्र का जन्म होवै, उसको पुंसवन कहते हैं। गर्भ में चार-महीने तक पुरुष-स्त्री का कोई चिह्न [भेद] नहीं होता, इसी कारण चिह्नोत्पत्ति के पहिले ही यह सस्कार कर लेना परम आवश्यकीय होता

है, कि जिससे पुत्रजन्म हो। वैज्ञानिकों ने अपनें शास्त्रों में पुंसवन संस्कार के अन्तर्गत ही (लक्ष्मणा, सहदेवी, वटशुंगा आदि) पौष्टिक औषधियाँ पुत्रोत्पादन के लिये स्त्रियों को सेवन करना बताया है [सुश्रुत सं० शारी० २।३४।। तथा चरक सं० शा० ८।३५।३६]। पुत्र ही तो अपना उत्तराधिकारी एवं पितरों की तृप्ति करने वाला होता है और उसी के द्वारा ही पितृ गण नरक योनि से मुक्त होकर सद्गति को प्राप्त होते हैं इसीलिए इसका नाम 'पुत्र' रक्खा गया है। यथा पुरु त्रायते पुत्रः निपरणाद् वा, पुन्नरकं ततस्त्रायते इति वा [निरुक्तोक्तिः] तथा चापुन्नाम नरकम्, अनेक शततारम्, तस्मात्त्राति तारयति वा पुत्रः [अथर्व० गोपथ ब्राह्मणे–] मनुस्मृति भी पुत्र शब्द का ही यही अर्थ प्रकट करती है [मनु०९।१३८] पुमांसं पुत्र माधेहि' [अथर्ववेद ६।१७।१०] अर्थात् गर्भ में पुत्र को धारण करो। 'पुमांसं पुत्रं जनय', [अथर्व० सं० ३।२३।३] इत्यादि वेद मन्त्रों द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिए ही देवताओं से याचना की जाती है। क्योंकि पुत्रोत्पत्ति से ही पितरगण सन्तुष्ट होते हैं तथा सनातनी पिण्डोदक-क्रिया भी लुप्त होने नहीं पाती। तदनन्तर अष्टम मास में विष्णु पूजा करनी चाहिये।

❀ अथ सीमन्तोन्नयनम् ❀

तत्र गर्भमासापेक्षया षष्ठेऽष्टमे पुन्नामनक्षत्र युते चन्द्र-ताराऽनुकूलविहितदिने श्रीगणेशपूजनपूर्वकं मातृपूजाभ्युद-

यिके कृत्वा, हस्ते जलाऽक्षतपुष्पद्रव्याण्यादाय । सङ्कल्पं कुर्य्यात्-

ॐ अद्याऽमुक गोत्रोत्पन्नोऽहम् अस्यां भार्यायां गर्भाऽभिवृद्धिपरिपन्थिशितप्रियऽ-लक्ष्मीभूतराक्षसगणनिरसन - क्षमसकला सौभाग्यनिदानभूतलक्ष्मीसमावेशनद्वारा - प्रतिगर्भबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणपुरस्सरं-श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं स्त्रीसंस्काररूपं सीमन्तोन्नयनाख्यं संस्कार कर्म करिष्ये । तत्पूर्वाङ्गत्वेनादौ गणेशपूजनादि नान्दीश्राद्धान्तं कर्म्म करिष्ये ॥ इतिसङ्कल्प, पट्टोपरि स्थितान्नक्षतनिर्मितान् देवान् विधिना सम्पूज्य, नान्दीश्राद्धादिकञ्च कृत्वा, मण्डपे मृत्तिकया वेदीं विरच्य तत्र च पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निं संस्थाप्य, कुशकण्डिकाञ्च कृत्वाऽऽचार्य्यादिवरणं कुर्यात् । तत्र ब्रह्मवरणञ्चेत्थम्-ॐ अद्य - कर्तव्यसीमन्तोन्नयनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकोऽहम् ,

अमुकशर्म्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे ॥ "ॐ वृतोऽस्मीति"–प्रतिवचनम् ॥ "यथाविहितं कर्म कुर्विति"–यजमानाभिहिते । "करवाणीति"–प्रतिवचनम् ॥

ततः कर्ताऽधोलिखितदेवाभिध्यानं कुर्य्यात्-

अद्येहसीमन्तहोमकर्मणा यक्ष्ये ॥ तत्र ॥ प्रजापतिम्, इन्द्रम् अग्निम्, सोमम्, प्रजापतिम्, (तिलमिश्रितमुद्गस्थालीपाकेन) अग्नि ँ स्विष्टकृतमाज्यस्थालीपाकाभ्याम्, अग्निम्, वायुम्, सूर्य्यम् अग्नीवरुणौ २, अग्निम्, वरुणम्, सवितारम्, विष्णुम्, विश्वान्देवान्, मरुतः, स्वर्कान्, वरुणम्, प्रजापतिञ्चाज्येन यक्ष्ये ॥ ततः ॥ "ॐ एतन्ते०" –इतिमन्त्रेण प्रतिष्ठाप्य "ॐ मङ्गलनामाग्नये नमः" भो मङ्गलनामग्ने ! सुप्रतिष्ठितो वरदो भव ॥ "ॐ चत्वारि शृंगेति"–मन्त्रेण ध्यायेत् ॥ ॐ मङ्गलना-

माग्नये नमः ॥ पञ्चोपचारैः सम्पूज्य जुहुयात् ॥ (ब्राह्मणान्वारब्धो) तत्र तत्तदाहुत्यनन्तरं स्त्रु वावस्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः—ॐ प्रजापतये स्वाहा-इदं प्रजापतये नमम [मनसा]॥१॥ ॐ इन्द्राय स्वाहा-इदमिन्द्राय न मम ॥ [इत्याघारौ] ॥२॥ ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये न मम ॥३॥ ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय न मम ॥ [इत्याज्यभागौ] ॥४॥

अथाज्येनाहुतयः—ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये न मम ॥१॥ ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे न मम ॥२॥ ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्य्याय न मम ॥३॥[एतामहाव्याहृतयः]॥ ॐ त्वन्नो ऽअग्ने०—प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा-इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥४॥ ॐ स त्वन्नोऽअग्नेवमो०—सुहवो नऽ एधि स्वाहा-इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥५॥ ॐ अया-

श्चाग्ग्नेः०-भेषजᳬ स्वाहा-इदमग्नये अयसे न मम ॥६॥ ॐ ये ते शतं०-मरुतः स्वर्क्काः स्वाहा-इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो-देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम ॥७॥ ॐ उदुत्तमं०-अदितये स्याम स्वाहा-इदं वरुणाय आदित्याय अदितये च न मम ॥८॥ ॥इति सर्वप्रायश्चित्तम् ॥ ॐ प्रजापतये स्वाहा-इदं प्रजापतये न मम मनसा ॥९॥ (तत्रैवाज्यस्थाली पाकाभ्यां स्विष्टकृद्धोमः) । ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ॥१०॥

तद्नन्तरमग्नेः पश्चाद् शुभासने गर्भिणीमुपवेशयेत् ।

ततस्त्रिश्वेत शल्लकीकण्टका ऽश्वत्थसाग्रशंकुपीतसूत्र (तन्तु) परिपूर्णतर्कु-दर्भपिञ्जलीत्रितयमौदुम्बरफलयुग्मान्वितप्रादेश - मितशाखाभिर्वर्त्तुलीकृत्य सीमन्तं (केशवेशं) मूर्घ्नि विनयति वरः ॥

पतिर्ललाटान्तमारभ्य [मस्तक के छोर से लेकर] पत्न्याः केशान् द्विधा [दो भागों में] कुर्यात्-

ओ३म् भूर्विनयामि ॥१॥ ओ३म्भुवर्विनयामि ॥२॥ ओ३म्स्वर्विनयामि ॥३॥ ततः (पतिः) उदुम्बर (गूलर) फलयुग्मान्वित*शल्लकी-कण्टकादिपञ्चकं. वधूसीमन्तदक्षिणतो वेणीं कृत्वा बध्नीयात् ॥ तत्र मन्त्रः ॥ ओ३म्अयमू-र्ज्जावत-इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः, फलिनीदेवता, वेणीबन्धने-विनियोगः ॥ ओ३म् अयमूर्ज्जावतो वृक्ष ऊर्ज्जीवफलिनी भव ॥

॥ततः॥ पतिः वीणागाथिनौ प्रेषयति । सोमं राजानं गायताम्, इति प्रेरयेत् ॥ तत्र-मन्त्रः-

ओ३म् सोममित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्री छन्दः, सोमो देवता, गाने-विनियोगः ॥ ओ३म् सोम एव नो राजेमा मानुषीःप्रजाः । अवि-मुक्तचक्रऽआसीरँस्तीरे तुभ्यमसौ ॥ततः॥ "ओ३म् पूर्णा दर्व्वीति"—मन्त्रेण

---

*सेह का कांटा ।

पूर्णाहुति दत्वो पविश्य, ॐ त्र्यायुष मितिभस्मधारयेत् ततः संस्रवप्राशनम् ॥ आचम्य, ब्रह्मणे सदक्षिणापूर्णपात्रदानम् ॥ तत्र प्रणीताविमोकः ॥

"ॐ सुमित्रिया न ऽआप ओषधस्यसन्तु"

इति प्रणोताजलेन पवित्राभ्यां शिरः सम्मृज्य, "ॐदुर्म्मित्रियाः०"—इत्यैशान्यां दिशि वा प्रणीतान्युब्जीकरणम् ॥ ततः ॥ "ॐ देवा गातु०"—इति बर्हि—होमः ॥ दक्षिणासङ्कल्पः ॥

कृतस्यास्य कर्म्मणः साद्गुण्यार्थमिमां दक्षिणां नानागोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दातुमहमुत्सृजे, तथा ब्राह्मणाँश्च भोजयिष्ये ॥

यजमानो यथा-संख्याकान् विप्रान् भोजयेत् । आचार्योऽभिषेकं कृत्वा तिलकाशीर्वादञ्च दद्यादिति ॥

❀ सीमन्त से सम्बधित आवश्वक बातें ❀

सीमन्तोन्नयन-संस्कार 'सीमन्तश्चाष्टमे मासि' (व्यासस्मृतौ १।१७ अर्थात् यह संस्कार गर्भाधान से छठे वा आठवें महीने में करना चाहिये । "सीमन्तः वध्यते स्त्रीणां, केशमध्ये तु पद्धतिः" यह संस्कार स्त्री-रूपपरक है । इसमें केशों के मध्य की माँग का उन्नयन इधर उधर पाकर ऊपर लेजाना विहित है । 'सीमन्तस्योन्नयनम्, उद्भावनं वा सीम-

न्तोन्नयनम्'। 'सीमन्त'शब्द का तात्पर्य (सुश्रुत सं० शारी० ६।८१) में इस प्रकार से है कि-"पंचसन्धयः शिरसि विभक्ताः सीमन्ताः" अर्थात् शिर में पृथक् की हुई पाँच सन्धियाँ सीमन्त होती हैं। तथा कोश में सीमन्त का केश-वेश वा गूँथा हुआ चूड़ा है,इनकी वृद्धि मस्तिष्क व बलको बढ़ाती है। इसीलिये इस संस्कार को सीमन्तोन्नयन'-कहते हैं। सीमन्त-शब्द से यह शिक्षा मिलती है कि-अब आगे स्त्री को शृङ्गार करना एवं पति-संगम करना निषेध है । अन्यथा गर्भके पतन का अथवा. द्वितीयगर्भ ठहरनें का भी विशेष भय होगा। साथ २ अपने कुविचारों से गर्भस्थशिशु के भी विचार मलीन होंगे, जिसका परिणाम नेष्ट होगा। माता-पिता के कुविचारों का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर छा जाता है। क्योंकि गर्भ में शिशु को छठे मास सें ज्ञानोदय होने लगता है एवं मानसिक स्मरण शक्ति जाग्रत होने लगती है। इस संस्कार के होते ही स्त्रियों को अपने धार्मिक विचार रखने चाहिए ज्ञान शिक्षाएें लेनी चाहिए, हरि चरित्र आदि सुनने चाहिए, जिससे इसका सुन्दर प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़े और वह सद्बुद्धि वाला बनें। सीमन्त संस्कार करनें से पुंसवन के फलकी प्राप्ति होती है।

सीमन्तोन्नयन मुहूर्त-

जीवार्कारदिने मृगेज्यनिरृतिश्रोत्रादितिब्रध्नभैः,
रिक्तामार्करसाष्टवर्ज्यतिथिभिर्मासाधिपे पीवरे।

सीमन्तो ऽष्टमषष्ठमासि शुभदैः केन्द्रत्रिकोणे खलै-
र्लाभारित्रिषु वा ध्रुवान्त्यसदहे, लग्ने च पुंभांशके ॥
[मु० चि० सं० प्र० ५ श्लो० ८]

❀ अथ जातकर्म्म ❀

प्रसव पीड़ा से व्याकुल हुई गर्भिणी की देह पर निम्न लिखित मन्त्र से कुशोदक-द्वारा मार्जन करै। मन्त्र के विनियोग के लिये पति अपने दक्षिण-हाथ में जल लेकर मन्त्र पढ़ै-

ॐ एजत्वितिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः, महापङ्क्तिश्छन्दः, गर्भो देवता ऽभ्युक्षणे-विनियोगः ॥

इस प्रकार विनियोग का जल पृथ्वी पर छोड़े। पुनः

ॐ एजतु दशमास्यो गब्भो जरायुणा सह। यथायं व्वायुरेजति यथा समुद्र एजति। एवायन्दशमास्योऽअस्रज्जरायुणा सह ॥

फिर पति अग्रिम मन्त्र को वधू के समीप तीनवार बोलै-

ॐ अवैतु पृश्निशेवल ꣳ शुने जराय्वत्तवे। नैन मा ꣳ सेन पीवरी न कस्मिंश्चनायतनमव जरायूपपद्यताम् ॥

फिर*पुत्रोत्पत्ति के अनन्तर पिता कुलदेवताओं तथा पूज्य गुरुजनों को प्रणाम करके, पुत्र के मुख को देखकर सचैल स्नान करै। पुनः नूतन वस्त्रों को धारण करके अपने आसन पर बैठ कर तीन आचमन एवं प्राणायाम करै। पुनः स्वस्तिवाचन, एवं निर्विघ्नतार्थं श्री गणपति पूजन, पुण्याह वाचन मातृका पूजन, षोडशमातृका पञ्चोंकार देवता पूजन, आयुष्यमन्त्र जप एवं नान्दी श्राद्ध आचार्य द्वारा विधिपूर्वक करै तथा उन्हें अन्नदान स्वर्णदान आदि दक्षिणा देवै। पुनः सङ्कल्प करै-

ॐ अद्येत्यादि०—अमुकशर्माऽहं, वर्माऽहं, गुप्तोऽहं वा, मम जातस्य पुत्रस्य गर्भाऽम्बु पानजनित-समस्तदोषनिबर्हणाऽऽयुर्मेधाभि-वृद्धिद्वाराबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा --श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं जातकर्माख्यं संस्कारञ्च करिष्ये॥

ऐसा सङ्कल्प बोलकर मेधाजनन-क्रिया करै-

इति-संकल्प्य, मेधाजननं कुर्य्यात्॥ यथा पिता नाभिव-

---

* पुत्रजाते व्यतीपाते, दत्तं भवति चाक्षयम्।
यावन्न छिद्यते नालं, तावन्नाप्नोति सूतकम्॥
तत्र नालच्छेदनात्पूर्वं सम्पूर्णं सन्ध्यावन्दनादि कर्म्माणि नाशौचम्। (धर्मसिन्धौ) नान्दीश्राद्धञ्च तन्त्रेण हेम्नैव कुर्यात्।

धंनात्प्राक् दक्षिणहस्तस्यानामिकया स्वर्णान्तर्हितया मधुघृतेऽसमानमात्रयैकीकृते घृतमेव वा बालकं प्राशयति ॥

तत्र त्रिव्यहृतीनां प्रजापतिऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहत्यश्छन्दांसि, अग्निवायुसूर्य्यप्रजापतयो देवताः, मध्वाज्य प्राशने विनियोगः ॥ ॐ भूस्त्वयि दधामि ॥ १ ॥ ॐ भुवस्त्वयि दधामि ॥२॥ ॐ स्वस्त्वयि दधामि ॥ ३ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः सर्वं त्वयि दधामि ॥ ॐ प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य व्वेद सविता प्रसूतं मघोनाम् । आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतञ्जीव शरदो लोकेऽअस्मिन् ॥

पश्चात् पिता बालक के दक्षिण कान में धीरे-धीरे तीन बार निम्नलिखित मंत्रों को बोले । इससे पूर्व (हाथ में जल लेकर)-

ॐ अग्निरायुष्मानित्यादीनामष्टानां मन्त्राणां प्रजापतिऋषिः, गायत्रीछन्दः, लिङ्गोक्ता देवताः, दीर्घायुष्य-करणार्थे जपे-विनियोगः ॥

इस प्रकार विनियोग का जल पृथ्वी पर छोड़ें । पुनः-

ॐ अग्निरायुष्मान् स वनस्पतिभिरायुष्माँस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तङ्करोमि ॥ १ ॥ ॐ सोमऽ आयुष्मान्तसऽओषधीभिरायुष्माँस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तङ्करोमि ॥ २ ॥ ॐब्रह्म आयुष्मत्तद् ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तङ्करोमि ॥३॥ ॐ देवाऽ आयुष्मन्तस्तेऽमृतैरायुष्मन्तस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तङ्करोमि ॥ ४ ॥ ॐ ऋषयऽ आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तङ्करोमि ॥५॥ ॐ पितर ऽआयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तङ्करोमि ॥६॥ ॐ यज्ञऽआयुष्मान्तस दक्षिणाभिरायुष्माँस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तङ्करोमि ॥ ७ ॥ ॐ समुद्रऽ आयुष्मान्तस स्रवन्तोभिरायुष्माँस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तङ्करोमि ।८। इति त्रिवारमुक्त्वा-ॐ त्र्यायुषमित्यस्य नारायणऋषिः, उष्णिक् छन्दः,

शिवो देवता, त्र्यायुष्यकरणे—विनियोगः ॥ ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषन्तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥

इस मन्त्र को तीन वार कहकर बालक की दीर्घायु चाहता हुआ पिता फिर बालक को स्पर्श करके वात्स अनुवाक बोलें । वह इस प्रकार-

ॐ दिवस्परीत्येकादशानां मन्त्राणां वत्स प्रीर्भालनन्दन ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता, जाताऽभिमर्शने-विनियोगः ॥ ॐ दिवस्पपरि प्रथमञ्जज्ञे ऽअग्निरस्मद् द्वितीयं परिजातवेदाः । तृतीयमप्सुनृमणा अजस्रमिन्धानऽएनं जरते स्वाधीः ॥ १ ॥ विद्माते ऽअग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा । विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सँय्यत ऽआजगन्थ ॥२॥ ॐ समुद्रे त्वा नृमणा ऽअप्स्वन्तन्नृचक्षाऽईधे दिवो ऽअग्न ऽऊधन् । तृतीये त्वा रजसि तस्थिवा ॐ

समपामुपस्थे महिषाऽअवर्द्धन् ॥ ३ ॥ अक्र-
न्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वी-
रुधः समञ्जन् ॥ सद्यो जज्ञानो व्विहीमिद्धोऽ
अख्यदा रोदसी भानुनाभात्यन्तः ॥ ४ ॥-
श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम्मनीषाणां
प्रार्प्पणः सोमगोपाः । व्वसुः सूनुः सहसोऽ-
अप्सु राजा व्विभात्यग्र ऽउषसामिधानः
॥५॥ व्विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्ब्भ ऽआरो-
दसीऽअपृणाज्जायमानः । व्वीडुञ्चिदद्रिम-
भिनत्परायञ्जनायदग्निमयजन्त पञ्च
॥६॥ उशिक्पावकोऽअरतिः सुमेधा मर्त्त्ये-
ष्वग्निरमृतो निधायि । इयर्ति धूममरुषं
भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषाद्यामिनक्षन् ॥७॥
दृशानो रुक्मऽ ऊर्व्व्या व्यद्यौद्-दुर्म्मर्षमायुः
श्रिये रुचानः । अग्निरमृतो ऽअभवद्वयो-
भिर्य्यदेनं द्यौरजनयत् सुरेताः ॥ ८ ॥ यस्ते
ऽअद्य कृणवद्भद्र शोचे पूपन्देव घृतवन्तम-
ग्ने । प्रतन्नय प्रतरं व्वस्यो ऽअच्छाभिसु-

स्नन्देव भक्तँय्यविष्ठ। आ तम्भज सौश्रव-सेष्वग्न ऽ उक्थ उक्थ आभज शस्यमाने। प्रियः सूर्य्ये प्प्रियोऽअग्ना भवात्युज्जातेन-भिनदद्दुज्जनित्वैः ॥१०॥ त्वामग्ने यज-मानाऽअनुद्यून् विश्शवा व्वसु दधिरे व्वा-र्य्याणि। त्वया सह द्रविणमिच्छमानाव्व्रजं गोमन्तमुशिजो व्विवव्व्रुः ॥ ११॥

ततः कुमारस्य प्रागादि-प्रतिदिशमेकैकं ब्राह्मणं मध्ये पञ्चममूर्ध्वमवेक्ष्यमाणमवस्थाप्य तानुद्दिश्य, इममनुप्राणेति पिता ब्रूयात् ॥ ततः-

ॐ मही द्यौरित्यादिमन्त्रैः-

पञ्चकलशान् सम्पूज्य, तान्ब्राह्मणान् वृत्वा-

ॐ प्राणेतिपूर्वस्थितो ॐ व्यानेति–दक्षि-णस्थितो ॐ अपानेति-पश्चिमस्थितः, ॐ उदानेति-उत्तरस्थितः, ॐ समानेति-मध्य-स्थितः, उपर्य्यवेक्ष्यमाणः ॥ एषामसम्भवे पिता "इममनुप्राणित" इति।

प्रैष्यवाक्यमनुक्त्वा स्वयमेव तत्र तत्रोपविश्य तथैव

ब्रूयात् [ततस्तान् कलशान् पञ्चब्राह्मणेभ्यो दत्वा] अथ बालकस्य जन्म भूमिमभिमन्त्रयेत् ॥

ॐ व्वेद ते भूमिहृदयमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, भूमिर्देवता, जन्मभूम्यभिमन्त्रणेविनियोगः ॥ ॐ व्वेद ते भूमि हृदयन्दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । व्वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शत ᳪ शृणुयाम शरदः शतम् ॥ इति

ततः बालकमभिस्पृशति-

ॐ अश्श्मा भवेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, लिङ्गोक्ता-देवता, अभिस्पर्शनेविनियोगः ॥ ॐ अश्श्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतम्भव । आत्मासि पुत्रमा मृथाः स जीव शरदः शतम् ॥ इति

अथ बालकमातरमभिमन्त्रयेत्

ॐ इडासीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, इडादेवता, अभिमन्त्रणे-विनियोगः ॥ ॐ इडाऽसि मैत्रावरुणी व्वीरे

व्वीरमजीजनथाः। सा त्वं व्वीरवती भव यास्मान् वीरवतोऽकरत् ॥ इति ॥

ततः बालकनाभिवर्द्धने कृते पत्न्याः * दक्षिणस्तनं ओष्णोदकेन प्रक्षाल्य बालकाय [पिता] ददाति-

ॐ इममित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, अग्निर्देवता, दक्षिणस्तनप्रदाने-विनियोगः ॥ ॐ इम ँ स्तनमूर्ज्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये। उत्सञ्जुषस्व मधुमन्तमर्व्वन्त्समुद्रिय ँ सदनमाविशस्व ॥ इति ॥

पुनः पिता वामस्तनं कवोष्णेन जलेन प्रक्षाल्य बालकाय प्रयच्छति ॥

ॐ यस्ते स्तन—इति दीर्घतमा-ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, वाग्देवता, वामस्तनप्रदाने-विनियोगः ॥ ॐ यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्य्यो रत्नधा व्वसुविद्यः सुदत्रः। येन व्वि-

* बालक के प्रथम माता का स्तनपान का मुहूर्त-
रिक्ताभौमं परित्यज्य, विष्टिपातं सवैधृतिम्।
मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु, स्तन्यपानं हितं शिशोः ॥

श्श्वा पुष्यसि वार्य्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः ॥ इति ॥

ततः प्रसूतिकायाः शिरोदेशे भूमौ जलपूर्णं कलशं स्थापयेत्-

ॐ आपइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, आपो देवताः, सूतिकायाः शिरः प्रदेशे रक्षार्थोदककुम्भस्थापने-विनियोगः ॥ ॐ आपो देवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ। एवमस्या ँ सूतिकाया ँ सपुत्रिकायाञ्जाग्रथ ॥

[इत्यनेन सूतिकोत्थापनपर्य्यन्तं तत्रैव धर्तव्यम्] ॥ ततः सूतिकायाः गृहद्वारप्रदेशे-

ॐ भूर्भुवः स्वः प्रगल्भनामाग्निं स्थापयामीति'।

संस्थाप्य, तस्मिन्पञ्चभूसंस्कारान् कृत्वाऽग्नेरुपसमाधानम्, स चाग्निरुत्थानदिनपर्यन्तं तत्रैव सुरक्षितव्यः [अस्मिन्नेवावसरे नालच्छेदनमपि कार्य्यम्] । तत्र चाग्नौ सायं प्रातः कालयोः फलीकरणाँस्तण्डुलांस्तन्मिश्रान् सर्षपान् दशदिनानि पर्यन्तं पिता, कश्चिदन्यो वा ब्राह्मणः 'शण्डामर्का', इति मन्त्राभ्यामाहुतिद्वयं नित्यमेव हस्तेन जुहोति ॥

ॐ शण्डामर्का-इतिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, अग्निर्देवता, सूतिकाद्वाराग्नौ तण्डुलकणमिश्रितसर्षपहोमे—विनियोगः ॥ ॐ शण्डामर्क्का ऽ उपवीरःशौण्डिकेय उलूखलः । मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा, इदमग्नये न मम ॥१॥ ॐ आलिखन्निति—प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता, सूतिकाद्वाराग्नौ तण्डुलकणमिश्रसर्षपहोमे—विनियोगः ॥ ॐ आलिखन्ननिमिषः किम्बदन्तऽ उपश्रुतिः हर्य्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिः । हन्त्रीमुखस्सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा ॥ इदमग्नये न मम ॥ २ ॥

ततो यदि दशदिनाऽऽभ्यन्तरे क्रूरग्रहो बालग्रहो वा कुमारमाविशेद्, येनाविष्टो न नामयति,न रोदिति, न हृष्यति न च तुष्यति, तदैतन्नैमित्तिकं कर्म्म कर्तव्यम् ॥ तम्बालकं जालेन प्रच्छाद्योत्तरीयेण वस्त्रेणांकमादाय तं बालं पिता जपति ॥

ॐ कूर्क्कुर-इतिप्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः

शुनकोदेवता, शान्त्यर्थे जपे विनियोगः ॥
ॐ कूर्कुरः सुकूर्कुरः कूर्कुरो बालबन्धनः। चेच्चेच्छुनक सृज नमस्तेऽअस्तु सीसरो लपेतापह्वर ॥१॥ ॐ तत्सत्यं यत्ते देवा व्वरमदद्दुः स त्वं कुमारमेव वाऽवृणीथाः॥ चेच्चेच्छुनकसृज नमस्तेऽअस्तु सीसरो लपेतापह्वर॥१॥ ॐ तत् सत्यं यत्ते सरमा माता सीसरः पिता श्यामशबलौ भ्रातरौ। चेच्छुनक सृज नमस्तेऽअस्तु सीसरो लपेतापह्वर ॥ ३॥

इत्येव जपः ॥ ततो बालकदेहमभिस्पृशेत्—

न नामयतीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो, वायुर्देवता ऽभिमर्शनेविनियोगः ॥
ॐ न नामयति न रुदति न हृष्यति न ग्लायति यत्र व्वयम्व्वदामो यत्र चाऽभिमृशामसि

इत्यभिमृश्य, ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दत्वा मन्त्राऽभिषेकं गृह्णीयात्, ब्राह्मणभोजनञ्च कुर्य्यात् ।

❀ जातकर्म्म से संबन्धित आवश्यक बातें ❀

जातकर्म्म–संस्कार–इस संस्कार के करने से उत्पन्न हुए

बालक में प्रशस्त-तेज उत्पन्न होता है, तथा ज्ञान की जागृति होती है। गर्भ के समस्त दोषों के दूर करने के लिये ही जन्म के अनन्तर जातकर्म्म-संस्कार किया जाता है। इस संस्कार में जो बालक को स्वर्ण-शलाका से मधु चटाया जाता है, उससे उसकी स्मृति-शक्ति तीव्र होती है, एवं आयु बल की वृद्धि होती है। मधु-पान कराने से बालक के वाता-दिक-त्रिदोष शमन होकर उसे नीरोगता मिलती है, यह आयुर्वेदिक-मत है। बालक ने जैसा भी मातृ-गर्भ में भक्षण किया, वैसी ही उसकी बुद्धि हो जाती है। उस भ्रष्ट-बुद्धि को निर्मल करने के लिये यह संस्कार करना, कराना परमावश्यक है।

प्रसूति के शीघ्र-प्रसव होने के लिये शास्त्रोक्त कुछ एक उपाय हैं, जो नीचे लिखे जाते हैं। यथा-एक काँसे की थाली में गङ्गाजल में घिसकर गेरू से चक्र-व्यूह यन्त्र बनावे और उसे गङ्गाजल से ही धोकर प्रसूति को पिलावे, तो शीघ्र ही प्रसव-उत्पन्न होगा, एवं जनन-पीड़ा शान्त होगी ॥ १ ॥ "ॐ क्षिप-निक्षिप उन्मथ-प्रमथ मुञ्च-मुञ्च स्वाहा" इस च्यवन-मन्त्र द्वारा १० बार अभिमन्त्रित किया हुआ शीतल जल यदि प्रसूता पीवे, तो शीघ्र ही प्रसव-उत्पत्ति होगी ॥२॥ एक कांसे की कटोरी में १-२ तोले तिल का तैल और कुछ एक दूब के अंकुर डाले, पुनः उसे गर्भिणी के शिर पर प्रद-क्षिण-क्रम से घुमाता हुआ नीचे लिखे हुए इस मन्त्र को

१०८ बार पढ़े [मन्त्र]-"ॐ हिमवत्युत्तरे पार्श्वे, शवरी नाम यक्षिणी। तस्याः नूपुरशब्देन, विशल्या गर्भिणी भवेत्। ॐ शवरीयक्षिण्यै नमः॥"-पुनः कुछ तैल गर्भिणी को पिलादें तथा बचे हुए तेल को उसके पेट पर मल देवे तो शीघ्र प्रसव हो॥३॥ अथवा-एक चौकोर भोजपत्र के टुकड़े पर रक्त चन्दन से नव-कोष्ठक का 'पञ्चदशी यन्त्र' यथा-विधि गर्भिणी के समक्ष बनावे। प्रथम १ अङ्क से ९ अंकों तक नव दुर्गाओं के नामों का क्रमशः उच्चारण करता हुआ यन्त्र बनाता जाय [यथा-प्रथमं शैलपुत्री च, द्वितीयं ब्रह्मचारिणी। तृतीयं चन्द्रघण्टेति, कूष्माण्डेति चतुर्थकम्। पञ्चमं स्कन्द-मातेति, षष्ठं कात्यायनीति च। सप्तमं कालरात्रीति, महा-गौरीति चाऽष्टमम्। नवमं सिद्धिदात्री च, नवदुर्गाः प्रकी-र्तिताः॥ इति॥] पुनः इस यन्त्र को धूप देकर गर्भिणी को

वि ८	ऐं १	डा ६
क्लीं ३	मुं ५	यै ७
चा ४	च्चं ९	ह्रीं २

दिखावे और इस यन्त्रको उसके सिरहाने रखदे, तो सुखपूर्वक प्रसवकी उत्पत्ति होती है। उक्तञ्च-"गजाऽग्निवेदा उडुराट्शराङ्का, रसर्षिपक्षा इति हि क्रमेण। लिखेत्प्रसूतेः समये तु शीघ्रं, सुखेन नार्यः प्रसवन्ति बालम्॥ इति॥ पुनः बालक के हो जाने पर यन्त्र को गर्भिणी के सिरहाने से हटा देना चाहिये ॥४॥ इत्यादि उपायों द्वारा शीघ्र प्रसव हो जाता है।

जनन-सूतक का निर्णय- जब तक बालक का नाल-

विच्छेदन नहीं होता, तब तक जनन-सूतक नहीं लगता। यथा जैमिनी० 'यावन्न छिद्यते नालं, तावन्नाप्नोति सूतकम्। छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकन्तु विधीयते ।'---इस प्रमाण-द्वारा नाल-छेदन (नरा कटने) से पूर्व ही बालक का जात-कर्म्म-आदि सविधि कर लेना चाहिये, यह प्रथा सर्वसम्मत है। मरीचि-आदि ऋषियों का कथन है कि--पुत्रोत्पत्ति होने पर स्वर्ण-दान द्वारा नान्दीमुख-श्राद्ध अवश्य करे। उस समय समयानुसार 'जातकर्म्म' कर लेना ही धर्म्मसम्मत है। अस्तु---

मेधाजनन-संस्कार----"धीर्धारणावती मेधा-इत्यमरः" अर्थात् कही हुई वार्ता को धारण रखने वाली बुद्धि का नाम मेधा है। यह संस्कार उत्पन्न हुए बालक को मेधा बुद्धि तथा आयु बढ़ाने के लिए नालच्छेदन-क्रिया से पूर्व ही किया जाता है। पिता अपने दक्षिण-हाथ की अनामिका-अंगुली के अगले-भाग से प्रथम-८ भाग शुद्ध-मधु, तथा एक भाग-शुद्ध घृत एक चाँदी की कटोरी में मिश्रित करे पुनः अनामिका तथा अंगुष्ठ से एक स्वर्ण-शलाका पकड़ कर उस मिश्रित किये मधु-घृत को बालक की जिह्वा [जीभ] पर उपरोक्त --'ॐ भूस्त्वयि दधामि'-आदि चार-मन्त्रों को बोलता हुआ लगावे, इसके चटाने से बालक की बुद्धि पवित्र होती है और बल-आयु की वृद्धि होती है। कई विद्वान् गर्भोत्पन्न बालक की जीभ पर मधु से 'ॐ' मन्त्र कोई 'सर-

स्वती-यन्त्र' तथा कुछएक 'गणेश यन्त्र'-आदि लिखते हैं, ये सब बालक की विशिष्ट-बुद्धि करने के लिये ही किया जाता है।

नालच्छेदन-क्रिया—चतुर वृद्धा दाई बालक की नाभि से ८ अंगुल की दूरी पर तथा उससे आगे ८ अंगुल दूरी पर दोनो ओर सूत के दृढ़ डोरेसे दोदृढ़ बन्धन करे। उसके मध्य में तीक्ष्ण धार वाले चाकू से नालच्छेदन करे। यदि कदाचित नाभि पक जावे तो वैद्य की अनुमति से हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, मुलहठी, पठानी-लोध कूट कर तिल तैल में पकाकर उस तेल को बालक की नाभि पर लगावे। यदि बालक को दुष्ट-दृष्टि (भूत-प्रेतादिक) आदि दोषों के कारण किसी प्रकार का भय वा कष्ट दिखाई दे, तो-"ॐ रक्ष रक्ष महादेव ! नीलग्रीव ! जटाधर ! ग्रहैस्तु सहितो रक्ष, मुञ्च-मुञ्च कुमारकम्"—इस मन्त्र को भोज पत्र पर लिखकर लाल कपड़े में बालक की दाहिनी-भुजा में बाँध देवे, तो अवश्य कष्ट-निवारण होता है ॥१॥ अन्य उपाय—

"ॐ वासुदेवो जगन्नाथः पूतनातर्जनो हरिः। रक्षति त्वरित बालं, मुञ्च मुञ्च कुमारकम् ॥ बालग्रहान् विशेषण छिन्धि-छिन्धि महाभयान्। त्राहि त्राहि हरे ? नित्यं,रक्षत्वं पीडितं शिशुम् ॥"-इस मन्त्र से भस्म को अभिमन्त्रित करके बालक के मस्तक,कण्ठ एवं हृदयादि पर लगावे, तो समस्त भय दूर होते हैं ॥ इति जातकर्म्मं ॥

❋ अथ षष्ठीमहोत्सव-विधिः ❋

छठी (षष्ठी) पूजन-षष्ठीका अर्थ है कि-२ हाथ, २पैर, १ धड़, १शिर-इन छः अङ्गों को रचने वाली बाल-शरीरस्थ शक्ति को 'षष्ठी-देवी' कहते हैं। इसके प्राण और अन्तःकरण ही 'संकर्षण' और 'प्रद्युम्न' नामक दो पुत्र हैं। जिसे ये तीनों शरीर को नीरोग करें, उसे षष्ठी-पूजन कहते हैं। इसके पूजन में आठ-दीपक रखे जाते हैं। यह षष्ठी-महोत्सव प्रायः नियत-दिन अर्थात् जन्म से छठे-दिन ही होता है। अन्य कृत्य तो प्रायश्चित करके पीछे भी हो सकते हैं। प्रसूता स्त्री शुभ-मुहूर्त देखकर शिर सहित स्नान करे।

स्नाता प्रसूताऽप्यसुता बुधेन, स्नाता च बन्ध्या भृगुनन्दनेन।
सौरे मृतिः दुग्धहतिश्च सोमे, पुत्रार्थलाभो रविभौमजीवे ॥

पुनः कुलरीति-अनुसार षष्ठी-देवी का यथा-विधि पूजन करे।

तत्र-जन्मदिनतः षष्ठदिने पुत्रकलत्रयुतो यजमानो मङ्गल-द्रव्ययुक्तसलिलेन स्नात्वा, नूतनवाससी भूषणानि च धृत्वा, कृतमंगलतिलको मातृपितृगुर्वाचार्यकुलदेवताब्राह्मणान् प्रणम्य, गृहान्तः शुभासने पूर्वाभिमुख उपविश्य, स्वदक्षिणतोऽपत्ययुतां पत्नीं चोपविश्य, तत्र च पूजासामग्रीं सम्पाद्य, धृतपवित्रपाणिराचान्तः प्राणायामञ्च विधाय ॥

बालकका पिता-आदि बालकके जन्मसे छटे-दिन [शुभ-दिनमें] स्नान करके शुद्ध-वस्त्र पहिने। पुनः पूजा-सामग्री इकट्ठी

करके पूर्व-मुख होकर आसन पर बैठे-

ॐ भद्रङ्कर्ण्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्य्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देव हितं य्यदायुः ॥

पुनः नीचे-लिखे मन्त्रों से शरीर पर जल छिड़के-

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा० (पृष्ठ ८);
ॐ आपो हिष्ठ्ठामयो० (पृष्ठ १४)

इन दोनों-मन्त्रों द्वारा मार्जन करके देह-शुद्धि करै।

पुनः नीचे लिखे मन्त्र से शिखा-बन्धन करै-

ॐ मा नस्तोके तनये मा नऽआयुषि मानो गोषु मानोऽ अश्श्वेषु रीरिषः। मानो व्वीरान्नुद्द्र भामिनो व्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥

पुनः नीचे-लिखे मन्त्र-द्वारा गङ्गाजल के तीन आचमन करै-

ॐ इमम्मे गङ्गे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमे सचेतापरुष्ण्यामरुद् वृधे व्वितस्तयाजींकीये शृणु ह्यासुषो मया ॥ ॐ केशवाय नमः ॥ १ ॥ ॐ माधवाय नमः ॥ २ ॥ ॐ

नारायणाय नमः ॥ ३ ॥ (हाथ धोवै)—ॐ गोविन्दाय नमोनमः ॥ ४ ॥

पुनः नवीन-यज्ञोपवीत धारण करै-

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं, यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

पुनः प्राणायाम [पृष्ठ १३] करैं। तदनन्तर पञ्चगव्य [पृष्ठ ५] बनाकर प्राशन करैं तथा गृह-शुद्धि के लिये उसका प्रोक्षण करैं। पुनः आचार्य स्वस्तिवाचन [पृष्ठ १], तथा शान्ति पाठ [पृष्ठ १९] पढ़ैं। पुनः यजमान गणपत्यादि-देवताओं की पूजा [पृष्ठ २२] करके, प्रतिज्ञासंकल्प करैं-

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः० अद्येत्यादि० अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकनामशर्म्माऽहं, वर्म्माऽहं, गुप्तोऽहं वा, मम गृहे जातस्यार्भकस्याऽखिलोपद्रवनिवारणार्थं तथा बालकस्याऽऽयुरारोग्याभिवृद्ध्यर्थं सर्वाबाधानिवृत्तिहेतवे, प्रद्युम्नस्कन्दयोः पूजनपूर्वकं षट्कृत्तिकापूजनं, विघ्नेशजन्मदायाः जीवन्त्यपर-

नाम्न्याः षष्ठीदेव्याश्च यथालब्धोपचारैः पूजनञ्च करिष्ये ॥

इस प्रकार संकल्प करके स्कन्द तथा प्रद्युम्न की दो मूर्तियाँ दीवाल के ऊपर गोबर की बनावै, अथवा दोनों की एक ही मूर्ति बना लेवै, फिर नीचे-लिखे बीज-मन्त्रों से उनकी प्राणप्रतिष्ठा करै-तद्यथा-

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ आं ह्रीं क्रों-अस्यां गोमयप्रतिमायां स्कन्दस्य प्राणा इहागत्य सुखञ्चिरं तिष्ठन्तु, जीवश्चेह तिष्ठतु, सर्वेन्द्रियाणीह तिष्ठन्तु॥१॥ ॥तत्र स्कन्दमन्त्रः॥ ॐ यदक्रन्दः प्रथमञ्जायमानऽउद्यन्त्समुद्द्राद्दुतवा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहूऽउपस्तुत्यम्महि जातन्तेऽअर्व्वन्॥ ॐ स्कन्दाय नमः॥ पुनश्च-

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ आं ह्रीं क्रों-अस्यां गोमयप्रतिमायां प्रद्युम्नस्य प्राणा इहागत्य

सुखञ्चिरं तिष्ठन्तु, जीवश्चेह तिष्ठतु, सर्वेन्द्रियाणीह तिष्ठन्तु ॥ २ ॥ ॐ प्रद्यु- म्नायनमः । ॐ मनो जूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्य्यज्ञ मिमन्तनो त्वरिष्ट य्यज्ञ ७ समिमन्दधातु । व्विश्वे देवा स इह माद- यन्तामोँ ३ प्रतिष्ठ ॥

इति मन्त्रेण ॥ प्रतिष्ठाप्य-

अनयो र्गोमयमूर्त्योः स्कन्दप्रद्युम्नौ सुप्र- तिष्ठितौ वरदौ भवेताम् ।

॥ इति वदेत् ॥ ततः स्कन्दं ध्यायेत्-

ॐ कार्त्तिकेय ! महाबाहो ! गौरीहृदय- नन्दन । कुमारं रक्ष मे भीतेः, कार्त्तिकेय नमोऽस्तु ते ॥ वराभयकरः साक्षाद्, द्विभुजः शिखिवाहनः । किरीटी कुण्डली देवो, दिव्या- ऽऽभरण भूषितः ॥ ॐ स्कन्दाय नमः, आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि ॥१॥

ततः प्रद्युम्नं ध्यायेत्-

ॐ भो प्रद्युम्न महाबाहो, रुक्मिणी प्रिय-

नन्दन। कुमारं रक्ष मे भीतेः, प्रद्युम्नाय नमो नमः ।। ॐ प्रद्युम्नाय नमः, आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि ।। २ ।।

फिर स्कन्द तथा प्रद्युम्न दोनों का षोडशोपचार-पूजन करै और आरती, मन्त्र-पुष्पाञ्जलि एवं नमस्कार करै ।। अथ षट्कृत्तिका पूजनम् ।

ॐ शिवायै नमः ।१। ॐ सम्भूत्यै नमः ।२।
ॐ अनसूयायै नमः ।३। ॐ क्षमायै नमः ।४।
ॐ सन्नत्यै नमः ।५। ॐ सुप्रीत्यै नमः ।६।

इति षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रार्थयेत्-

ॐ जगन्मातर्जगद्धात्रि, जगदानन्दकारिणि । नमस्ते देवि कल्याणि, प्रसीद मम कृत्तिके ।

अथ षष्ठीदेवी-पूजनम् ।। अन्यत्र भित्तौ प्रलिखितगोमयमूर्तौ पूर्ववत् प्राणप्रतिष्ठां कृत्वाऽऽवाहनम् ।।

ॐ आयाहि वरदे देवि! षष्ठीदेवीति विश्रुता । शक्तिभिः सह पुत्रं मे, रक्ष-रक्ष वरानने ।।

ततो मनो जूतिरितिमन्त्रेण प्रतिष्ठाप्य ।। अथ ध्यानम् ।।

देवीमुञ्जनसंकाशां, चन्द्रार्द्धकृतशेखराम् । सिंहारूढां जगद्धात्रीं, कौमारीं भक्तवत्सलाम् ।। खड्गं खेटञ्च बिभ्राणामभयां वरदां तथा । तारकाहारभूषाढ्यां, चिन्तयामि नवांशुकाम् ।। "ॐ श्रीश्चते ल०" ।। पुनरावाहनम्-ॐ आगच्छ वरदे देवि, स्थाने चाऽत्र स्थिरा भव । आराधयामि भक्त्या त्वां, रक्ष बालञ्च सूतिकाम् ।। ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् । चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म ऽआवह ।। ॐ भूर्भुवः स्वः, ॐ षष्ठी देव्यै नमः आवाहयामि ।। अथाऽऽसनम् ।। सन्ध्यारागनिभं रक्तमासनं स्वर्णनिर्मितम् । गृहाण सुमुखी भूत्वा, रक्ष बालञ्च सूतिकाम् ।। ॐ ताम्मऽआवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् । यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः, ॐ षष्ठी देव्यै नमः ।।

इत्यासनं समर्पयामि नमः ॥ अथ पाद्य-

गङ्गाजलं समानीतं, सुवर्णकलशे स्थितम् ।
पाद्यं गृहाण मे बालं, सूतिकाञ्चैव पालय ॥
ॐ अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् । श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवीर्जुषताम् ॥ ॐभूर्भुवः स्वः, ॐ षष्ठी देव्यै नमः

इति-पादयोः पाद्यं समर्पयामि नमः ॥ अथाऽर्घ्यम्-

अक्षतपुष्पगन्धाढ्यमर्घ्यार्थं निर्मलं पयः ॥
गृहाण पाहि मे पुत्रं, सूतिकां भयहारिणि!॥
ॐ कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तान्तर्पयन्तीम् ॥ पद्मे स्थितां पद्मवर्णां, तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

इति हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि नमः ॥ अथाऽऽचमनीयम्-

गृहाणाचमनीयन्तु, कर्पूरैलादिवासितम् ।
सबालं सूतिकां पाहि, जगन्मातर्नमोऽस्तुते ॥ ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् । तां पद्मनीमीं शरणमहं प्रपद्यऽ अलक्ष्मीर्म्मे नश्यतां त्वां वृणोमि ॥

इत्याचमनीयं समर्पयामि ।। अथ पंचामृतम्-

पञ्चामृतं गृहाणेदं, पयोदधिघृतंमधु-
शर्करासहितं देवि ! पाहि बालं समातृकम् ।।
ॐ घृतेन सीता मधुना समज्जयतां विश्वै-
र्देवैरनुमता मरुद्भिः । ऊर्ज्जस्वती पयसा
पिन्वमानास्मान् सीते पयसाभ्याववृत्स्व ।।
ॐ आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पति-
स्तव वृक्षोऽथ बिल्वः । तस्य फलानि तपसा
नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः ।।

इति पंचामृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानमाचमनीयङ्गन्धोदक स्नानमुद्वर्तनस्नानं समर्पयामि । सर्वोपचारार्थेगन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि ।। अथ वस्त्रोवस्त्रे-

दुकूलादियुतं देवि, नानारत्नैर्विभूषितम् ।
परिधत्स्वाऽमलं वस्त्रं, रक्ष मेऽपत्यसूतिके ।।
ॐ उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना
सह । प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रे ऽस्मिन् कीर्ति-
मृद्धिं ददातु मे ।।

इति वस्त्रोपवस्त्रे समर्पयामि ।। अथोपवीतम्-

स्वर्ण-सूत्रमयं दिव्यं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।

उपवीतं मया दत्तं गृहाण जगदम्बिके ॥
ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा० ॥

इति यज्ञोपवीतं समर्पयामि ॥ अथालङ्काराः-

हार कङ्कण केयूर मेखला कुण्डलानि च ।
गृहाण कालिरात्रि त्वं, रक्ष मे सुतसूतिके ॥
ॐ क्षुत्पिपासामलाञ्ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् । अभूतिमसमृद्धिञ्च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥

इत्याभरणानि समर्पयामि । अथ चन्दनम्-

कर्पूरागुरुकस्तूरी-कङ्कोलादिसमन्वितम् ।
चन्दनं स्वीकुरु त्वं मे, रक्षबालञ्च सूतिकाम्॥
ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टाङ्करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

इति चन्दनं समर्पयामि नमः ।, अथ पुष्पाणि-

सुमाल्यानि सुगन्धीनि मालत्यादीनि चाम्बिके ! गृहाण वरदे देवि, रक्ष बालञ्च सूतिकाम् ।। ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि । पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ।।

इत्यक्षतान् पुष्पाणि च समर्पयामि नमः ।। अथ धूपम्-

वनस्पत्युद्भवं धूपं, दिव्यं स्वीकुरु देवि मे । प्रसीद सुमुखी भूत्वा, रक्ष मे सुतसूति, के ।। ॐ कर्द्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भ्रम कर्दम । श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ।।

इति धूपमाघ्रापयामि ।। अथदीपम्-

आज्यवर्तिकृतं देवि, ज्योतिषां ज्योतिषन्तथा । जीवन्तिके गृहाणेमं, रक्ष मे सुतसूतिके ।। ॐ आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।। नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।।

इति प्रत्यक्षदीपं दर्शयामि नमः ।। अथ नैवेद्यम्-

नैवेद्यं लेह्यपेयादिषड्रसैश्च समन्वितम्। भुङ्क्ष्व देवि ! गुणैर्युक्ता, रक्ष मे सुतसूतिके ॥ ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् । चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मऽआवह ॥

इति नैवेद्यं निवेदयामि नमः ॥ आचमनीयं समर्पयामि नमः ॥ अथ फलानि-

ॐ आर्द्रां यस्करिणीं यष्टिं,सुवर्णां हेममालिनीम् । सूर्य्यां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म ऽआवह ॥

इति ऋतु फलानि समर्पयामि नमः ॥ अथ ताम्बूलम्-

नागवल्लीदलं रम्यं, पूगीफलसमन्वितम्। भद्रे गृहाण ताम्बूलं, पाहि मे सुतसूतिके ॥ ॐ ताम्मऽआवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् । यस्यां हिरण्यं प्रभूतिं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम् ॥

इति ताम्बूलं समर्पयामि । पूगीफलं समर्पयामि । अथ दक्षिणा-

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य

जातः पतिरेक ऽआसीत् । स दाधार पृथिवी-न्द्यामुते माङ्कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

इति स्वर्णं दक्षिणां समर्पयामि ॥ अथ कर्पूरनीराजनम्-

कदलीगर्भसम्भूतं, कर्पूरञ्च प्रदीपितम् ।
आरार्तिकमहं कुर्वे, रक्ष बालञ्च सूतिकाम् ॥

अथ पुष्पांजलिः-

नानासुगन्धपुष्पाणि, यथाकालोद्भवानि च ।
पुष्पाञ्जलिं गृहाणेमं, रक्ष बालञ्च सूतिकाम्

अथ प्रदक्षिणा-

ॐ ये तीर्त्थानि प्प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः । तेषा ँ सहस्रयोजनेव धन्न्वानि तन्न्मसि ॥ ॐ यानि-कानि च पापानि, जन्मान्तर-कृतानि च । तानि-तानि प्रणश्यन्तु, प्रदक्षिण पदे-पदे ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः० प्रदक्षिणाञ्च समर्पयामि नमः ॥

अथ प्रार्थना-

ॐ षष्ठीदेवि ! नमस्तुभ्यं, सूतिकागृहशालिनि । पूजिता परया भक्त्या, दीर्घ-

मायुः प्रयच्छ मे ॥ १ ॥ जननीं जन्म-सौख्यानां, वर्धिनीं धनसम्पदाम् । साधिनीं सर्वभूतानां, जन्मदे त्वां नता वयम् ॥ २ ॥ गौरीपुत्रो यथा स्कन्दः, शिशुत्वे रक्षितः पुरा । तथा ममाप्ययमुं बालं, रक्ष षष्ठि ! नमोऽस्तुते ॥ ३ ॥

अनेन पूजनेन विघ्नेशजन्मदा जीवन्त्यपरनाम्नी भगवती-षष्ठीदेवी प्रीयताम् ॥ ततः सूतिकागृहे देव्यै माषभक्तबलिं दद्यात्

ॐ क्षेत्रसंरक्षिके देवि, सर्वविघ्नविना-शिनि । बलिं गृहाण मे रक्ष, क्षेत्रं सूतीञ्च बालकम् ॥ इमं माषभक्तबलिं क्षेत्रसंरक्षि-कायै महादेव्यै समर्पयामि नमः ॥

ततो दिग्पालदेवतापूजनं कुर्यात्तथा तेभ्यो माषभक्त-बलिं दद्यात् ॥ आरात्तिकञ्च कृत्वा द्वारदेशे चागत्य द्वार-स्योभयतः कज्जलेन द्वे-द्वे मातृप्रतिमे लिखेत् ॥ तन्नामानि-

धिषणा वृद्धिमाता च, महागौरी च पूतना । आयुर्दात्र्यो भवन्त्वेता, सदा बालस्यमे शिवाः

ततः पञ्चोपचारैःसम्पूज्य

'ॐ धिषणादिचतसृमातृभ्यो नमः"

तस्यांच रात्रौ बद्धग्रीवस्यछागस्य कर्णताडनात् पुन.पुनः महाशब्दं कारयेत् येन भूतप्रेताद्या विनश्येयुः ।। पुनश्च पूजित. धनुषा राहुवेधमपि कारयेत् ।। ततो ब्राह्मणेभ्यो दणिणादिकं दत्वाऽऽशिषो गृह्णीयात् ।। दशमदिने च षष्ठीदेवतादीन् विसर्जयेत् ।। पंचमषष्ठदिवसनोः सशस्त्रपुरुषाः, नृत्यपराः स्त्रियश्च रात्रौ जागरणं कुर्युः, तत्र वेदपाठिनो ब्राह्मणाश्च-शान्तिपाठं (पृष्ठ १९) सस्वरैः पठेयुः ।। अथ भूयिसीदक्षिणा-संकल्पः-

ॐ अद्येत्यादि० देशकालौ संकीर्त्य, अमुकोऽहं, मम जातस्यात्मजस्य दीर्घायुरारोग्याभ्युदयप्राप्तयेऽस्मिन् षष्ठीमहोत्सव-कर्मणि कृतायाः स्कन्दप्रद्युम्नषट्कृत्तिकानां षष्ठीदेव्याश्च पूजायाः साद्गुण्यार्थे, न्यूनातिरिक्तसर्वदोषपरिहारार्थमिमां दक्षिणां नानागोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यस्तथा-याचकाऽनाथनटनर्तकगायकेभ्यश्च विभज्य दास्ये ।।

ॐ शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु ।।

❀ अथ षष्ठी-महोत्सव-कथा ❀

ॐ नारायणं नमस्कृत्य, नरञ्चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं व्यासं, ततो जयमुदीरयेत् ।। १ ।।
श्री युधिष्ठिर—उवाच ।। पुत्रजन्मनि कन्यायां,
उत्सवः को विधीयते । किं दानं कस्य पूजा
च, तन्मे ब्रूहि जनार्दन ! ।।२।। श्रीकृष्ण-उवाच-
श्रृणु पाण्डव ! यत्नेन,सुतोत्पत्तिमहोत्सवम् । जन्म-
षष्ठदिने कार्य्या, षष्ठीनाम्नीं त्रिशूलिनीम् ।।३।।
पीठेऽपराह्णसमये, गोमयीं प्रतिमां लिखेत् । कप-
र्दिकाः प्रदातव्याश्चांगे चांगे विशेषतः ।।४।।कर्णयोः
कुण्डले देये, दूर्वापल्लवशोभिते । दिव्यवस्त्रपरी-
धानां, तां देवीं पूजयेत्ततः ।।५।। अग्रे दीपाष्टकं
देयं, नैवेद्यैर्विविधैः शुभैः नारिकेलादिकं तद्वद्, देश-
कालोद्भवैः फलैः ।। ६ ।। कलशं स्थापयेत्तत्र,
अग्रतः पल्लवान्वितम् । द्विजन्मानं सपत्नीकं, सरा-
चारसमन्वितम् ।।७।। आहूय कारयेत्तस्यास्तयो-
र्हस्तेन पूजनम् । शुल्कतण्डुलवेद्यां तु, तस्योपरि
समास्थिताम् ।।८।। नृत्यगीतविनोदेन, वाद्येन च
युधिष्ठिर ! ।। रात्रौ जागरणं कार्य्यं, दैवज्ञेन द्विजैः
सह ।।९।। वटकाष्टकमालाभिर्वद्धग्रीवमजासुतम् ।
पुनः पुनर्महाशब्दं, कारयेत्कर्णताडनात् ।। १० ।।
डाकिन्यो धातुधानाश्च, भूतप्रेतपिशाचकाः। बाल-

ग्रहाश्च नश्यन्ति, तच्छब्दाकर्णनाद् ध्रुवम् ॥११॥
तत्र दानानि देयानि ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः । प्रथमे-
ऽहनि षष्ठे वा, दाता नाप्नोति सूतकम् ॥ १२ ॥
दानं प्रतिग्रहं तत्र, श्राद्धञ्च क्रियते यतः । प्रभाते
दीयते दानं, नटनर्तकगायकान् ॥ १३ ॥ स्त्रियः
सभर्तृकाः पूज्या, वस्त्रालंकरणादिभिः । अनेन
विधिना यस्तु, षष्ठीं देवीं प्रपूजयेत् ॥ १४ ॥ आ-
युर्वृद्धिः भवेत्तस्य, सन्ततेरपि पाण्डव ! । पुत्रे जाते
व्यतीपाते, ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः । पितुः सम्वत्सरदिने-
दानं कोटिगुणं भवेत् ॥ इति षष्ठीकथा ॥

❀ अथ नामकर्मारम्भः ❀

तत्र जन्मदिनाद् दशमेऽहनि सूतिकां चोत्थाप्यै-कादशेऽहनि [विहितदिनान्तरे वा] पिता नाम कुर्य्यात् । पञ्चगव्यप्रोक्षणपुरस्सरं सूतिकायै पञ्चगव्यं दत्वा कुमारं संस्नाप्याऽहते वाससी परिधाय, धृतमङ्गलतिलकः,

---

यह नाम-करण संस्कार यदि विहित-समय पर न हो सके तो आशौच के अनन्तर, अथवा छठे-मास में अथवा वर्ष-दिन पर भी कर सकते हैं । 'पिता नामकरण करे'—इस वाक्य से अन्य—संस्कारों में भी पिता के कर्त्ता होने का नियम शास्त्रों में आता है । माता—पिता तथा बच्चे को स्नान करके नवीन—वस्त्र धारण करने चाहिये । बच्चे को गोद में लेकर माता पूर्वाभिमुख होकर आसन पर बैठे, और पिता हवन—वेदी पर अग्नि—स्थापन करे ।

शुभासने चोपविश्याचम्य, प्राणानायम्य, कृतस्वस्त्ययनः, प्राङ मुखः सामग्रीं सम्पाद्य, गणेशादिपंचांगदेवताः सम्पूज्य, संकल्पं कुर्यात्

ॐ अद्येत्यादि० अमुकशर्माऽहं ममास्य (यथा-काले) जातस्य पुत्रस्य वा कन्याया बीजगर्भसमुद्भवैनोऽपमार्जनायुरभिवृद्धि—द्वारा श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थंनामकरणसंस्कारं करिष्ये ॥ इति सङ्कल्प्य ॥ पुण्याहवाचनान्ते प्रजापतिः प्रीयतामिति-वदेत् ॥

ततोऽग्नेः पश्चिमतो बालकमादाय 'कुशकण्डिकां' कुर्य्यात् ॥ तत्रक्रमः-

❀ अथ कुश-कण्डिका विधिः ❀

भाषार्थ-एक हाथकी चौकोर हवन-वेदीमें पहिले पञ्च भू-संस्कार करे। यथा-तीन कुशाओं द्वारा हवन-वेदी को दो बार झाड़कर उन कुशाओं का ईशानकोण में परित्यागन करे। पुनः गोमय-जल से वेदी का लेपन करे और स्रुवा के मूल-भाग से उस वेदी में प्रागग्र उत्तरोत्तर प्रादेश-मात्र तीन-रेखाएँ खींचे। उल्लेखन-क्रम द्वारा अनामिका-अंगुष्ठ से उन रेखाओं के मध्य से कुछ मृत्तिका उठा कर ईशान,कोण में फेंक दे। फिर वेदी पर कुछ जल के छींटे

देवे। एक काँसे अथवा मिट्टी के पात्र में अग्नि को ढक कर लावे और उसे पश्चिमाभिमुख प्रथम अग्नि-कोण में रखे। पुनः यथा विधिः मन्त्रों द्वारा अग्नि को वेदी पर स्थापित करे। यजमान पहिले संकल्प-पूर्वक उत्तर-दिशा में ही ब्रह्मा का गन्धाक्षत पुष्प ताम्बूल, एवं वस्त्रादि द्वारा वरण करे। पुनः ब्रह्मा अपना यथा विधिः वरण कराके 'वृतो ऽस्मि' ऐसा कहे। पुनः यजमान कहे कि "हे ब्रह्मन्! आप यथा-विहित कर्म करो"। तब 'करवाणि' इस प्रकार ब्रह्मा कहे। तदनन्तर अग्नि से दक्षिण-भाग में पहिले से ही अष्ट-दल पद्म पर पूर्वाग्र तीन कुशाओं का १ आसन ब्रह्मा के बैठने के लिये बिछा कर रखे। पुनः अग्नि के पूर्व की तरफ से ब्रह्मा को प्रदक्षिणा-क्रम से दक्षिण-दिशा में लाकर कहे कि-'इस कर्म्म में तुम ब्रह्मा बनो'। 'भवानि'-अर्थात् मैं यहाँ ब्रह्मा हो गया हूँ-इस प्रकार ब्रह्मा कहे। तदनन्तर ब्रह्मा को पूर्व कल्पित-कुशासन पर उत्तराऽभिमुख करके विराजमान करे। यदि प्रत्यक्ष ब्रह्मा न हो तो ५० कुशाओं का ब्रह्मा बना लेना चाहिये। यथा पञ्चाशत्कुशको ब्रह्मा, तदर्धं त्वत्र विष्टरः। ऊर्ध्वकेशो भवेद् ब्रह्मा, लम्बकेशस्तु विष्टरः। दक्षिणावर्तको ब्रह्मा, वामावर्त्तस्तु विष्टरः ॥इति॥ पुनः प्रणीता-पात्र को जल से भरकर तथा उसे तीन-कुशाओं से ढककर, अनुमति लेने के लिये ब्रह्मा का मुख देखकर, अग्नि से उत्तर में पूर्वाग्र तीन-कुशाओं के आसन पर रख दे।

इसके अनन्तर हवन वेदी के चारों ओर कुशाओं का परिस्त, रण करे। यथा अग्निकोण से ईशान कोण तक चार'कुशाएँ, व्रह्मा से अग्नि पर्यन्त पूर्वाग्र.भाग करके चार कुशाएँ, नैऋत्य-कोण से वायव्य'कोण तक चार कुशाएँ, तथा अग्नि से प्रणीता.पात्र पर्यन्त पूर्वाग्र भाग करके चार.कुशाएँ यथा क्रम बिछावे। इस प्रकार वेदी के चारों ओर ४.४ कुशायें बिछाने से कुल १६ कुशाएँ हुईं। तदनन्तर अग्नि से उत्तर-भाग में पश्चिम से पूर्व तक क्रमशः पवित्रच्छेदन के लिए तीन कुशाएँ तथा पवित्र बनाने के लिए दो.कुशाएँ (जिनके भीतर अन्य कोई कुशा न हो, और जिनका अग्र भाग खण्डित न हो ऐसी) रखे। तत्पश्चात् प्रोक्षणी पात्र, घृतस्थाली, गौघृत, सम्मार्जन के लिये बद्ध पाँच कुशाएँ, प्रादेश.मात्र ढाक की तीन समिधाएँ, स्रुवा, शुचिः, उपयमन निमित्त वेणी रूप तीन कुशाएँ तथा ब्रह्मा के लिए २५६ मुट्ठियाँ चाबल जिसमें आ सकें ऐसा एक ताँबे या पीतल का पूर्ण-पात्र आदि समस्त वस्तुएँ वहाँ स्थापित करदे। पुनः पवित्रच्छेदन की तीन'कुशाओं से प्रादेश मात्र दो पवित्र छेदन करे, फिर दक्षिण हाथ से सपवित्र प्रणीता के जल को तीन बार प्रोक्षणी.पात्र में डाले। पुनः दोनों हाथों के अनामिका-अंगुष्ठ से उत्तराग्र.पवित्र पकड़ कर प्रोक्षणी.पात्रस्थ जल का तीन बार उत्पवन करे। फिर प्रोक्षणी पात्र को बाँये हाथ में उठाकर, सीधे हाथ के अनामिका-अंगुष्ठ में पवित्र लेकर

प्रोक्षणी-जल का तीन वार उदिंगन करे। पुनः प्रणीतोदक द्वारा प्रोक्षणी-पात्र का प्रोक्षण (अभिसेचन न) करे। पुनः प्रोक्षणी जलसे पवित्रद्वारा यथाऽऽसादित वस्तुओं का अभि-सेचन करे। पश्चात् अग्नि तथा प्रणीता-पात्र के मध्यस्थ प्रोक्षणी-पात्र को स्थापित कर दे। पुनः आज्य-स्थाली में घी को भर कर प्रज्वलित-अग्नि पर तपाने के लिये रख दे। एक तिनके वा कुशा को अग्नि से जलाकर प्रदक्षिण क्रम से अग्नि के चारों-ओर फिरा कर, उसे अग्नि में फेंक देवे। पुनः स्रुवा को अधोमुख करके अग्नि पर तपावे। पुनः पास में रखी हुई सम्मार्जन-कुशाओं के अगले भाग से स्रुवा के भीतर का, और मूल भागसे बाहिर का सम्मार्जन [झाड़पौंछ] करे। पुनः स्रुवा पर प्रणीतोदक से पवित्र द्वारा छींटें लगा-कर पुनः उसे तीनबार तपा कर अग्नि से दक्षिण-भाग में रख देवे, इसी प्रकार शुचिका भी संस्कार करे। पुनः सम्मा-र्जन कुशाओं को अग्नि में फेंक देवे। पुनः तपे हुए घी को अग्नि से उतार कर अग्नि से उत्तर में रखे। फिर प्रोक्षणी-वत् घी का भी पवित्रों द्वारा तीनबार उत्पवन करे। पुनः उस घी में जो कुछ अपवित्र तिनका, कीड़ा-आदि वस्तु हों, तो उन्हें निकाल कर फेंक देवे। और फिर प्रोक्षणी-जल का पवित्रों से उत्पवन करे। तब फिर अपने बायें-हाथ में उप-यमन-कुशाओं को लेकर तथा खड़े होकर प्रजापति को मन में स्मरण करता हुआ घी में भिगोकर ढाककी तीन-समिधाएं

मौन होकर एक-एक कर अग्नि में चढ़ावे। फिर बैठकर सपवित्र प्रोक्षणी-जलकी धारा वेदीके ईशानकोण से लेकर उत्तर दिशा पर्यन्त परिक्रमण-विधिसे अग्निके चारों-ओर गिरावे, और पवित्रों को प्रणीता'पात्र पर रख देवे। प्रोक्षणी'पात्र का विसर्जन करके यजमान अपने बाँये'घुटने को पृथ्वी से लगाकर, एवं एक लम्बी कुशा द्वारा ब्रह्मा से अन्वारब्ध [सम्मिलित] होकर प्रज्वलित'अग्नि में स्रुवा से घृताहुतियों का होम करे, आहुति देनें के पश्चात् स्रुवा में जो हुतशेष का घी है, उसे प्रोक्षणी पात्र में प्रक्षेप करता जावे। 'स्वाहान्ते जुहुयाद्धोता, स्वाहया सह वा हविः [प० का०]' स्वाहा के अन्त में हवि को मृगी मुद्रा द्वारा अग्नि में प्रक्षेप करना शास्त्र' सम्मत है। प्रजापति का मन में ध्यान करता हुआ पूर्वाधार की आहुति मौन होकर देवे और आगे स्वयं यजमान स्वाहा के अन्तमें 'इदं न मम' बोलता हुआ आहुतियाँ देवे। दो आधारकी, दो'आज्य'भागकी, तीन महाव्याहृतियों' की, पाँच, 'सर्वं प्रायश्चित्त' की, एक'प्राजापत्य की, तथा एक'स्विष्टकृत्, की,ये सब १४ आहुतियाँ त्यागों सहित देवे। पुनः संस्रव' प्राशन करे। पुनः हस्तप्रक्षालन एवं आचमन करे। पश्चात् संकल्प-पूर्वक ब्रह्माजी को पूर्णपात्रसहित दक्षिणा दान करे ॥ इति कुशकण्डिका-विधिः ॥

हस्तमात्रपरिमितां चतुरस्रभूमिं त्रिभिर्दर्भैः परिसमुह्य,तान्कुशानैशान्याञ्च, परित्यज्य,

गोमयोदकेनोपलिप्य, स्रु वमूलेन स्फ्येन वोत्तरोत्तरक्रमेण त्रिरुल्लिख्योल्लेखनक्रमे-णाऽनामिकाङ्गुष्ठाभ्यांकिञ्चिन्मृदमुद्धृत्यै शान्यां क्षिपेत्, ततस्तं देशञ्जलेनाभिषिच्य, काँस्यभाजनेग्निमादाय, तत्प्रत्यङ्मुखं निदध्यात् ।। अथ ब्रह्मवरणम्—ॐअद्य कर्त-व्यनामकरणसंस्कारान्तर्गत होमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्त्तुममुकगोत्रम-मुकशर्म्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बू-लवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहंवृणे ।। ॐ वृतोऽ-स्मीति प्रतिवचनम् ।। 'ॐ यथाविहितं कर्म कुर्विति'-यजमानेनाभिहिते । ॐकरवाणि-इति प्रतिवचनानन्तरं—अग्नेर्दक्षिणतः शुद्धं-कमलासनं दत्त्वा तदुपरि प्रागग्रान्कुशाना-स्तीर्यास्मिन्—(नामकरण संस्कार) कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय । ॐ भवानीति तेनोक्ते—अग्नेः पूर्वादिग्भागतः प्रदक्षिणं कारयित्वा, ब्रह्माणमुत्तराभिमुखं कृत्वा

कल्पितासने चोपवेशयेत् ।। पुनः ।। प्रणीता-पात्रं पुरतः कृत्वा, वारिणा परिपूर्य, कुशै-राच्छाद्य, ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ।। ततः (कुशपरिस्त-रणम्)--बर्हिषश्चतुर्थभागमादायाऽऽग्नेया-दीशानान्तम् ।। १ ।। ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तम् ।।२।। नैरृत्याद्वायव्यान्तम्, ।।३।। अग्नितः प्रणीतापर्यन्तम् ।। ४ ।। ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि वा पवित्रच्छेदनार्थं साग्रम-नन्तर्गर्भं कुशपत्रत्रयम्, पवित्रार्थं कुशपत्र-द्वयम्। प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली, संमार्ज-नकुशाः पञ्च। उपयमनार्थं वेणीरूपकुशाः सप्त ।। प्रादेशमात्राः पालाशसमिधस्तिस्रः। स्रुवः। आज्यम्। तण्डुलपूर्णपात्रमेतानि-पवित्रच्छेदनकुशानांपूर्वपूर्वदिशि क्रमेणाऽऽ-सादनीयानि ।। ततः—पवित्रच्छेदनार्थंकुशैः प्रादेशमितपवित्रे च्छित्वा, (पवित्रच्छेदन-विधिः) द्वयोरुपरि त्रीणि निधाय, द्विमूलेन

प्रदक्षिणीकृत्य, सर्वाणि युगपद् धृत्वा, अनामिनाङ्गुष्ठाभ्यां च्छित्वा, द्वौ ग्राह्यौ· त्रिस्त्याज्यः । सपवित्र-दक्षिणपाणिना। प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय, त्वा, त्रिरुत्पवनम् । प्रोक्षणीपात्रस्य सव्य· हस्ते करणम् । अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्त· राग्रे पवित्रे गृहीत्वा, त्रिरुदिङ्गनम् । प्रणी· तोदकेन प्रोक्षणी-प्रोक्षणम् ॥ ततः ॥ प्रोक्ष· णीजलेन यथाऽऽसादितवस्तुसेचनं कुर्यात् ॥ ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणी पात्रनिधा· नम्, तत— आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः, आज्यमधिश्रित्य, ज्वलतृणं प्रदक्षिणं भ्राम· यित्वा वह्नौ तत्प्रक्षेपः ॥ ततस्त्रिः स्रुव· प्रतपनम् ॥ ततः सम्मार्जनकुशानामग्रैरन्त· रतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य, प्रणीतोद· केनाऽभ्युक्ष्य पुनस्त्रिः प्रतप्याऽग्नेर्दक्षिणतः कुशोपरि निदध्यात् ॥ तत-आज्यस्याग्नेर·

वतारणम्। उद्वास्याऽग्नेरुत्तरतोनिदध्यात्॥
तत-आज्यस्य प्रोक्षणीवदुत्पवनम् । आज्यमवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनम्। ततः पूर्ववत्प्रोक्षण्युत्पवनम् । तत उत्थायोपयमनकुशानादाय प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा, तूष्णीमग्नौ घृताक्ता स्तिस्त्रः समिधः क्षिपेत् ॥

अथोपविश्य सपवित्रप्रोक्षणीजलेनाग्निं प्रदक्षिणक्रमेण पर्युक्ष्य, प्रणीतापात्रे पवित्रे धृत्वा, कुशेन ब्रह्मणाऽन्वारब्धः, पातितदक्षिणजानुः, समिद्धतमेऽग्नौ स्त्रुवेणाऽऽज्याहुतीर्जुहुयात्। तत्राऽऽहुतिचतुष्टये प्रत्याहुत्यनन्तरं हुतशेषस्य घृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपस्तथाऽग्रिमदशाऽऽहुतिष्वपिहुतशेषस्यप्रक्षेपः

ॐ प्रजापतये स्वाहा—इदं प्रजापतये न मम (इति मनसा) ॥१॥ ॐ इन्द्राय स्वाहा—इदमिन्द्राय न मम ॥ इत्याघारौ ॥२॥ ॐ अग्नये स्वाहा—इदमग्नये न मम

॥३॥ ओ३म् सोमाय स्वाहा—इदं सोमाय न मम ॥ इत्याऽऽज्यभागौ ॥४॥

ओ३म् भूः स्वाहा—इदमग्नये न मम ॥१॥
ओ३म् भुवः स्वाहा—इदं वायवे न मम ॥२॥
ओ३म् स्वः स्वाहा—इदं सूर्याय न मम ॥३॥

॥ एता महाव्याहृतयः ॥ तथा –

ओ३म् त्वन्नोऽअग्ने व्वरुणस्य व्विद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो व्वह्नितमः शोशुचानो व्विश्श्वा द्वेषाᳬसि प्प्रमुमुग्ध्यस्म्मत्—स्वाहा ॥४॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां, न मम ॥ ओ३म् स त्वन्नो ऽअग्नेऽवमो भवोतीनेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो व्वरुणᳬ रराणो व्वीहि मृडीकᳬ सुहवो नऽएधि-स्वाहा ॥५॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां, न मम ॥ ओ३म् अयाश्चाग्ग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्श्च सत्यमित्व मयाऽअसि । अयानो यज्ञं व्वहास्य यानो धेहि भेषजᳬ स्वाहा ॥६॥ इदमग्नये अयसे, न मम । ओ३म्

ये ते शतं व्वरुणं ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्न्नोऽअद्य सवितोत व्विष्ष्णुर्व्विश्श्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्काः स्वाहा ।।७।। इदं वरुणाय, सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च, न मम ।। ॐ उदुत्तमं व्वरुणपाशमस्मदवाधमं व्विमद्ध्यम ँ श्रथाय । अथा व्वयमादित्यव्व्रतेतवानागसोऽअदितये स्याम-स्वाहा ।८।इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितयेच, न मम।

एताः सर्वप्रायश्चित्ताऽऽहुतयः ।। तदनन्तर गणेशादि देवताओं को नाममन्त्रों द्वारा आहुतियाँ देवै

❀ अथ द्वादश विनायक देवानां होमः ❀

ॐ महागणाऽधिपतये नमः स्वाहा ।१। ॐ विनायकाय नमः स्वाहा ।२। ॐ गजवक्त्राय नमः स्वाहा ।३। ॐ भालचन्द्राय नमः स्वाहा ।४। ॐ उपेन्द्राय नमः स्वाहा ।५। ॐ विघ्नविनाशाय नमः स्वाहा ।६। ॐ शिवसुताय नमः स्वाहा ।७। ॐ हरिनन्दनाय नमः स्वाहाः ।८। ॐ हेरम्बाय नमः स्वाहा ।९। ॐ लम्बोदराय नमः स्वाहा ।१०। ॐ कार्त-

वीर्याय नमः स्वाहा ।११। ॐ महावीर्याय नमः स्वाहा ।१२।

* अथ षोडश-मातृका होमः *

ॐ गौर्यै नमः स्वाहा ।१। ॐ पद्मायै नमः स्वाहा ।२। ॐ शच्यै नमः स्वाहा ।३। ॐ मेधायै नमः स्वाहा ।४। ॐ सावित्र्यै नमः स्वाहा ।५। ॐ विजयायै नमः स्वाहा ।६। ॐ जयायै नमः स्वाहा ।७। ॐ देव सेनायै नमः स्वाहा ।८। ॐ स्वधायैनमः स्वाहा ।९। ॐ स्वाहायै नमः स्वाहा ।१०। ॐमातृभ्यो नमः स्वाहा ।११। ॐलोकमातृभ्यो नमः स्वाहा ।१२।ॐधृत्यै नमःस्वाहा।१३।ॐपुष्ट्यै नमः स्वाहा ।१४। ॐतुष्ट्यै नमः स्वाहा ।१५। ॐ आत्मनः कुलदेवतायै नमः स्वाहा ।१६।

* अथ सप्तघृतमातृका होमः *

ॐ श्रियै नमः स्वाहा ।१। ॐलक्ष्म्यै नमः स्वाहा ।२। ॐ धृत्यै नमःस्वाहा ।३। ॐमेधायै नमः स्वाहा ।४। ॐ स्वाहायै नमः स्वाहा ।५। ॐ प्रज्ञायै नमः स्वाहा ।६। ॐ सरस्वत्यै नमः स्वाहा ।७।

❁ अथ सप्त स्थिर मातृका होमः ❁

ॐब्राह्म्यै नमः स्वाहा ।२। ॐ माहेश्वर्यै नमः

स्वाहा ।२। ॐ कौमार्यै नमः स्वाहा ।३। ॐ वैष्णव्यै नमः स्वाहा ।४। ॐ वाराह्यै नमः स्वाहा ।५। ॐ इन्द्राण्यै नमः स्वाहा।६।ॐ चामुण्डायै नमः स्वाहा।७।

* अथ पञ्चौंकारदेवता होमः *

ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा ।१। गायत्र्यै नमः स्वाहा ।२। ॐ गोवर्द्धनाय नमः स्वाहा ।३। ॐ पृथिव्यै नमः स्वाहा ।४। ॐ यज्ञपुरुषाय नमः स्वाहा ।५।

* अथ नवग्रहदेवता होमः *

ॐ सूर्य्याय नमः स्वाहा ।१। ॐ चन्द्राय नमः स्वाहा ।२। ॐ भौमाय नमः स्वाहा ।३। ॐ बुधाय नमः स्वाहा ।४। ॐ गुरवे नमः स्वाहा ।५। ॐ शुक्राय नमः स्वाहा ।६। ॐ शनैश्चराय नमः स्वाहा ।७। ॐ राहवे नमः स्वाहा ।८। ॐ केतवे नमः स्वाहा ।९।

अथ नवग्रहाधिदेवतानां होमः *

ॐ ईश्वराय नमः स्वाहा ।१। ॐ उमायै नमः स्वाहा ।२। ॐस्कन्दाय नमः स्वाहा ।३। ॐ विष्णवे नमः स्वाहा ।४। ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा ।५। ॐ इन्द्राय नमः स्वाहा ।६। ॐ यमाय नमः स्वाहा ।७। ॐ कालाय नमः स्वाहा ।८। ॐ चित्रगुप्ताय नमः स्वाहा ।९।

* अथ नवग्रह प्रत्यधिदेवतानां होमः *

ॐ अग्नये नमः स्वाहा । १ । ॐ अद्भ्यो नमः स्वाहा ।२। ॐ पृथिव्यै नमः स्वाहा ।३। ॐ विष्णवे नमः स्वाहा । ४ । ॐ इन्द्राय नमः स्वाहा । ५ । ॐ इन्द्राण्यै नमः स्वाहा ।६। ॐ प्रजापतये नमः स्वाहा । ७ । ॐ सर्पेभ्यो नमः स्वाहा । ८ । ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा । ९ ।

* अथ पञ्चलोकपालदेवतानां होमः *

ॐ गणपते नमः स्वाहा । १ । ॐ दुर्गायै नमः स्वाहा ।२। ॐ वायवे नमः स्वाहा । ३ । ॐ आकाशाय नमः स्वाहा ।४। ॐ अश्विभ्यां नमः स्वाहा।५।

* अथ दशदिग्पाल देवता होमः *

ॐ इन्द्राय नमः स्वाहा । १ । ॐ अग्नये नमः स्वाहा । २ । ॐ यमाय नमः स्वाहा ।३। ॐ निर्ऋतये नमः स्वाहा ।४। ॐ वरुणाय नमः स्वाहा । ५ । ॐ वायवे नमः स्वाहा । ६ । ॐ कुबेराय नमः स्वाहा ।७। ॐ ईश्वराय नमः स्वाहा । ८ ।ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा । ९ । ॐ अनन्ताय नमः स्वाहा । १० । ॐ क्षेत्रपालाय नमः स्वाहा । ११ ।

तदनन्तर जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो, उस नक्षत्र-मन्त्र की चार-चार आहुतियाँ देवै—

अथादौ-अश्विनीमन्त्रः ॐ यावांकशामधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञम्मिमिक्षतम् स्वाहा ।१। भरणी मन्त्रः-ॐ यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्य्यस्य त्वा तपसे । देवस्त्वा सवितामद्धानक्तु पृथिव्व्याः स ७ स्पृशस्प्पाहि । अर्च्चिरसि शोचिरसि तपोसि स्वाहा ।२। कृत्तिकामन्त्रः—ॐ अग्निन्दूतम्पुरोदधे हव्व्यवाहमुपब्ब्रुवे । देवाँ २ ऽआसादयादिह-स्वाहा ।३। रोहिणी मन्त्रः- ॐ प्रजापतेनत्वदेतान्न्यन्न्यो व्विश्श्वारूपाणि परिता बभूव । यत्कामास्ते जहुमस्तन्नोऽअस्तु व्वय ७ स्यामपतयो रयीणाम्-स्वाहा ।४। मृगशीर्षमन्त्रः- ॐ सोमो धेनु ७ सोमोऽअर्व्वन्तमाशु ७ सोमो व्वीरंकर्म्मण्ण्यन्ददाति । सादन्न्यम्विवदत्थय ७ सभेयम्पितृश्रवणं य्यो ददाशदस्म्मै-स्वाहा ।५। आर्द्रा मन्त्रः—ॐ इमा रुद्द्राय तवसे कपर्द्दिने क्षयद्द्वीराय प्प्रभरामहे मतीः । यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे व्विश्श्वम्पुष्ट्टङ् ग्रामेऽअस्म्मिन्ननातुरम्-स्वाहा । ६ । पुनर्वसुमन्त्रः—ॐ अदितिर्द्यौ रदितिरन्तरिक्षमदितिर्म्माता स पिता स पुत्रः । व्विश्श्वेदेवाऽअदितः पञ्चजनाऽ अदितिर्ज्जातमदितिर्ज्जनि त्वम्-स्वाहा

।७। पुष्यमन्त्रः—ॐ बृहस्पतेऽअतियदर्य्योऽअर्हाद्‌द्युमद्विभाति क्क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवसऽऋतप्प्रजाततदस्मासु द्रविणन्धेहि चित्रम्-स्वाहा ।८। आश्लेषा-मन्त्रः—ॐ नमोस्तु सर्प्पेब्भ्यो ये के च पृथिवी मनु । येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेब्भ्यः सर्प्पेब्भ्यो नमः ।९। मघामन्त्रः ॐ उदीरतामवरऽउत्परासऽउन्मध्यमाः पितरः सोम्या सः । असुँय्यऽईयुर व्वृकाऽऋतज्ञास्तेनोवन्तु पितरो हवेषु ।१०। पूर्वाफाल्गुनी मन्त्रः—भगप्प्रणेतर्ब्भगसत्यराधो भगेमान्धियमुदवाददन्नः । भगप्प्रनोजनय गोभिरश्वैर्भग प्प्रनृभिर्न्नृवन्तः स्याम-स्वाहा ।११। उत्तराफाल्गुनी मन्त्रः—ॐ अर्य्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रन्दानाय चोदय । व्वाचं व्विष्णुँ सरस्वतीँ सवितारञ्च व्वाजिनँ स्वाहा ।१२। हस्त मन्त्रः—ॐ उदुत्यञ्जातवेदसन्देवं व्वहन्ति केतवः । दृशे व्विश्वाय सूर्य्यम्-स्वाहा ।१३। चित्रामन्त्रः—ॐ त्वष्टा तुरीपोऽअद्भुतऽइन्द्राग्नी पुष्टिवर्द्धना । द्विपदाच्छन्दऽइन्द्रियमुक्षागौर्न्न व्वयो दधुः स्वाहा ।१४। स्वातीमन्त्रः—ॐ व्वायुरग्ग्रे गायज्ञप्प्रीः साकंगन्मनसा यज्ञम् । शिवो नियुद्भिः शिवाभिः

स्वाहा।१५। विशाखा मन्त्रः—ॐ इन्द्राग्नीऽआगत ॅं सुतंगीर्भिर्न्नभो व्वरेण्ण्यम् । अस्य पातन्धियेषिता-स्वाहा । १६। अनुराधा मन्त्रः-ॐ नमो मित्त्रस्य व्वरुणस्य चक्षसे महोदेवा यत हृत ॅं सपर्य्यत । दूर हृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्त्राय सूर्य्यायश ॅं सत-स्वाहा।१७। ज्येष्ठा मन्त्रः—ॐ त्त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र ॅं हवेहवे सुहव ॅं शूरमिन्द्रम्। ह्वयामि शक्क्रम्पुरुहूतमिन्द्र ॅं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः-स्वाहा। १८। मूलमन्त्रः-ॐ माता च ते पिता च तेग्ग्रं व्वृक्षस्य रोहितः। प्रतिलामीति ते पितागभे मुष्टिमत ॅं सयत्-स्वाहा। १९ । पूर्वाषाढामन्त्रः-ॐ आपाधमदभिशस्तीर शस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत् । देवास्तऽइन्द्रसख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण-स्वाहा। २०। उत्तराषाढा मन्त्रः-ॐव्विश्श्वेदेवा सऽआगत शृणुतामऽइम ॅं हवम् । एदम्बर्हिन्निषीदत। उपयाम गृहीतोसि व्विश्श्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्व्विश्श्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः-स्वाहा । २१। श्रवण मन्त्रः-ॐ व्विष्ण्णो रराटमसि व्विष्ण्णोः श्नप्त्रेस्त्थो विष्ण्णोः स्यूरसि व्विष्ण्णोर्द्ध्रुवोसि । व्वैष्ण्णव-

मसि व्विष्णण वेत्त्वा-स्वाहा ।२२। धनिष्ठा मन्त्रः—
ॐ व्वसोः पवित्त्रमसि द्यौरसि पृथिव्व्यसि मात-
रिश्श्वनो घर्म्मोसि व्विश्श्वधाऽअसि । परमेण
धाम्ना दृ ७ हस्वमाहृवाम्मते यज्ञपतिह्वर्षीत्
स्वाहा । २३ । शततारका मन्त्रः—ॐ व्वरुणस्यो-
त्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्क्कम्भसर्ज्जनीस्थो व्वरु-
णस्यऽऋतसदन्न्यसि व्वरुणस्यऽऋतसदनमसि व्वरु-
णस्यऽऋतसदनमासीद-स्वाहा । २४ । पूर्वाभाद्रपदा
मन्त्रः—ॐ त्वन्नोऽअग्ग्ने व्वरुणस्य व्विद्वान्देवस्य
हेडोऽअवयासि सीष्ठाः । यजिष्ठो व्वह्नितमः
शोशुचानो व्विश्श्वा द्वेषा ७ सि प्प्रमुमुग्ध्यस्स्मत्
स्वाहा । २५ । उत्तराभाद्रपदा मन्त्रः ॐ अहिरेव-
भोगैः पर्य्येति बाहुञ्ज्याया हेतिम्परिवाधमानः ।
हस्तग्घ्नो व्विश्श्वा व्वयुनानि व्विद्वान्नपुमान्न्पुमा
७ सम्पारिपातु व्विश्श्वतः-स्वाहा । २६ । रेवती
मन्त्रः—ॐ पूषन्तव व्व्रते व्वयन्नरिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्तऽइहस्स्मसि-स्वाहा।२७।इति नक्षत्रहोमः।
पुनः नीचे लिखे देवताओं को आहुतियाँ देवै-
अथतिथीशाः-वह्निर्विधाताऽद्रिसुतागणेशः सर्पो
विशाखोऽदितिजो महेशः । दुर्गा यमो विश्वहरिश्च

कामः शिवः शशांकस्तिथिस्वामिनश्च–इति ।१।
अथ तिथिदेवताः–ब्रह्मा त्वष्टा हरिः कालः, सोमाऽशिवमुनयः क्रमात् । वसुः शिवश्च, धर्मश्च, रुद्रवायू त्वनंग कः ।। अनन्तविश्वदेवौ च, पितरस्तिथिदेवता–इति । २ ।

ॐ प्रजापतये स्वाहा-इदं प्रजापतये न मम ।।९।। (इति मनसा प्राजापत्यम्) ।।ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा-इदमग्नये, स्विष्टकृते, न मम ।।१०।। इति

इति स्विष्टकृद्धोमः ।। ततः संस्रवप्राशनम् ।। पवित्राभ्यां मार्जनम् ।। अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः ।। ब्रह्मणे सदक्षिणां पूर्णपात्रदानम् । प्रणीतोदकेन संकल्पः-

ओमद्यैतन्नामकर्महोमकर्म्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म-प्रतिष्ठार्थमिदं दक्षिणासहितं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्रह्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे । (यजमानः)-'प्रतिगृह्यताम्' (ब्रह्मा) "ॐ प्रतिगृह्णामि" ।। इति ब्रह्मणे दक्षिणां दद्यात् ।। "ॐ स्वस्तीति"-प्रतिवचनम् ।

ततः-ॐ सुमित्रिया न ऽ आप ओषधयः सन्तु' इतिपवित्राभ्यां प्रणीताजलमानीय, तेनशिरः संमृज्य-ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च व्वयं द्विष्मः ।

प्रणीतान्युब्जीकरणमग्नेः पश्चिमतः ॥ ततः परिस्तरण-क्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिघार्य हस्तेनैवाग्नौ जुहुयात्। तत्र मन्त्रः-

ॐ देवा गातु विदो गातुं व्वित्वा गातु-मित । मनसस्पतऽइमन्देव यज्ञ ७ स्स्वाहा व्वातेधाः-स्वाहा ॥ इदं वाताय न मम ॥

॥ इति बर्हिहोमः ॥ प्राङ्मुखं पुत्रमादाय नव्यवस्त्रे कुङ्कुमपिष्टतकेन धान्यपूर्णस्थाल्यां सुवर्णशलाकया वा प्रथमं कुलदेवतासम्बद्धं नाम, द्वितीयमुपेन्द्रादि-मास-नाम, तृतीयम-वकहड-होडाचक्रानुसारेण नाक्षत्रं नाम, चतुर्थं सूत्राऽनुसारेण *द्व्यक्षरं चतुरक्षरं षडक्षरं वा घोषसंज्ञकमन्तः स्थाक्षरान्वितं नाम, पञ्चमं स्वेच्छाऽनुसारेण नाम लिखित्वा-

---

*किसी विद्वान्-दैवज्ञ को बुलवाकर शास्त्रोक्त-विधि से पुत्र या पुत्री का यथोचित नाम निकलवावे । उनके नामाक्षरों के मध्यस्थ-[ग घ ङ, ज झ ञ, ड ढ ण, द ध न, ब भ म, य र ल, व ह] इन अक्षरों में से कोई एक या दो होने आवश्यक हैं। पुरुषों के नाम सम-वर्णो क तथा स्त्रियों के नाम विषम-वर्ण वाले होने चाहिए।

'ॐ मनो जूतिरितिमन्त्रेण प्रतिष्ठाप्य "ॐनाम देवताभ्यो नमः" इति

इति यथोपचारैः सम्पूज्य, पुत्रस्य दक्षिण कर्णे पित्रा कथयति-

भोः पुत्र ! त्वं (अमुक) कुलदेवताभक्तोऽसि ॥१॥ भोः पुत्र ! त्वं (अमुक) मास नामासि ॥२॥ भोः पुत्र ! त्वं (अमुक) नाक्षत्रनामासि॥३॥ भोः पुत्र! त्वं (अमुक) सूत्रानुसारेण नामा ऽसि ॥४॥ भोः पुत्र ! त्वं [अमुक] व्यावहारिक नामाऽसि ॥५॥

इति क्रमेण दक्षिणकर्णे श्रावयित्वा, शर्म्मान्तं विप्रस्य, वर्म्मा-

---

इसके साथ-साथ स्त्रियों के नाम का अन्तिम-वर्ण दीर्घस्वर वाला होना आवश्यक है। पुरुषों के नाम यथा—रुद्र, हरिदत्त, गणपतिराम आदि, एवं स्त्रियों के नाम यथा-श्री, बिमला, कलावती आदि।

तथा—नर्क्ष-वृक्ष-नदी-नाम्नीं, नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।

नं पक्ष्यहि-प्रेष्यनाम्नीं, न च भीषणनामिकाम् ॥

अर्थात्—स्त्रियों के—[नक्षत्र]=विशाखा, रोहिणी-आदि, [वृक्ष]=कपित्था, अश्वत्था-आदि, [नदी]=त्रिवेणी, नर्मदा-आदि, [अन्त्या]=चाण्डाली आदि, [पर्वत]=विन्ध्याचला, सुरालया—आदि, [पक्षी]=कोकिला, मैना आदि, [अहि]=नागिनी आदि, [प्रेष्य]=किंकरी आदि, [भोषण]=कराली, चण्डिका-आदि नाम सर्वथा वर्जित हैं।

न्तं क्षत्रियस्य,गुप्तान्तं वैश्यस्य,दासान्तं शूद्रस्य चनाम कुर्या-दिति । पुनः पिता कुलग्नादिदोषनिवारणार्थं दानादिकं कुर्य्यात् । देवब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य, दक्षिणां दत्वा शुभा-शिषो गृहीत्वा, गणेशादिदेवतानां विसर्जनं कुर्यात् [पुष्पा-क्षतप्रक्षेपैः स्थापितदेवान् विसर्जयेत्-

ॐ उत्तिष्ठ ब्ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वे महे । उप प्प्रयन्तु मरुतः सुदानवऽ इन्द्रप्प्रा-शूर्भवासचा ॥१॥ ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे, स्वशक्त्या पूजिता मया । इष्टकामप्रसिद्ध्-यर्थं, पुनरागमनाय च ॥ २ ॥ इति ॥

नामकरण-संस्कार-'जन्माहे द्वादशाहे वा, दशाहे वा विशे-षतः । कुर्याद्वै नामकरणं,कुमारस्येति वै श्रुतेः ।' इस श्रुति-विधान से जन्म के दिन ही बालक का नाम-करण स्वयं पिता स्वेच्छानुसार करे । ऐसा शाँख्यायन-गृह्यसूत्र का वचन पाया जाता है । बालक के नाम में दो, चार वा छः अक्षर होने चाहिये, तथा नाम का प्रथमाक्षर हश्-प्रत्याहार [ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द] वाला हो क्योंकि-इन अक्षरों का घोष-प्रयत्न है । तथा नाम के बीच में यण-प्रत्याहार [य व र ल] में से ओई वर्ण हो। यह कृदन्त होना चाहिये, तद्धितीय नहो । दशरात्रिके बीतने पर उत्थापव किया जाता है । इस दिन माता-पिता एवं

बालक तीनों शिर सहित स्नान करके शुद्ध हों, पुनः नवीन वस्त्रालंकार धारण करें। 'अशौचशुद्धावेकादशेऽह्नि नाम कुर्वीत सुमुहूर्ते'-यह बचन पाया जाता है।

नामकरण-मुहूर्तः—जन्मसे ११-१२ वें दिन। अश्विनी, रोहिणी, मृग०, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तरा३, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शत०, रेवती,-ये नक्षत्र तथा रवि, भौम, गुरुवार-ये तीन वार और लग्न बल एवं सुसमय देखकर वेदविज्ञ-आचार्य वा पुरोहित को बुलवावे। आचार्य वेद विधि-अनुसार गणेशादिपञ्चदेव पूचन कराके, जन्म-नक्षत्र के चरणानुसार उस बालक का सुन्दर नाम निकाले, और पिता, आचार्य, तथा पुरोहित बालक के दक्षिण--कान में उस नाम का उच्चारण करें। ऊपर कहे गये दो प्रकार से नाम ये माता-पिता को गुप्त रखने चाहिये, जिससे कोई भी शत्रु बालक पर मारण-मोहनादि कोई उपचार न कर सके। यह गोपनीय नाम माता-पिता के अतिरिक्त और कोई भी न जाने

तीसरा व्यावहारिक प्रसिद्ध नाम ऊपर मूल में लिखित-। विधि द्वारा अपनी रुचि-अनुसार रखना चाहिए। नामकरण होते ही प्राणी पर ग्रहचक्र लग जाता है, तथा उसे इसी के अनुसार जीवन में सुख-दु:खादि भोग भोगने पड़ते हैं। शयनावस्था में अचेत हुआ प्राणी जिस नाम से जाग्रत् हो जाता है, उसी प्रसिद्ध नाम से व्यवहार में गोचर-ग्रहों का फलादेश विचारना चाहिए॥ इति नामकरण संस्कार विधि:॥

❀ अथ निष्क्रमण-संस्कार विधिः ❀

इस संस्कार में बालक को चौथे महीनें में प्रथम सूर्याव लोकन कराया जाता है,जिससे उसमें आयु एवं कान्ति बढ़े

तत्र चतुर्थ-मासि चन्द्रतारानुकूले यात्रोक्तशुभमुहूर्त-दि बालकस्य गृहा निष्क्रमणं कुर्य्यात् । शिशुना सहितः प्रभा पिता मङ्गलद्रव्यैश्च स्नात्वा, शुभासने च स्थित्वाऽऽचम प्राणानायम्य ॥ देशकालौ संकीर्त्य सङ्कल्पं कुर्यात्—ॐ अद्ये त्यादि० ममास्य जातस्यात्मजस्य समस्त-रोगादिनिबर्हणपूर्व कमायुर्मेधाऽभिवृद्ध्यर्थं श्रीनारायण प्रीत्यर्थञ्च गृहाद् बाल कस्य निष्क्रमणमहं करिष्ये । तत्राऽऽदौ-निर्विघ्नतयाकार्यसि द्ध्यर्थं श्रीगणेशादिदेवतापूजनं मातृका पूजनं पुण्याह वाचनं नान्दीश्राद्धादिककर्म्ममहं करिष्ये ॥इति सङ्कल्पः। अथाऽष्टदले पद्मे गणपतिपूजनं मातृकापूजनं पुण्याहवाच नान्दीश्राद्धं चकुर्यात् ॥ ततःपिताऽलंकृतं बालकं सुशकुने मातृ आदाय गृहान्निष्क्रम्य, ॐ तच्चक्षुरितिमन्त्रेण सूर्यंप्रदर्शयेत्

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्च- रत् । पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शत ँ श्रृणुयाम शरदः शतम्प्रब्रवाम शरद शतमदीनाःस्याम शरदःशतम्भूयश्च शरद शतात् ॥

इत्यनेन सूर्यं दर्शयित्वा तं संपूज्य, फलपुष्पयुतं पयसा-र्घ्यञ्चदद्यात्–

ॐ आ कृष्णेन रजसा व्वर्त्तमानो निवे-शयन्नमृतम्मर्त्यञ्च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ ॐ एहि सूर्य्य ! सहस्त्रांशो ! तेजोराशे जगत्पते अनुकम्पय मां भक्त्या, गृहाणाऽर्घ्यं दिवा-कर ॥ इति सूर्य्यायार्घ्यं दत्त्वा प्रणमेत्-ॐ ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती, नारा-यणः सरसिजासनसन्निविष्टः ॥ केयूरवा-न्मकरकुण्डलवान् किरीटी, हारी हिरण्मय-वपु धृ तशङ्खचक्रः ॥१॥ नमो नमस्तेऽस्तु सदा विभावसो !, सर्वात्मने सप्तहयाय भानवे। अनन्तशक्तिर्मणिभूषणेन, ददस्व भुक्ति मम मुक्तिमव्ययाम् ॥२॥ अङ्के बालकमादाय देवालये गत्वा देवं प्रणमेत् ॥

पुनर्गृहमागत्य सुवासिनीभिर्नीराज्य दशब्राह्मणान् भोजयेत्। आचार्य्यादि ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दत्वा तेभ्य

आशिषो गृहीत्वा, ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे०-इति देवविसर्जनम् ॥ अद्यैव रात्रौ शुभवेलायां निम्नमन्त्राभ्यां चन्द्रमसं प्रदर्शयेत्-

ॐ दधिशङ्खतुषाराभं, क्षीरोदार्णव संभवम्।
नमामि शशिनंसोमं, शम्भोर्मुकुटभूषणम्॥१॥

॥ इति निष्क्रमण-विधिः ॥

निष्क्रमण-संस्कार का रहस्य-सूर्य चन्द्र एवं दर्पण आदि के प्रकाश से बालक की नेत्र ज्योति निर्बल [कमजोर] न हो जाय। इस सिद्धान्त से तीन-मास तक बालक को घर के भीतर ही प्रायः रखते हैं। पुनः चतुर्थ मास के आरम्भ में किसी दैवज्ञ द्वारा सुमुहूर्त निकलवायें तथा उनके द्वारा कही गई शास्त्र-विधि से बालक को सूर्य-चन्द्रावलोकन कराना चाहिये। बालक को चौथे मास में बाहिरी खुली हुई वायु-सेवन करने को मिलेगी तथा-चन्द्र-दर्शनादि से उसे आनन्द प्राप्त होगा। क्योंकि चित्त की प्रसन्नता से ही बालक का शरीर पुष्ट बनता है॥ इति निष्क्रमण-संस्कार रहस्य॥

❀ अथान्नप्राशन विधिः ❀

तत्र षष्ठेऽष्टमे वा मासि पूर्णे सम्वत्सरे वा बालकस्यान्नप्राशनं कुर्यात्। कन्यायास्तु पञ्चमे सप्तमे वामासि तत्र ज्योतिः शास्त्रोक्तसुमुहूर्तो चन्द्रताराऽनुकूलदिवसे, पिता कृत-नित्यक्रियः शुचिः शुक्लवासाः गणपत्यादिपञ्चाङ्गदेवताः सम्पूज्य, प्रतिज्ञासंकल्पं कुर्यात्-

देशकालाद्युच्चार्याद्याऽमुकोऽहममुकराशे-रस्य बालकस्य मातृगर्भापूतमलादिप्राशन-शुद्ध्यर्थमन्नाद्यब्रह्मवर्चसतेज इन्द्रियायुर्बल-लक्षण सिद्धये, बीजगर्भसमुद्भवनिखिलपाप निबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीतये ऽन्नप्राश-नकर्म्म करिष्ये ॥

ततः हस्तमात्रपरिमितां चतुरस्रां होमार्थं वेदीं विरच्य तत्र पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं मन्त्रेणाऽग्निञ्च *संस्थाप्यादौ वेदविदाचार्य्यब्रह्मणोर्वरणं कुर्य्यात् ॥ संकल्पः-

ॐ अद्येहामुकोऽहममुकराशेः पुत्रस्यान्न-प्राशनाङ्गहोमकर्मणि आचार्य्यब्रह्मणोःपूजन-पूर्वकं वरणं करिष्ये ॥

---

*तत्र मन्त्रः ॐ अग्निन्दूतम्पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे । देवां २ ऽआसादयादिह ॥

कर्मविशेषेऽग्निनामानि—पावको लौकिके ह्यग्निः प्रथमः सम्प्र-कीर्तितः । अग्निस्तु मारुतो नाम गर्भाधाने विधीयते ॥ ततः पुंसव-ने ज्ञेयः पवमानस्तथैव च । सीमन्ते मंगलो नाम, प्रबलो जातक-र्म्मणि ॥ नाम्नि वै पार्थिवो ह्यग्निः, प्राशने तु शुचिः स्मृतः । सभ्य-नामा तु चूडायां, व्रतादेशे समुद्भवः ॥ गोदाने सूर्यनामास्याद्वैश्वानरो विसर्गके । विवाहे योजको नाम, चतुर्थ्यां शिखिनामकः ॥ आवसथ्ये द्विजो ज्ञेयो, वैश्वदेवे तु पावकः । प्रायश्चित्ते तु विट् चैव, पाकयज्ञेषु

इति सङ्कल्प्याचार्य्यंब्रह्मणोर्वरणं कृत्वा, स्वर्णयुतञ्च कलश संस्थाप्य, तत्र ब्रह्मवरणसहिताऽऽदित्यादिनवग्रहानावाह्य पूजनञ्च विधाय, तत्रब्रह्मोपवेशनादि-आसादनान्ते विशेषोपकल्पनीयानि वस्तून्या सादयेत् [अन्नादिव्यञ्जनं, रसाश्च मधुसक्तुघृतानि, पुस्तकशस्त्राणि, निज-वृत्तिचिह्नानि च संस्थाप्य] पर्युक्षणान्तं कार्यं विधाय, [चर्वाज्य द्रव्यत्यागसङ्कल्पं-कुर्यात्]-

ॐ अद्येहामुकोऽहमुकराशेः पुत्रस्यान्नप्राशनहोमकर्मणा प्रजापतिं, इन्द्रं, अग्निं, सोमं, वाग्देवीं, वाजमाज्येन । तथा-प्राणमपानं चक्षुः श्रोत्रञ्चाज्यचरुणा । स्विष्टकृतमाज्येन, महाव्याहृतिदेवताः सर्वप्रायश्चित्तदेवताः प्रजापतिञ्च यक्ष्ये । इदं चर्वाज्यं मया तेभ्यः परित्यक्तम्-ॐतत्सद्यथादैवतमस्त्वति ।

पावकः ।। देवानां हव्यवाहश्च, पितृणां कव्यवाहनः । शान्तिके वरदः प्रोक्तः पौष्टिके बलवर्द्धनः ।। पूर्णाहुत्यां मृडो नाम, क्रोधाऽग्निश्चाभिचारके । वश्यार्थे कामदो नाम, वनदाहे तु दूषकः ।। कुक्षौ तु जाठरो ज्ञेयः, क्रव्यादो मृतदाहके । वृषोत्सर्गेऽध्वरो नाम, शुचये ब्राह्मणः स्मृतः ।। समुद्रे वाडवो ह्यग्निः, क्षये सम्वर्तकस्तथा । ब्रह्मा वै गार्हपत्ये स्याद्दक्षिणाग्ना-वथेश्वरः ।। विष्णुराहवनीये स्यादग्निहोत्रे त्रयोऽग्नयः । लक्षहोमेऽभीष्टदः स्यात्कोटिहोमे महाशनः ।। इति ।।

एवंत्यागं विधाय,तत्र वेधां पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं "शुचिनामानमग्निं" संस्थाप्य–

ॐ एतन्ते देव० इति मन्त्रेण ॐ भूर्भुवः स्वः शुचिनामाग्ने! इहागच्छेह–तिष्ठ, सुप्रतिष्ठितो वरदो भवेति–

प्रतिष्ठाप्य ततोऽग्निं ध्यायेत्–

ॐ चत्वारि चूटङ्गेति वामदेवऋषिः, त्रिष्टुप्छन्दः, अग्निर्देवता, अग्निध्याने विनियोगः। हस्ते पुष्पाण्यादाय–ॐ चत्त्वारि भृङ्गा त्त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्ता सोऽअस्य। त्त्रिधा बद्धो व्वृषभो रोरवीति–महादेवो मर्त्त्यां २ऽ आविवेश॥ ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे, जातवेदं हुताशनम्। हिरण्यवर्णममलं, समृद्धं विश्वतोमुखम्॥

इत्यग्निं ध्यात्वा–"ॐ शुचिनामाग्नये नमः" इति॥ नाममन्त्रेणाऽऽवाहनादि-नीराजनान्तं सम्पूज्य, कुशकण्डिकां विधाय, दक्षिणं जान्वाच्य, ब्रह्मणान्वारब्धो [मनसा] प्रजापतिं जुहुयात्–

ॐ प्रजापतये स्वाहा-इदं प्रजापतये, न

मम ।।१।। (तत्रप्रथमाहुतिचतुष्टये स्रु वा-
वस्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः)।
ॐ इन्द्राय स्वाहा-इदमिन्द्राय,न मम ।।२।।
ॐ अग्नये स्वाहा-इदमग्नये, न मम ।।३।।
ॐ सोमाय स्वाहा-इदं सोमाय,न मम ।।४।।

ततोऽ*द्वे घृताऽऽहुतीर्जुहोति-

ॐ देवीवाचमिति-श्रीभार्गवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, देवीवाग्देवता, घृताऽऽहुतिहवने-विनियोगः ।। ॐ देवीम्वाचमजनयन्त देवास्तां व्विश्श्वरूपाः पशवो व्वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्ज्जन्दुहाना धेनुर्व्वागस्मानुप सुष्टुतैतु—स्वाहा । इदं-वाचे, न मम ।।१।।
ॐ व्वाजो न-इति देवा ऋषयस्त्रिष्टुप्छन्दः, अन्नं-देवता, घृताऽऽहुतिहवने-विनियोगः ।।

ॐ व्वाजो नोऽअद्यप्र सुवाति दानं व्वाजो देवाँ२ऽऋतुभिःकल्पयाति व्वाजो हि मा सर्व्ववीरञ्जजान व्विश्श्वाऽआशा व्वाजप-

*ततोऽन्वारब्धं विना, साधारणाहुतिद्वयम् ।

तिर्ज्जयेयँ-स्वाहा। इदं वाजाय, न मम॥२॥

ततः स्रुवेण चरुमभिघार्य्याऽऽज्यप्लुतेन स्थालीपाकेन जुहोति-

ओ३म् प्राणेनान्नमशीय-स्वाहा। इदं प्राणाय, न मम॥१॥ओ३म् अपानेन गन्धानशीय-स्वाहा। इदमपानाय, न मम॥२॥ ओ३म् चक्षुषा रूपाण्यशीय-स्वाहा। इदं चक्षुषे, न मम॥३॥ ओ३म् श्रोत्रेण यशोऽशीय-स्वाहा। इदं श्रोत्राय, न मम॥४॥

तत आज्यचरुभ्यां ब्रह्मणाऽन्वारब्धोहविर्जुहुयात्-

ओ३म् अग्नये स्विष्टकृते-स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते॥

तत आज्येन भूराद्या नवाहुतीर्जुहुयात्-

ओ३म् भूः स्वाहा-इदमग्नये, न मम॥१॥
ओ३म् भुवः स्वाहा-इदं वायवे, न मम॥२॥
ओ३म् स्वः स्वाहा-इदंँ सूर्य्याय, न मम॥३॥
ओ३म् त्वन्नोऽअग्ने०-इदमग्नीवरुणाभ्याम्, न मम॥४॥ ओ३म् स त्वन्नोऽअग्ने०-इदमग्नी-

वरुणाभ्याम्, न मम ॥५॥ ॐ अयाश्च
ग्ने०—इदमग्नये अयसे, न मम ॥६॥
ये ते शतं०—इदं वरुणाय,न मम ॥७॥
उदुत्तमं०-इदं वरुणायाऽऽदित्य० न मम॥
ॐ प्रजापतये-स्वाहा, इदं प्रजापतये,
मम ॥९॥

ततः संस्रवप्राशनम् ॥ पवित्राभ्यां मार्जनम् ॥
पवित्रप्रतिपत्तिः ॥ ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम् ॥ तत्र सङ्कल

ॐ अद्येहेत्यादि० अमुकोहममुकरा
पुत्रस्याऽन्नप्राशनाङ्गहोमकर्मणःसाद्गुण्या
सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थञ्च सद्रव्यं पूर्णपात्रमि
ब्रह्मन्! तुभ्यं सम्प्रददे ॥

ततो ब्रह्मा पात्रं गृहीत्वा वदेत्—

"द्यौस्त्वा ददातु, पृथिवी त्वा गृह्णातु"

ततोऽग्नेः पश्चिमतः प्रणीताविमोकः—

ॐ आपः शिवाः शिवतमाःशान्ताः शान्
तमास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥

तत्र लग्नदानसंकल्पं कुर्यात्—

ॐअद्येहेत्याद्युच्चार्याऽमुकोऽहममुकराशेः मम पुत्रस्याऽन्नप्राशनलग्नाद्यत्र-तत्रस्थान-स्थितानां सूर्य्यादिनवग्रहाणां,दुष्टानांदुष्टफलो-पशान्त्यर्थं, शुभानां शुभफलाधिक्यप्राप्तये, इदं सुवर्णमिमां दक्षिणाञ्चनानागोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दास्ये ॥ ॐतत्सदस्तु ॥

ब्राह्मणेभ्या यथेष्ट-दक्षिणां दत्त्वा, सर्वाश्च रसान् सर्वमन्नं मध्वाज्यसक्तुसहितमेकस्मिन्कांस्यपात्रे कृत्वा, सुवर्णान्तर्हितया मुद्रिकया मातुरुत्सङ्गे स्थितं बालकं स्वांके स्थितं वा, देवतापुरतोऽनामिकांगुष्ठाभ्यां ॐ हन्तेति-मन्त्रेण सकृत् । तूष्णीं पञ्चवारं प्राशयेत् ॥

"हन्तकारं मनुष्याः"-इति श्रुतिवचनात् ॥

ततो मत्स्यजलेन त्रिवारं मुखं शोधयेत् ॥ ततो माता बालकं स्वांकाद्भूभावुपवेशयेत् । शिल्पानि विन्यस्य तस्य जीविकापरीक्षां कुर्यात् तत्पश्चात्तत्रस बालको वस्त्रशस्त्रलेखनीपुस्तकादिवस्तुषु यत्प्रथम स्पृशति,तेन तस्य जीविका भविष्यतीति ज्ञेयम् । ततो होमदक्षिणाकर्मसाङ्गदक्षिणासंकल्प-

ॐ अद्येत्यादि० अमुकराशेः पुत्रस्याऽन्नप्राशनाङ्गहोमकर्मणस्तथाऽन्नप्राशमकर्मणः

साङ्गफलप्राप्त्यर्थं साद्गुण्यार्थं चेमां दक्षिणा माचार्य्याय, तथाऽन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च विभज्यांह दास्ये। तथेमां भूयसीदक्षिण नानागोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यस्तथाऽन्येभ्यो नट नर्तकगायकादिदीनाऽनाथेभ्यश्च विभज्य दास्ये। तथा-षड्रसव्यञ्जनै र्यथासंख्यका ब्राह्मणाँश्च यथाकाले भोजयिष्ये ॐ तत दस्तु॥ इतिसङ्कल्प्य, यथेष्टदक्षिणां दत्त्वा रक्षाबन्धन-घृतच्छाया - ऽयायुष्करणाऽभि षेक-तिलक-मन्त्रपाठादिकं कारयित्वा, मह नीराजनञ्च कृत्वा, ब्राह्मणान्भोजयेत्, स्वेष्टमित्रबन्धुसहितः स्वयमपि भोज भुञ्जीत॥ इत्यलम्॥

अन्न-प्राशन-संस्कार- यह संस्कार पुत्रों का सम-मही में तथा पुत्रियों का विषम-महीनों में होना शास्त्रविहित है 'षष्ठे मास्यन्नमश्नीयात् [व्यासस्मृति १।१८]' इस व नानुसार छठे-मास में बालकको अन्न-प्राशन करावे। बाल ने जो माता के गर्भ में मलीनता-भक्षण की है, उसकी शु के लिये यह संस्कार किया जाता है। अब तक जो मा

स्तनोंसे दूध स्वरूप भोजनका आधार था अब आजसे अन्नका भी आधार मिलेगा और शारीरिक बल बढ़ेगा। अन्न कैसा बालक को देना चाहिए ? इसके लिये गृह्य-सूत्रकार लिखते हैं कि-'घृतौदनं तेजस्कामः' तथा 'दधिघृतमधुमिश्रितमन्नं प्राशयेत्।' अर्थात् घी-भात वा दही घी, शहद से मिश्रित अन्न बालक को चटाना चाहिये। यदि बालक पुष्ट हो तो १ बार मन्त्र सहित, तथा पाँच वार मौन (तूष्णीं) होकर अन्नादि चटावे। यह भी किसी आचार्य का वचन है, यथा-'पञ्च कृत्वस्तूष्णीं प्राशयेत्'। शास्त्रों का वचन है कि-यदि समय पर अन्न-प्राशन संस्कार न हो सके तो अन्य शुभमुहूर्त में भी किया जा सकता है॥ इति अन्न-प्राशन संस्कार॥

❀ अथ केशाऽधिवासनम् ❀

कृत्यमिदं चौल (मुण्डन) दिनात्पूर्वनिशायामेव विधेयम्। तत्राऽऽचार्य्यः मण्डपस्याग्नेय्यां गणपतिवेदीं निर्माय, तदुपरि रक्तवस्त्रञ्च प्रसार्य, रक्ताक्षतैरष्टदलं पद्मं विरच्य, रक्तसूत्रवेष्टितां मृण्मयीं गणपतिप्रतिमां स्थापयेत्। तत्रैवाऽक्षतैर्द्वादशविनायक-षोडशमातृका-पञ्चौंकार देवतासहिताः सर्वाः देवताः संस्थापयेत्। मध्ये पुण्याहवाचनकलशस्थापनार्थं पद्ममेकं विरच्य गणपतिवेद्याः पृष्ठभागे पट्टिकायां भित्तौ वा सप्तघृतमातृकाः संलेख्याः। ऐशान्याञ्च रक्तवस्त्रान्वितायां ग्रहवेद्यांसविधिनाक्षतपुञ्जैरधिदेवताप्रत्यधिदेवतापञ्चलोकपालसहिताः नवग्रहाश्चारोपणीयाः। तत्राऽग्निवेदिकायाः पश्-

चमे चोत्तरतश्चौलकर्माधिवासनोचितानि वस्तूनि संस्थाप-
येत् । तद्यथा-

मण्डपोत्तरदेशे तु, विद्वद्वृन्द सुशोभिते । कांस्यपात्रे
पल्वलार्थं, रक्तवृषभगोमयम् ॥ १ ॥ दुग्धं मधुञ्च विक्षिप्य,
दधि वा सर्वसिद्धिदम् । नवनीतमयं पिण्डं, शुभ्रवस्त्रोपसंवृतम्
॥२॥ तत्र संस्थापयेद्धीमान् *शल्लकीकष्टकत्रयम् । अयः
क्षुरं ताम्रपात्रे, सप्तविंशतिकान्कुशान् ॥ ३ ॥ पीतकौशेयव-
स्त्राणां, निर्मिते खण्डपञ्चके । रोचना य वदूर्वाभि-
× गौरि सर्षपकाऽक्षतैः ॥४॥ १राजिका २यूग ३मयूर पिच्छ-
स्वर्णकराजतैः । पञ्चपोटलिकाः कृत्वा, रक्तसूत्रेण वेष्टयेत्
॥५॥ आम्रपल्लवताम्बूलपत्राणि कोमलानि च । रक्तसूत्रेण
बध्नीयात्, जूटिकार्थं यथाविधिः ॥ ६ ॥ पञ्चपोटलिकाः
जूटाः, निर्मायोक्तविधानतः । मनोजूतीतिमन्त्रेण, प्रतिष्ठां
चैव कारयेत् ॥७॥ पुनर्यजमानमाहूय, आचार्य्यं-स्वस्तिपूर्व-
कम् । पूजनं सर्वदेवानां, कारयेच्च यथाविधिः ॥ ८ ॥

अलङ्कृतं माणवकं, सुस्नातञ्च सुवाससम् । सुवस्त्रा-
लंकृतायास्तु, मातुरङ्के निवेशयेत् ॥९॥ पिता कुर्यादथाचा-
र्य्यैः, सङ्कल्पं प्राङ्मुखः शुचि-

**ॐअद्येत्यादि-देशकालौ संकीर्त्याऽमुक-
नामशर्म्माहं, वर्म्माहं, गुप्तोऽहं वा, अस्यां**

---

* सफेद-सेही के ३ कांटे । × सफेद सरसों । १ राई । २ सुपाड़ी
३ मोरपंख ।

सन्ध्यायामेतस्य-अमुकशर्म्मणः कुमारस्य बीजगर्भसमुद्भवदोष परिहारार्थं बलायुर्व-र्चोमेधाभिवृद्ध्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यै श्वः करिष्यमाणचूडाकर्म्मसंसिद्ध्यै चाद्यरात्रौ केशानामधिवासनं करिष्ये ॥

इस प्रकार सङ्कल्प करके मण्डपस्थ समस्तदेवताओं का मन्त्रोपचारों द्वारा पूजन करें। पुनः पूर्व-निर्मित एवं प्रतिष्ठित ३ पोटलियाँ तथा ३ जूटिकाऐं लेकर केशों में यथा क्रमसे बाँधे। जैसे कि-प्रथम शिर के दाहिने भाग के केशों में एक पोटली और एक जूटिका, तथा शिर के पिछले भाग के केशों में एक पोटली और एक जूटिका, तदनन्तर शिर के बाँये-भाग के केशों में एक पोटली और एक जूटिका रक्षाबन्धन-मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रण करके मंगलघोष पूर्वक गीतगानों के साथ-साथ बालक के शिर में बाँधे। तदन्तर-

ॐ यदिति-दीर्घतमा-ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्द, इन्द्रो देवता, चूडाऽभिमन्त्रणे विनियोगः ॥ ॐ यदश्श्वाय व्वासऽ उपस्तृणन्त्यधीव्वासं या हिरण्यान्यस्मै। सन्दानमर्व्वन्तं पड्-वीशं प्प्रियादेवेष्वायामयन्ति। (इति-मन्त्रः)

विशेषतस्तत्र-आचाराद् द्वे पोटलिकेऽपरे गृहीत्वा तयो-

रेकां क्षुरे, एकां शलल्याञ्च बध्नीयात् ॥ ततः-

ॐ एतन्ते०-इति मन्त्रेण प्रतिष्ठाप्य ॥ ॐ भूर्भुवःस्वः, चौलकर्म्मणिशिर जूटिकाः सुप्रतिष्ठिता भवन्त्विवतिवदेत् ॥ ततो दक्षिणासङ्कल्पः- ॐ अद्येहामुकशर्माहममुकशर्मणोऽस्य कुमारस्य चौलकर्म्मसंसिद्ध्यर्थं कृतस्यास्य केशाधिवासनकर्म्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं इमां यथेष्टदक्षिणां नानागोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दातुमुत्सृजामि ॥ ॐ तत्सत्-

इति दक्षिणां दत्वा,पोटलिकामुष्णीषादिना बद्ध्वा संवेशयेत् ।

❀ अथ चूडाकर्म्म विधिः ❀

चूडाकर्म्म द्विजातीनां,सर्वेषामेव जन्मतः
प्रथमेऽब्दे तृतीयेवा,कर्तव्यं श्रुति चोदनात् ।१।

अथवा कुलाचारानुसार चूड़ाकर्म्म उपनयन [जनेऊ] संस्कार के साथ-साथ भी शुभ-मुहुर्त में भी किया जाता है। ज्यौतिषशास्त्रोक्त शुभ-मुहुर्त*में पितामाता एवं कुमारशुद्धज

* चौल [चूड़ा] करण मुहूर्त-चूडावर्षात्तृतीयात्प्रभवति विषमेऽष्टार्करिक्ताद्यषठी, पर्वोनाहे विचैत्रोदययनसमये ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानाम् वारे लग्नांशयोश्चास्वभनिधननो नैधने शुद्धियुक्ते, शाक्रोपेतैर्विमित्रैर् मृदुचरलघुभैरायषट् त्रिस्थपापैः ॥१॥ इति मुहूर्तचिन्तामणौ ।

से स्नान करके, नूतन वस्त्रालङ्कारों को धारण कर, स्त्रियों के मङ्गल-गीतों के साथ-साथ वादित्रादि पञ्चघोष-पूर्वक पश्चिम द्वार से बहिःशाला में प्रवेश करैं। वहाँ प्रथम यजमान [पिता] पूर्वाभिमुख होकर गणपति-वेदी के पास आसन पर पूजन करने बैठे। यजमान से दक्षिण-भाग में बालक को गोद में पूर्वाभिमुख लेकर माता बैठे। वहाँ पूजा सामग्री इकट्ठी करके स्वास्ति वाचन पूर्वक गणेशादि पञ्चाङ्ग देवताओं का पूजन करैं। तदनन्तर पिता जलाक्षतपुष्पादि दक्षिण हाथ में लेकर संकल्प करै-

ॐ अद्येत्यादि-देशकालौ सङ्कीर्त्य, ममास्य पुत्रस्य बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणपूर्वकबलायुर्वर्चोभिवृद्धिव्यव—हारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं चूडाकर्म करिष्ये तदङ्गतया त्रीन् ब्राह्मणानहं तृप्ति पूर्वकं भोजयिष्ये, तेभ्यो दक्षिणाञ्च दास्ये।

इस प्रकार संकल्प-पूर्वक ३ ब्राह्मणों को भोजन कराके उन्हें दक्षिणा देवै। पुनः आचार्य एवं ब्रह्मा का संकल्प-पूर्वक पूर्वोक्त विधि द्वारा वरण करै। [एषु कर्मसु ब्राह्मणानामाचार्यः पितैव भवति ॥ 'उपनीय ददद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः' इति-याज्ञवल्क्यस्मरणात । पितुरसन्निधाने—पितृव्य भ्रात्रादीनामप्यधिकारः। तथा क्षत्रियादीनां वेदाध्यापना-

भावादन्यो ब्राह्मणोऽधिक्रियते)। फिर आचार्य चूडाकरण-वेदी में पञ्चभू संस्कार-पूर्वक सभ्य-नामक अग्नि स्थापित करें। प्रथम अग्नि-कोण से अग्नि लाकर पश्चिमाभिमुख स्थापित करें। + इस अवसर पर माता अपने बालक को गोदी में लेकर अग्नि के पीछे पतिके वाम-भाग में बैठे। तदनन्तर बालक का पिता कुशकण्डिका-विधि करें। ततः पिता ब्रह्मोपवेशनादि-पर्युक्षणान्तं कर्म समाप्य, तत्राऽऽसादनान्ते, विशेषवस्तूनि च स्थापयेत्॥ यथा शीतोष्णोदकमिश्रणार्थमेकं पात्रम्, शीतं जलम्, उष्णं जलम्,तक्रम्, नवनीतपिण्डम्, घृतपिण्डम्, दधिपिण्डम् गोधूम पिण्डंम्वा। त्र्येणीशल्लकीत्रिषु स्थानेषु श्वेतेत्यर्थः। सप्तविंशतिदर्भपिञ्जूल्यः पवित्रलक्षणाः ताश्च सौकर्याय तिस्रस्तिस्रः सूत्रवेष्टिताः क्रियन्ते। क्षुरस्ताम्रपरिष्कृतो लोहः, आनडुहं गोमयं नापितश्चेति॥ ततः पवित्रच्छेदनादिपर्युक्षणान्तं कर्म कृत्वा [पूर्वांकित विधिनैव] होमद्रव्यत्यागं कुर्यात्॥ तत्रादौ हस्ते जलमादाय संकल्पं कुर्यात्।

ॐ अद्य पूर्वोच्चरित० ममास्य पुत्रस्य चूडाकर्मणा यक्ष्ये, तत्र-प्रजापतिमिन्द्रमग्निं सोममग्निं वायुं सूर्य्यं प्रजापतिं,तथाऽऽज्येन भूराद्या नवाहुतीनां मध्ये ऽग्निं वायुं

+ कुशकण्डिकाभाष्ये—अग्न्यानयनपात्रे तु, प्रक्षिपेदक्ष तोदकम्। यद्येवं नैव कुर्वीत, यजमानभयावहम्॥

सूर्य्यञ्चाग्नीवरुणौ, अग्नि वरुणं सवितारं विष्णुं विश्वान्देवान् मरुतः स्वर्कान् वरुण-मादित्यान्, अदितिं प्रजापतिमग्निं स्विष्ट-कृतञ्चाऽहं यक्ष्ये ॥ [×घृतमिदं तत्तद्दे-वताभ्यो मया परित्यक्तं यथा दैवतमस्तु]ॐ एतन्त'-इत्यग्निं सु प्रतिष्ठाप्य ॥ ॐ भूर्भु वः स्वः, सभ्यनामाग्ने ! सुप्रतिष्ठितो वरदो भव॥ ॐ तदेवाऽग्निस्तदाऽऽदित्यस्तद्वा युस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रन्तद्ब्रह्म ताऽ-आपः स प्प्रजापतिः ॥ ॐ चत्त्वारि श्भृङ्गा त्त्रयोऽअस्य पादाद्द्वे शीर्षे सप्प्तहस्त्ता सोऽ अस्य । त्त्रिधा बद्धो व्वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्त्याँ २ ॥ ऽआविवेश ॥

इतिमन्त्रैर्ध्यानाऽऽवाहनपाद्यादिनीराजनान्तमग्निं संपू-ज्य, दक्षिणं जान्वाच्य कुशैर्ब्रह्मणान्वारब्धः, उपयमनकुश-सहितं मनसा प्रजापतिं ध्यायन् जुहुयात्-

ॐ प्रजापतये स्वाहा—इदं प्रजापतये न मम॥ (प्रोक्षण्यां संस्रवप्रक्षेपः)॥ ॐइन्द्राय

× यजमानेनाऽन्यस्य होमकर्तृत्वे त्यागं कार्यम्, स्वयं कर्तृत्वे तु न ।

स्वाहा–इदमिन्द्राय न मम ॥ ॐ अग्नये स्वाहा–इदमग्नये न मम ॥ ॐ सोमाय स्वाहा–इदं सोमाय न मम ॥

इत्याधाराऽऽज्यभागौ हुत्वा, भूरादित्रिव्याहृति-होमं कुर्यात।

ॐ त्रिव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुबछन्दांसि, अग्निवायुसूर्य्या–देवताः, सर्वप्रायश्चित्तहोमे–विनियोगः ॥ ॐ भूः स्वाहा–इदमग्नये न मम ॥ ॐ भुवः स्वाहा–इदं वायवे न मम ॥ ॐ स्वःस्वाहा-इद ७ सूर्याय न मम ॥ ॐ त्वन्नोऽअग्न-इति वामदेवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः,अग्नीवरुणौ देवते,होमे–विनियोगः ॥ ॐत्वन्नोऽअग्ने-व्वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो ऽ अवयासिसीष्ठ्ठाः । यजिष्ठ्ठो व्वह्निनतमः शोशुचानो विश्श्वाद् द्वेषा ७ सिप्प्रमुमुग्ध्यस्म्मत्-स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥ ॐ सत्त्वन्न–इति वामदेवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, अग्नीवरुणौ देवते, होमे–विनियोगः ॥ ॐ

स त्वन्नो ऽअग्ने वमो भवोतीनेदिष्ठो-ऽअस्याऽ उषसो व्व्युट्ष्टौ ॥ अवयक्ष्व नो व्वरुण ᳪ रराणो व्वीहि मृडीक ᳪ सुहवो न ऽएधि—स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ॥
ॐ अयाश्चाग्न—इति वामदेवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता, होमे—विनियोगः ॥
ॐ अयाश्चाग्ने स्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाऽ असि । अयानो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषज ᳪ-स्वाहा ॥ इदमग्नये, अयसे, न मम ॥ ॐ येते शतमिति-शुनः शेपऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, वरुणसवितृविष्णुविश्वेमरुतः स्वर्का-देवताः, होमे—विनियोगः ॥
ॐ ये ते शतं व्वरुण ये सहस्रं यज्ञियाःपाशा व्वितता महान्तः । ते भिर्नोऽअद्य सवितोत व्विष्णुर्व्विश्श्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्काः—स्वाहा । इदंवरुणाय, सवित्रे, विष्णवे, विश्वेभ्यो देवेभ्यो, मरुद्भ्यः, स्वर्क्केभ्यश्च-न मम।
ॐ उदुत्तममिति-शुनःशेपऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो

वरुणो देवो, होमे—विनियोगः ॥ ॐ उदु त्तमम्वरुण पाशमस्मदवाधर्म्म विमद्ध्य मᳬश्रथाय । अथाव्वयमादित्यव्व्रते तवा नागसोऽअदितये स्याम—स्वाहा ॥ इदं वरु णायाऽऽदित्यायाऽदितये च न मम ॥ ॐ प्रजापतये-स्वाहा ॥ इति प्रजापतये, न मम ॐ अग्नये स्विष्टकृते-स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ॥

ततः संस्रवप्राशनम् ॥ पवित्राभ्यां मार्जनम् ॥ अग्नौ पवित्र प्रतिपत्तिः ॥ ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम् ॥

अद्येहामुकोऽहं अमुकराशेरमुकनाम्न पुत्रस्य चूडाकर्माङ्गहोमकर्मणः साङ्गफल प्राप्तये, साद्गुण्यार्थञ्चेदं पूर्णपात्रं ससुवर्ण ब्रह्मणे तुभ्यमहं सम्प्रददे ॥ यजमानो वदेत प्रतिगृह्यताम् ॥ 'ॐ प्रतिगृह्णामि'—

इति ब्रह्मा वदेत् ॥ ततः प्रणीताविमोकः ॥

ततः 'ॐ सुमित्रियानऽआपऽओषधयस्सन्तु'

इति-पवित्राभ्यां प्रणीताजलेन शिरः संमृज्य ॥

ॐ दुर्म्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि

यज्ञ वयन्द्दिुष्मः ॥

इत्यैशान्यां प्रणीता न्युब्जीकरणम् ।। ततः परिस्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिघार्य—

ॐ देवागातु विदो गातुम्वित्त्व-त्वा गातु मित । मनसस्पतऽ इमन्देव यज्ञ ७ स्वाहा व्वातेधाः-स्वाहा—इति बर्हिर्होमः ॥ ॐ अक्रन्कर्म्म कृतः सह व्वाचामयोभुवा। देवेभ्यः ॐ कर्म्मकृत्वास्त प्रेत सचाभुवः ।

इति-'मन्त्रपाठः' ।। ततो दैवज्ञबोधिते शुभे मुहूर्ते सुलग्ने लग्नदानं कुर्यात् ।। तत्र । संकल्पः-

अद्येहाऽमुकराशेरस्य कुमारस्य चूडाकर्म-लग्नाद्यत्र कुत्र स्थानस्थितानांसूर्यादि—ग्रहाणां दुष्टानां दुष्टफलोपशान्तये, शुभानां विशेषतः शुभफलप्राप्तये, इदं सुवर्णं सुवर्ण-निष्क्रयीभूतं द्रव्यं वा, दैवज्ञाय विप्राय दातुमहमुत्सृजे ।। ॐ तत्सदिति ।

पुनः दैवज्ञ को दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे । तदन्तर नीचे लिखे मन्त्र द्वारा शीतल जलके पात्र में कुछ उष्ण-जल मिलावें ।। तत्र मन्त्रः-

ॐ उष्णेन व्वाय इति-परमेष्ठी ऋषिः,

प्रतिष्ठाछन्दो, लिङ्गोक्ता–देवता, उष्णो
का्ऽऽसेचने-विनियोगः ॥ ॐ उष्णेन व
यऽउदकेनेह्यदिते केशान्वप ॥

पुनः उस जल पात्र में कुछ मट्ठा, दही पिण्ड, नवनी पिण्ड तथा घृत-पिण्ड बिनामंत्र बोलेही मिलावैं। तदनन्तर पू भिमुख बैठे हुए बालक के शिर में [दक्षिण, पश्चिम उत्तर की ओर जो केशों में-तीन जूड़े पूर्व-रात्रि में ब रक्खे हैं, उनमें से] प्रथम दक्षिण-जूड़ा के केशों को नी लिखे मन्त्र द्वारा उस मट्ठा-आदि मिलाये हुए जल से ती बार भली प्रकार भिगोवे। तत्र मन्त्रः-

ॐ सवित्रेति मन्त्रस्य-प्रजापतिर्ऋषिर्गा
यत्रीछन्दः,आपो देवता, उन्दनेविनियोगः
ॐ सवित्रा प्प्रसूता दैव्याऽआप ऽउन्दन्तु
तनूम्। दीर्घायुत्वाय बलाय व्वर्च्चसे ॥

तदनन्तर सफेदसेही के काँटेसे शिरकी दाहिनी ओर जूड़ा बं हुए केशोंके तीन-भाग करै। पुनः नीचे लिखे मन्त्र द्वारा उ एक एक भाग में तीन-तीन कुशाये अग्र-भाग सहित केशों लगावैं ॥ तत्र मन्त्रः-

ॐ ओषधे-इति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषि
र्यजुश्छन्दः, ओषधीर्देवता, कुशतरुणान्त
धाने विनियोगः॥ ॐ ओषधे त्त्रायस्व स्व

धिते मैन ँ हि ँ सीः ॥

पुनः सकुश तरुण केशों को बाँये-हाथ से पकड़कर, लिखे मन्त्र द्वारा दाहिने-हाथ में लोहे का छुरा लेवै ॥ तत्र-मन्त्रः-

ॐ शिवो नामेति—प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः, क्षुरो देवता, क्षुरग्रहणे विनियोगः ॥ ॐ शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हि ँ सीः ॥ इति ॥

तदनन्तर नीचे-लिखे मन्त्र द्वारा वालों में छुरा लगावै ॥ तत्र-मन्त्रः-

ॐ निवर्त्तयामीति—प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः, क्षुरो देवता, प्रवपने-विनियोगः । ॐ निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय-रायस्स्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय ॥

तदन्तर नीचे-लिखे मन्त्र-द्वारा पिता बालक के दक्षिण केशों के तीन भागों में से प्रथम भाग को सावधानी से काटै ॥ तत्र-मन्त्रः-

ॐ येनाव पदिति—श्रीलम्बायनऋषिः, पङ्क्तिश्छन्दः, सविता देवता, केशच्छेदने-विनियोगः ॥ ॐ येनावपत्सविता क्षुरेण

सोमस्य राज्ञो व्वरुणस्य विद्वान्। तेन
ब्ब्रह्माणो व्वपतेदमस्यायुष्यञ्जरदष्टिर्यथास

पुनः उन तीनों कुशाओं सहित काटे हुए केशों
उत्तर दिशा में रक्खे हुए बैल के गोमय पिण्ड पर अथ
गेहूँ के गीले पिण्ड पर रक्खे × ॥ पुनः केशों के अवशि
दाहिने दो भागों को जल से भिगोना। केशों में तीन-ती
कुशाऐं रखना, आदि केश-छेदन पर्यन्त सभी कृत्य पूर्वो
प्रकार से मौन होकर बिना-मन्त्र पढ़े ही करें। [इस प्रका
बालक के दाहिनी ओर के केश कतरने से ६ कुशाऐं
१ जूड़ा, १ पोटली भी शिर से पृथक हो गयी ॥ १ ॥

अथ पश्चिमगोदानेउन्दनं विनयन, कुशतरुणान्तध
नञ्च पूर्वोक्तै रेव मन्त्रैः कुर्यात्। क्षुरस्तु मन्त्रेण गृहीतत्वा
न्न पुनर्मन्त्रसंस्कारमर्हति। द्रव्याभेदात् प्रवपनंक्षु रसंलग्नो
करञ्च पूर्वोक्तमन्त्रेणैव कुर्यात् ॥ पुनः केशच्छेदनेत्वत्र
मन्त्रविशेषः-

ॐ त्र्यायुषमिति-नारायण ऋषिरनुष्टु
प्छन्दोऽग्निर्देवता, केशच्छेदने--विनियोगः।
ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।

× लोकाचार-यहां पर बालक का पितामह बाबा अपने
गोदी में बालक को लेकर [पूर्वाभिमुख] होकर बैठता है। तब
बालक की वूआ उत्तर दिशा में हाथ में गोमय-पिण्ड लेकर बैठती है
और वह बालक के जूड़ले-वालों को पिण्ड में सावधानी से रखत
जाती है।

यद्देवेषु त्र्यायुषन्तन्नो ऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥

इति मन्त्रेण केशान् छित्त्वा, पूर्ववद् गोमयपिण्डे निदध्यात् ॥ एवं पुनर्वारद्वयम्, इतरयोः पश्चिमगोदानस्थ केशभागयोरुन्दनं, कुशातरुणान्तर्धानं, क्षुरादानं, प्रवपनं, केशच्छेदनं, गोमये स्थापनञ्च तूष्णीं कुर्यात् ॥२॥ अथोत्तरगोदानेउन्दनविनयनकुशतरुणाऽन्तर्धानक्षुरादानप्रवपनानि पूर्वप्रकारेणैव कुर्यात् ॥ पुनः केशच्छेदनेत्वत्र मन्त्रविशेषः-

ॐ येनेतिप्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः, क्षुरो देवता, केशच्छेदने-विनियोगः ॥ ॐ येन भूरिश्चरादिवं ज्ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्य्यम्। तेन ते वपामि ब्रह्मणाजीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥

इतिमन्त्रेण केशान् छित्त्वा, पूर्ववद् गोमय-पिण्डे निदध्यात् ॥ एवं पुनर्वारद्वयम्, इतरयोरुत्तरगोदानस्थ केशभागयोरुन्दनं, कुशातरुणान्तर्धानं, क्षुरादानं, प्रवपनं, केशच्छेदनं, गोमयेस्थापनञ्च तूष्णीं कुर्य्यात- ॥३॥ अथ त्रिःक्षुरेण शिरः प्रदक्षिण परिहरति, शिरसः समन्तात् प्रदक्षिणां परिभ्रामयतीत्यर्थः । सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णीम् ॥ तत्र-मन्त्रः-

ॐ यत्क्षुरेणेतिवामदेवऋषिर्यजुश्छन्दः। क्षुरो देवता, क्षुरपरिहरणे विनियोगः ।,

ॐ यत्क्षुरेण मज्जयता सुपेशसा वप्त्रा वा
वपति । केशाँश्छिन्धिशिरो माऽस्यायु
प्रमोषीः ॥

इतिमन्त्रेणोन्दनशेषेण जलेन सर्वं शिर आर्द्रीकृत्य, सुख
वमनार्थं पिता नापिताय क्षुरं प्रयच्छति ।। तत्र-मन्त्रः-

ॐ अक्षुण्वमिति-वामदेवऋषिर्यजुश्छन्दः,
क्षुरो देवता, क्षुरप्रदाने-विनियोगः ॥ "ॐ
अक्षुण्व परिवप"-इति। "परिवपामीति"

नापितो वदेत् ।। अथ यथा कुलाचारं नापितः केशवप
कारयेत् ।। ततः केशयुक्तं गोमयपिण्डं पल्वले, गोष्ठे, ह्यु
कान्ते वा निधापयेत् ।। ततः सुस्नातं पर्य्युप्तशिरसं पुष्पमा
लाभिश्चालङ्कृतं माणवकमाचार्य्यसमीपमानीयाऽग्नेः पश्चा
देव स्थापयेत् ।। अथ पिता स्वाचार्य्याय वरं ददाति, कुमार
स्याचार्य्याऽभावात् ।। तत्र संकल्पः-

ॐ अद्येहेत्यादि, अमुकराशेरमुकनाम्नः
पुत्रस्य चूडाकर्म्माङ्गहोमकर्म्मणश्चूडा(चौल
कर्म्मणश्च साङ्गफलप्राप्तये, साद्गुण्यार्थ
ञ्चेदं सुवर्णमग्निदैवतमाचार्य्याय तुभ्यमहं
सम्प्रददे ॥ ॐ ततसन्न ममेति—

संकल्पंदद्यात ॥ तत आचार्य्यः मन्त्राशीर्वादं दद्यात् ॥
न ब्राह्मणभोजनम् ॥ इति चूडा [चौल] कर्म-विधिः ॥

चूडाकर्म [मुण्डन-संस्कार]-बालक के शिर का मुण्डन [जडूला उतारना] इसलिये कराया जाता है कि–'सुश्रुत-संहिता' में-'पापोपशमन केशनखरोमापमार्जनम् । हर्षलाघवसौभाग्यकरमुत्साहवर्द्धनम् ।।' अर्थात् केश, नख एवं रोमों का कटाना, मल-रूप पाप-निवारक, चित्त को प्रसन्न रखने वाला, हल्कापन एवं कान्ति-उत्साह-वर्द्धक होता है । गर्भोत्पन्न बालक की त्वचा [चमड़ी] अति-कोमल होती है,इसी कारण उसके शिर के कमजोर-बाल उखड़ कर पृथ्वी पर इधर-उधर गिरते रहते हैं, मुण्डन के उपरान्त उगने वाले बाल दृढ़ होकर, फिर वे नहीं झड़ पाते । सौन्दर्यता में बालों का होना विशेष-महत्व रखता है । बालों ही से मानव-देह की सौन्दर्यता बढ़ती है, यदि ये क्रमशः गिरते रहेंगे, तो स्वरूप-लावण्यता कैसे झलकेगी ? बालों से शिर में भारी-गर्मी बनी रहती है, इसके फलस्वरूप बालकों को अनेक-प्रकार के शिरोरोग [फोड़ा-फुन्सी] आदि उत्पन्न होते रहते हैं । गर्मी के कारण ही नेत्रज्योति घट जाती है,तथा स्मरण-शक्ति एवं चैतन्यता का ह्रास होता है । गर्भ के अपवित्र-बालों से प्रायः बालकों को भूतप्रेत-जन्य बाधाओं का भी भय बना रहता है । जब तक सम्पूर्ण मुण्डन-संस्कार नहीं होता, तब-तक उस गर्भजात-शिशु की पवित्रता भी धर्मशास्त्रों ने नहीं मानी है-इन्हीं कारणों से यह मुण्डन-संस्कार किया जाता

है। प्रथम सम्पूर्ण जड्डूले बालों को संस्कार सहित कटवा
पुनः अन्य किसी शुभ-मुहूर्त में शिखा (चोटी) रखनी चाहिये
अथवा यज्ञोपवीत धारण करते समय (उपनयन-संस्कार
शिखा रखने का विधान निर्विवाद शास्त्रसिद्ध है। ऋषि
ने यह संस्कार जन्म से तीसरे, पाँचवे-वर्ष में करना इसलि
बताया है कि- बालक के शिर की त्वचा (चमड़ी) ती
वर्ष में दृढ़ हो जायगी, और वह उस्तरे की तीव्र-धार
सहन कर सकेगी। साथ-साथ मुण्डन-संस्कार कराने
और भी रहस्य है कि बालक के दांत जन्म से प्रायः छ
माह से निकलने लगते हैं, और वे तीसरे-वर्ष में पूर्णत
निकल आते हैं। दाँतों के निकलने पर बालक को विभिन्न
भाँति के शिरोरोग उत्पन्न होने लगते हैं, आयुर्वेद-शास्त्र
बताया है, यदि समय पर मुण्डन करा दिया जायगा,
फिर बच्चे को शिरोरोग-आदि होने की कोई आशंका
रहेगी। इसी कारण संस्कार-पद्धतिकारों ने भी बालक
मुण्डन होते ही तरी के लिये शिर में दही-मक्खन आदि का
लेप करना बताया है, कि-बालक के शिरकी गर्मी शान्त हो
और उसकी नेत्र-ज्योति बढ़े, एवं स्मरण शक्ति जागृत हो
तथा गर्मी के कारण आगे शिर में उत्पन्न होने वाले फोड़ा
फुन्सी आदि का कोई भय न रहे।

इस संस्कार को 'चूड़ा-करण' भी कहते हैं, इसका
तात्पर्य यह है कि बिना मुण्डन कराये शिर में शिखा ब

ही नहीं सकती ? इसी कारण उपनयन-संस्कार के अन्तर्गत जो मुण्डन कराने का विधान शास्त्रों में लिखा है, तब उस समय 'चूडा' अर्थात् शिखा के भाग को छोड़ कर सम्पूर्ण-शिर का मुण्डन करावे । इस तरह से शिखा-धारण हुई । 'जन्मना जायते शूद्रः, संस्काराद् द्विज उच्यते'-बचनानुसार जब तक बालक शिखा-सूत्र धारण नहीं करता, तब तक वह वेदाधिकारी एवं देव पूजाधिकारी [स्नातक] नहीं हो सकेगा । जिस प्रकार राजाकी उच्च-ध्वजा सर्वथा विजयता की द्योतक होती है, उसी प्रकार हमारे हिन्दु-धर्म-शास्त्रों में शिखा का रखना भी अपनी जाति का एक विशेष-महत्व रखता है । क्योंकि शिखा-द्वारा ही जाति-कर्मों की सिद्धि एवं सनातनी धर्म-साधनाऐं सिद्ध होती हैं । समन्त्रक-शिखा रखने से शिशु का बल, आयु एवं तेज बढ़ता है और जठ-राग्नि-दीपन होती है । यदि- खल्वाटत्वादि दोषेण, विशिखश्चेन्नरो भवेत् । कौशीं तथा धारयेत, ब्रह्मग्रन्थियुतां शिखाम् । '-प्राचीन-काल में सभी व्यक्ति अपनी लम्बी-लम्बी जटाऐं रखते थे, उस प्रथा के विलीन होजाने पर आज हम केवल शिखा ही रखते हैं । निराकरणकारी-तेज प्रवाहित न हो सके, इसलिये शिखा में ग्रन्थिबन्धन करना भी आवश्यक होता है ।

मुण्डन [चौल संस्कार] का मुहूर्तः-'चूडाकर्म कुलोचि-

तम्' [व्यास स्मृतिः १।१८] । प्रथम, तृतीय अथवा पञ्चम वर्ष में अपने कुलधर्म्माऽनुसार किसी शुभ-मुहुर्त में मुण्डन-संस्कार किया जा सकता है। यथा-जन्म से विषम-वर्ष में उत्तरायण-सूर्य्य में, चैत्र-रहित अन्य-मासों में चन्द्रतारा-नुकूल-अश्विनी, मृग०, पुनर्वसु. पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उक्त-नक्षत्रों में, चन्द्र बुध-गुरु-शुक्रवारों में, भद्रादि-दोष रहित दिन में, २-३-५-७-१०-११-१३-तिथियों में, एवं शुभ-लग्न में करना चाहिये । तथा च-'सूनोर्मातरि गर्भिण्यां, चूडाकर्म्म न कारयेत् । पञ्चमाब्दात्प्रागूर्ध्वन्तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ।। सहो, पनीत्या कुर्य्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते ।।१।।" अन्यच्च-विवाहव्रतचूडासु, यदि माता रजस्वला । तस्याः शुद्धेः परं कार्यं मङ्गलं मनुरब्रवीत् ।। अर्थात् चूडाकर्म, यज्ञोपवीत एवं विवाह-आदि संस्कारों में यदि कदाचित् माता रजस्वला हो जाय ? तो शुद्धि के अनन्तर संस्कार करे, वह मंगलप्रद होता है। यदि आगे कोई शुभ-मुहूर्त न बनता हो तो, ऐसी स्थिति में [सूतकावस्था में] भी सविधि कूष्माण्डी-ऋचाओं द्वारा घृत-होम करके एवं गोदान-आदि करके,संस्कार करना धर्मसिन्धु एवं निर्णयसिन्धु का मत है। चूडाकरण संस्कार तक कन्याओं के संस्कार स्मार्त एवं नाम-मन्त्रों द्वारा करे, और उसमें केवल होम वेद-मन्त्रों द्वारा करे । किन्तु कर्मका लोप कदापि नहीं करना चाहिए ।। इति चुडाकर्म्म-विधिः ।।

❀ अथ कर्णवेध विधिः ❀

तत्र-तृतीये पञ्चमे वा विषमवत्सरे, सन्नक्षत्रे, पूर्वाह्णे, पिता प्राङ्मुख उपविष्टः स्वस्तिवाचनपूर्वकं गणपत्यादिपञ्चाङ्गदेवपूजां विधाय, त्रीन् ब्राह्मणान् भोजयित्वा संकल्पं कुर्यात्–

ॐअद्येत्यादि० अमुक गोत्रोत्पन्नोऽमुक नाम शर्माऽहं, ममास्य पुत्रस्य बीजगर्भोद्भव सर्व पातकविनाशनार्थं सुखसौभाग्यादि-प्राप्तिहेतवे कर्णवेधसंस्कारञ्च करिष्ये ॥

ततः-कुमारस्य मुखे मिष्टान्नं दत्वा, स्वर्णकारद्वारा मध्यं वीक्ष्य स्वर्णसूच्या दक्षिणकर्णं वेधयेत्–

ॐ भद्रङ् कर्णेभिरिति-प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, लिङ्गोक्ता-देवता, दक्षिण-कर्णाऽभिमन्त्रणे-विनियोगः ॥ ॐ भद्द्रङ्क-र्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्य्य-जत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ᳪ सस्तनूभि-र्व्यशेमहि देवहितँ य्यदायुः ॥१॥ ततो वामकर्णं वेधयेत्–ॐ वक्ष्यन्ती–मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, लिंगोक्ता-

देवता, वामकर्णाऽभिमन्त्रणे-विनियोगः।
ॐ वक्ष्यन्ती व्वेदा गनीगन्ति कर्णंप्रिय
ँ सखायं परिषस्वजाना। योषेव शिङ्क्ते
वितताधिधन्वञ्ज्या इयँसमने पारयन्ती॥

पुनः स्वर्णकारं सन्तोष्य,ब्राह्मणभोजनं भूयसींदक्षिणाञ्च दत्त्वा, देव-विसर्जनं कुर्यात् ।।इति।।

कर्णवेध-संस्कार-'कृतचूडस्य बालस्य, कर्णवेधो विधीयते -[व्यास स्मृतौ १।१८]-वचनाऽनुसार, चूडा संस्कार होने के अनन्तर कर्णवेध संस्कार किया जाता है। कई-आचार्यों ने षोडश-संस्कार में कर्ण-वेधको नहीं माना है, वे इसे पृथक् मानते है। किन्तुव्यास 'स्मृति' ने इसकी उपयोगिता समझ कर संस्कारों में इसे मान्यता दी है। बालकों के कर्ण-वेधन कराने का रहस्य आयुर्वेद-मतानुसार यह है कि-बालकों के कर्णवेधन करने से नसें ठीक रहती हैं, आतें और अण्डकोष की वृद्धि नहीं होने पाती तथा उनका नपुंसकत्व नष्ट होता है। मल-मूत्र त्यागन करते समय जो कानों में जनेऊ लपेटा जाता है, उसका भी यही कारण है। कन्याओं के कर्णवेधन करने से उनका भविष्य में वन्ध्यात्व [बांझपन] मिट जाता है। कारण किकर्णेन्द्रिय का सम्बन्ध मूत्रेन्द्रिय से सम्मिश्रित है। सुश्रुत संहिता के चिकित्सा-स्थान में लिखा है, कि-

'शंखोपरि च कर्णान्ते, त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम्।

व्यत्यासाद् वा शिरां विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्तये' [१६।२१] अर्थात् गले के ऊपर कानों तक सविन-स्थान को त्यागकर आँतों की वृद्धि निवृत्ति के लिये शिरा अर्थात् नस का छेदन करे। सुश्रुत संहिता के सूत्रस्थान में इस प्रकार से है कि 'रक्षाभूषणनिमित्तं वालस्य कर्णौ विध्येते। धात्र्यंके कुमार. मुपवेश्य कर्णं विध्येत ।। पूर्वं दक्षिणकर्णं कुमारस्य, वामं कु- मार्याश्चेति'' । [१६।३] अर्थात् रक्षा एवं आभूषणों के निमित्त बालकों को माता की गोदी में विठाकर बालकों का कर्णछेदन करे। बस प्रकार से कि वालकों का पहिले दाहिना कान. और कन्याओं का पहिले बाँया कानछेदे पुन: दूसरे कान छेदने चाहिये। कानों में स्वर्ण कुण्डल, मुरकी, वाली आदि धारण करने का तात्पर्य यह है कि इससे अण्ड- कोश में पानी नहीं उतरता, देह-रक्षा होती है एवं कीटा- णुओं के संक्रमण प्राय: नष्ट हो जाते। साथ-साथ अङ्ग में छिद्र हो जाने से पैशाचिक तथा राक्षिसी बाधाएं भी नष्ट होती हैं। उक्तञ्च 'नैनं रक्षांसि न पिशाचा: सहन्ते, यो विभर्ति दाक्षायणं हिरण्यम्' [शौ० अथर्व० सं० १।३५।२], तथा- जरा मृत्युयौं विभर्ति' [अथर्व० सं० १६।२६।१] ।। विशेष-ब्राह्मण बालकों का कर्णछेदन चाँदी की सुई से, क्षत्रियों का सोने की सुई से, वैश्यों का चाँदी की सुई से, तथा शूद्रादिकों का कर्णछेदन लोहे की सुई द्वारा करना चाहिये। 'जातकर्म समारभ्य, स्त्रीणां चूड़ान्तसर्वशः। होमः

समन्त्रकः कार्य्यः संस्कारन्तु ह्यमन्त्रकः' ।

ब्राह्मणों की पुत्रियों का 'विवाह-संस्कार' सर्वथा वे मन्त्रों द्वारा ही करना शास्त्र-सम्मत है—

अथ कर्णवेध-मुहूर्तः—

कन्यायाः कर्णवेधः स्यात्, सद्वारे विषमेऽब्दके।
आद्ययामे सिते-पक्षे. मैत्रक्षिप्रोत्तराचरे ॥

जन्मकालसे ६ ७,८ महीनों में, विषम-वर्ष में, चैत्र तथा जन्म-मास त्यागकर अन्य-मासों में हरिशयन रिक्ता तथा अमावस्या त्यागकर अन्य [१।२।३,५। ८।१०।११।१२।१३।१५] तिथियों में शुक्ल-पक्ष में कृष्णपक्ष की १० दशमी तिथि-पर्यन्त कर्णवेध करना होता है। भद्रारहित, चन्द्र, बुध, गुरु तथा शुक्र वारों तथा पुन० अश्विनी, हस्त, पुष्य, अभि० मृग० चित्रा, अ रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शत०-इन नक्षत्रों में, तथा मे सिंह. वृश्चिक, मकर तथा कुंभ-लग्नों को त्याग कर अ लग्नों में. लग्न-शुद्धि द्वारा कर्ण-वेधन करना शुभ है।

❀ अथाऽक्षरस्वीकार विद्यारम्भविधिश्च ❀

"पञ्चमे सप्तमे वाब्दे, पूर्वं स्यान्मौञ्जिबन्धनात्, तत्रैवाक्षरारम्भः कर्त्तव्यस्तु शुभे दिने ॥१॥" सम्पूज्य गणाधीशं, तथैव च सरस्वतीम्। कुलदेवीं ततश्चैव, पूजये बृहस्पतिम् ॥२॥ नारायणं महालक्ष्मीं, गन्धधूपादिभिस्त स्वविद्यासूत्रकारांश्च, स्वविद्याञ्च विशेषतः ॥३॥

पञ्चमवर्षे, विहितपञ्चागंशुभदिने, शिशुना सहितः पिता मंगलद्रव्यैः स्नात्वाऽहते वाससी परिधाय, ललाटे कृततिलकः, शुभासने प्राङ्मुखश्चो पविश्याचम्य प्राणायामं कृत्वा, गंगोदकं पीत्वा, ॐ सुमुख श्चेत्यादि० पाठं पठेत् ॥

पुनः आचार्य देवताओं के स्थापन एवं पूजन के लिए मण्डप के पूर्व भागमें एक चौकी पर सफेद-वस्त्र बिछावे। उसके ऊपर रक्त-चावलों का एक अष्टदल-कमल बनावे। उस पर वे गणपति-स्थापन करे॥ उसके नीचे अन्य देवताओं के स्थापन के लिए दध्यक्षत-पुञ्जों की पंक्तियाँ लगावे। प्रथम पंक्ति में यथाक्रम-विष्णु, लक्ष्मी, सरस्वती तथा कुल-देवताओं को स्थापित करे ॥१॥ इसी प्रकार द्वितीय-पंक्ति में-ब्रह्मा, आचार्य, गुरु नारद, व्यास, मनु, पाणिनी, कात्यायन, पतञ्जलि, सांख्याचार्य, पारस्कार, यास्क, कपिञ्जल, गोभिल, जैमिनी, पिंगल, गर्ग-इनको स्थापित करे ॥२॥ तृतीय-पंक्ति में गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि,वसिष्ठ अत्रि तथा कणादादि ऋषियों, को स्थापित करे ॥३। चतुर्थ-पंक्ति में-वेद, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्म्मशास्त्र शिक्षाशास्त्र, कल्प व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष-शास्त्रों को स्थापित करे ॥४॥ तथा पञ्चम पंक्ति में वैशेषिक, वेदान्त, सांख्य, पातञ्जल, काव्य, अलंकार प्रभृति-शास्त्रों को स्थापित करे ॥५। पुनः 'ॐ मनो जूति०' तथा 'ॐ एतन्ते०' आदि वेद-मन्त्रों द्वारासबों की

यथाविधि प्रतिष्ठा करे। पुनः नाम-मन्त्रोंसे उनका यथोपचा पूजन करे। तत्राऽऽदौ हस्ते जलमादाय संकल्प कुर्यात् देशकालौ संकीर्त्य–

ॐ अद्याऽमुकगोत्रः (अमुकनाम) शर्म्मा ऽहं, (अमुक) राशेरस्य मम बालकस्य नि खिलविद्याविशारदत्वासिद्धिद्वारा श्री महा सरस्वती प्रीत्यर्थमक्षरारम्भं विद्यारम्भ करिष्ये। तत्पूर्वाङ्गित्वेन दध्यक्षतपुञ्जेषुनिर्वि घ्नफलसिद्धिकामो गणेशविष्णु लक्ष्मी सर स्वतीकुलदेवतादीनां, वेदादिप्रवर्तकानां ब्रह्मादीनामाचार्य्याणां वेदादिविद्यानाञ्चा ऽऽवाहनपूर्वकं पूजनं करिष्ये॥ इति-सङ्क ल्प्य शान्तिपाठंस्वस्तिवाचनञ्च कृत्वा अष्ट दल कमले-ॐगणानान्त्वेति-मन्त्रेण० गण पतिम्, ॐ भूर्भुवः स्वः, गणेश! इहागच्छ पूजार्थं त्वामावाहयामि, स्थापयामि इहा गच्छ, इह-तिष्ठ ॥१॥ ततः। ॐ इदं विष्ण णुरिति-मन्त्रेण विष्णुम् ॥२॥ ॐश्रीश्चते

इति मन्त्रेण लक्ष्मीम् ॥३॥ ॐ सरस्वती योन्न्यामितिमन्त्रेण सरस्वतीम् ॥४॥ ॐ अम्बेऽ अम्बिके०-इति मन्त्रेण कुलदेवतामावाह्य ॥५॥ ॐभूर्भुवःस्वः, विष्णो ! लक्ष्मि! सरस्वति ! कुलदेवते ! यूयमिहागच्छत, पूजार्थं युष्मानावाहयामि, स्थापयामि। इह-तिष्ठत ॥

अथ द्वितीय पंक्तौ पुनरपीत्थम् ॥

ॐभूर्भुवःस्वः, ब्रह्मन् ! आचार्य ! गुरो ! नारद ! व्यास ! मनो ! पाणिने ! कात्यायन ! पतञ्जले ! सांख्याचार्य्य ! पारस्कर ! यास्क ! कपिञ्जल ! गोभिल ! जैमिनि ! पिङ्गल ! गर्ग ! यूयमिहागच्छत पूजार्थं युष्मानावाहयामि, स्थापयामि इह-तिष्ठत ॥

अथ तृतीय- पंक्तौ ॥ पूर्वोक्तरीत्या सप्तर्षय आवाहनीयाः

ॐ भूर्भुवः स्वः, गौतम ! भरद्वाज ! विश्वामित्र ! कश्यप ! जमदग्नि ! वसिष्ठ ! अत्रि ! कणाद ! यूयमिहागच्छत, पूजार्थं

युष्मानावाहयामि, स्थापयामि, इहतिष्ठत।
चतुर्थ-पङ्क्तौ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, वेदाः!
पुराणानि ! न्याय ! मीमांसे ! धर्मशास्त्र!
शिक्षे !कल्प ! व्याकरण ! निरुक्तं, छन्दांसि
ज्यौतिष ! युयमिहागच्छत पूजार्थं युष्माना-
वाहयामि, स्थापयामि इह-तिष्ठत ॥

ततः पञ्चमपङ्क्तौ ॥ निम्नलिखितशास्त्राणां पूज
प्रतिष्ठाञ्च कुर्यात् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः, वैशेषिक, वेदान्त, सा-
ङ्ख्य, पातञ्जल, काव्य, अलङ्कारप्रभृतयो
यूयमिहागच्छत पूजार्थं युष्मानावाहयामि
इह तिष्ठत ॥ ततः ॐ एतन्ते "इति-प्रति-
ष्ठाप्य । ॐभूर्भुवः स्वः गणेशाद्यलङ्कारप्रभृ-
तिपर्यन्ता देवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु

ततो भूमिं विलिप्य, तत्र मृन्मयवेदिकाञ्च निर्मा
तदुपरि सरस्वीतयन्त्रं लिखेत् । सरस्वतीमावाहयेच्च-

ॐ भूर्भुवः स्वः, सरस्वति ! सर्ववाङ्-
मयरूपे ! इहागच्छ, इहतिष्ठ । पूजार्थं त्वा-

मावाहयामि, त्वमस्यां मृन्मयमूर्तौ सुप्रतिष्ठिता वरदा भव ॥

इत्थं यथामिलितोपचारैः नाममन्त्रेण वा सम्पूजयेत् ॥

ततः प्रार्थना–

ॐ सर्वविद्ये त्वमाधारा, स्मृतिज्ञानप्रदायिनि । प्रसन्ना वरदा भूत्वा, देहि विद्यां स्मृतिं यशः । इति । अनया पूजयाऽऽवाहितदेवताः प्रीयन्ताम् ॥ ततो गुरुवरणम्-ॐ गुरवे नमः । पाद्यादीनि समर्पयामि । इति-सम्पूज्य-ॐ वरणद्रव्याय नमः

ततः संकल्पं कुर्यात्-

ॐ अद्येहेत्यादि० अमुकोऽहं वाङ्मालिन्यादिसमस्तदोषपरिहारार्थं सद्बुद्धिविद्यालब्धयेऽक्षरस्वीकारविद्यारम्भकर्मणोः कर्म कर्त्तुमनेन वरणद्रव्येणाऽग्न्यादिदैवतेनाऽमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं गुरुत्वेन त्वां वृणे ॥ 'वृतोऽस्मीति'–प्रतिवचनम् ॥ ततः गुरुवन्दनम्–ॐ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः,

गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१॥ ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥२॥

इति गुरुं नमस्कृत्य, अध्यापकगुरोः समीपे प्रत्यङ् मुखमुपविश्य, पुष्पं गृहीत्वाति-

ॐ सरस्वति महाभागे, वरदे कामरूपिणि। विश्ववन्द्ये विशालाक्षि, विद्यां देहि नमोऽस्तु ते ॥

इति सम्प्रार्थ्य पट्टिकायां मंगलार्थं कुङ्कुमादिलेपं कृत्वा, तदुपरि सुवर्णशलाकया

स्वस्तिक लिखित्वा-श्रीगणेशाय नमः ॐ सरस्वत्यै नमः। श्रीकुलदेवतायै नमः श्रीगुरुभ्यो नमः। श्रीलक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। ॐ नमः सिद्धम् ॥

इति-लिखित्वा लेखनक्रमेण गुरुः बालकं पाठयित्वा विद्यारम्भं कारयेत् ॥ ततः षोडशोपचारैः सरस्वतीं पूजयेत् *ततो ब्राह्मणभोजनं कृत्वा, सर्वेभ्यो यथेष्टदक्षिणां दद्यात्

* अपनी-शाखा में कहे विधान से आज्य-भाग पर्यन्त होम कर पूर्वोक्त गणेशादि-देवों के नाम से घी का हवन करना सिद्धि-प्रद है।

❀ःउपनयननिमित्तकक्षौरनिर्णय❀

चौलकर्मणि-बौधायनापस्तम्बाश्वलायनपारस्करप्रभृति-महर्षिभिः-'अथैनमेकशिखस्त्रिशिखः पञ्चशिखो वा यथैवैषां कुलधर्मः स्यात्। यथर्षिशिखां निदधासीत्येके [बौ०गृ०२। ४। १७। १८] यथर्षि शिखां निदधाति यथैवैषां कुलधर्मः स्यात् [आप० १५। १६] यथामङ्गलं केशशेषकरणम् [पा० गृ० २। १। २१] इत्यादि स्वस्वनिर्मितसूत्रेषु, तथा-

'केशशेषं ततः कुर्याद् यस्मिन् गोत्रे यथोचित'-मित्यादि-स्मृतिवचःस्वपि माणवकस्पार्षसंख्यया कुलसमाचारतः शिखा-धारणस्यावश्यकत्वं प्रतिपादितमिति नात्रविषये कस्याऽपि कोऽपि विरोधः समुदेति। तत ऊर्ध्वमुपनेयमाणवकानामुपनयन-संस्कारे किमेतां चूडाकर्मणि धृतां शिखां परित्यज्य वपनेन भाव्य शिखासहितेन वेति विवेचनेऽधस्तनानि प्रमाणान्युप-लभ्यन्ते। तथाहि-

कुमारं भोजयित्वा तस्य चौलवत्तूष्णीं केशानुप्य शुचि-वाससं बद्धशिखं यज्ञोपवीतिनं वाचयति [२। ४।७] इति बौधायनसूत्रे चौलवदिति पदेन चौलधर्मस्यातिदेशात्, बद्ध-शिखमितिपदस्य कुमारविशेषणत्वाच्च शिखावर्जमेवोपनयने वपनमभिहितम्। सशिखकृतक्षौरे तु बद्धशिखमिति विशेषणं व्यर्थमेवेति विदन्त्येव शास्त्रतत्त्ववविदो विद्वांसः। आपस्तम्ब-सूत्रेऽपि-'प्रतिदिशं वपति'-इति प्रतिदिशवपनस्यैव विधिः समु-ल्लसति न तु सर्ववपनस्य। एतन्मतानुकूल्येनैव-'पर्युप्तशिरसम-

लंकृतमानयन्ति'-[पा० गृ० २।२४] इत्यत्राऽपि-शिखां वर्जयित्वा परित उप्तं शिरो यस्य स पर्युप्तशिरास्तमित्यर्थकरणात् प्रतिदिशं वपनमेवाऽभिप्रेतम्। संस्कारकौस्तुभेऽपि श्रीमदनन्तभट्टेन-चौलकर्मणि धृतशिखानां मध्ये मध्यशिखां वर्जयित्वाऽन्यासां वपनमुपनयने निरणायि न तु मध्यशिखायाः। इतरशिखानां धारणन्त्वनुपनीतानामेव नतूपनीतानामित्यपि तत्र माधवोक्तिमनुसृत्योक्तम्। कमलाकरभट्टोऽपि 'रिक्तो वा एष यन्मुण्डस्तस्यैतदपिधानं यच्छिखा' इति श्रुतेर्मध्यशिखां वर्जयित्वोपमयने तासां वपनं निरणैषीत्। कात्यायनश्रौतसूत्रेऽपि केशश्मश्रुवपने वाऽशिखमित्युदीरितम्।

महामहोपाध्यायसान्नाढ्यश्रीमित्रमिश्रेण तु वीरमित्रोदये प्रमादाच्छिखावपने दक्षिणकर्णोपरि ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितकुशनिर्मितशिखाधारणमभिहितम्' तां विना कर्मण्यधिकारिताया एवाऽसिद्धेः। खल्वाटत्वेन सर्वथा केशाऽभावे खल्वाटेनाप्येवमेव शिखाधारणं कार्यमित्युक्तं काठकगृह्ये।

"सदोपवीतिनाभाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्"॥

इति कात्यायनवचनादुपवीतित्वस्य बद्धशिखत्वस्य च क्रतुपुरुषार्थोभयत्वमवगम्यते। अत्रोपवीतित्वं बद्धशिखत्वञ्चाधिकारिविशेषणम्, तेनोपवीतं शिखां च विना कर्मकरणेऽधिकारितैव नोपपद्यतेऽतो विशेखेन व्युपवीतिना च कर्मणि क्रियमाणे कर्मणोऽपि वैगुण्यं भवति। एवं सति क्रतुपुरुषोभया-

चारप्रयुक्तं प्रायश्चितद्वयम् ।

'सशिखकृतक्षौर' मित्यत्र तु सशिखशब्दस्य क्षौरविशेषणत्वात् सशिखं कृतं क्षौरं येन यस्य वा स तमिति त्रिपदबहुव्रीहौ कृतेऽप्यपरतः- कृतं क्षौरं येन स कृतक्षौरः सशिखश्चासौ कृतक्षौरस्तमित्येवं सशिखशब्दस्य कुमारविशेषणत्वात् कर्मधारयस्यापि सर्वथा संभवान्नेदं समस्तं पदमेकान्ततः सामगमाणवकोचितशिखासहितक्षौररूपमर्थमभिधत्तेऽपि तु तत्तद्यजुर्वेदीयादिपद्धतिषूल्लिखितोऽप्ययं पाठः स्वस्वगृह्योक्तमतस्याश्रयणीयत्वेन स्वस्वाऽनुकूलार्थतया तत्तन्सयासद्वयस्य सुवचत्वादर्थद्वयमेव प्रत्याययति। अन्यथा तत्तद्वचननां वैयर्थ्यापत्तिरिति संक्षेपः ।

सामगमाणवकानान्तु यज्ञोपवीतसंस्कारे सशिखमेव क्षौरं प्रोक्तम् । केशश्मश्रु रोमनखानि वापयीत शिखावर्जम् [गो० गृ० ३ । ४ । २४] इति-गोभिलगृह्ये समावर्तने शिखारहितवपनस्योपदेशात् ततः प्राक् सशिखमेव वपनं स्पष्टतया प्रतिपाद्यते । सशिखं वपनं कार्यमास्नानाद् ब्रह्मचारिणाम्, इति-कर्मप्रदीपे सामगानुद्दिश्यैव कात्यायनस्योक्तेश्च । परन्त्वास्नानादित्यत्र तेन [समावर्तनेन] विनारूपायां मर्यादायामाङ्सत्वेन, गोभिलगृह्ये शिखावर्जमिति पदोपादानेन च स्नानात्पूर्वमेव केशवापने कतिपयदिनविवृद्धमध्यकेशानां शिखारूपत्वेनावश्यधार्यत्वं प्रतिपाद्यतेऽन्यथा शिखावर्जमिति पदस्यासांगत्यापत्तिः स्पष्टैव । समावर्तनावन्तरन्तु शिखा-

धारणं तन्मुहूर्तपृच्छा च सर्वथाऽयुक्तैव ज्योतिषमुहूर्तग्रन्थे क्वकापि तन् मुहूर्तोल्लेखाऽभावादिति। इदं च सर्वं सर्वेषांद्वा शवार्षिकादिव्रतान्ते समावर्तनपक्षे। उपनयनदिन एव समा वर्तनाऽनुष्ठाने तु केशमुण्डनस्य पूर्वं जातत्वेन श्मश्रूणामु द्गमेन केवलं नखकर्तनमात्रं समावर्तने कार्यमित्येकः पक्ष रामाण्डारादिसंमतः। प्रयोजनाऽभावेऽपि, स्पर्शसंस्कारमा क्षुरेण कार्यमिति द्वितीयः पक्षो वृद्धजनसंमत उपेन्द्रादिसंम श्चेति। सामगानान्तु पूर्वं शिखामुण्डनाच्छिरसि केवलशिख स्थानमेव कल्पनीयम्,तद्वर्जयित्वाऽन्यत्रशिरसि सर्वदिक्षु क्षुरे स्पर्शमात्रविधेयम्, इदं शिखास्थानकल्पनमेव तद्धारणमुहूर्त मन्तव्यम् नत्वितोऽन्यत्। ततोऽग्रे शनैः२ केशेषु स्वतः संवृद्धे सत्सुमध्यकेशानां संरक्षणेनान्यसर्वदिकस्थितकेशानां कर्त्तनेन शिखारूपत्वं सुसंपन्नमेव। वाजसनेयिनां तु शिखा प्रथमत सुरक्षितत्वैवातस्तैर्नखकर्त्तनमात्रं क्षुरेण शिरसः स्पर्शसंस्कार मात्रं च कर्तव्यमिति।

यत्र वाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव [य० १७ ४८] इतिमन्त्रोऽपिच्छन्दोग पर एवेति-निर्णयसिन्धौ। विगता मुण्डिता शिखा येषां ते विशिखा इत्यस्मिन्विषयेऽयमर्थो ज्ञातव्यः। न्यायसुधामीमांसाकौस्तुभकारादीनां मते विविधा शिखा येषां ते--इत्यर्थोऽस्य तु सामगेतरपर एवेत्यपि प्रति पद्यन्तां प्राज्ञाः। वस्तुतो विशिखपदस्यार्थस्तु विविधशिखा रूप एव समीचीनः प्रतिभाति, अन्यथा ऽस्मिन्मन्त्रे पक्षयुक्तं

र्णैः सह सशिखमुण्डितमुण्डानां बालकानां सादृश्यं दृष्टान्ते कथं संगच्छेत। यथा विविधशिखा बालका आयान्ति,तथैव युद्धे नानापक्षयुता वाणा अप्यापतन्ति, इति दृष्टान्तार्थः स्पष्ट एवेति। अस्य कोप्यर्थः स्यात् परं सामगकुमाराणामुपनयने सशिखमेव मुण्डनं तेषां गृह्यतः सिध्यति। येषां गृह्ये सशिखमुण्डनं न विहितं तैः सशिखं मुण्डनं न कार्यम्।

सामवेदिनां गृह्ये सशिखं मुण्डनं प्रतिपादिमततस्तत्र 'सदोपवीतिना भाव्यं, सदा बद्धशिखेनेति—सामान्यशास्त्रं न प्रवर्तते, सशिखमुण्डनरूपविशेषशास्त्रेण तस्य बाधात्। तेन विशिखेन कर्मणि क्रियमाणेऽपि न तस्य कर्मणो वैफल्यं भवतीतिदिक्।

❀ अथोपनयनविधिः ❀

अथोपनयनकालनिर्णयः। तत्र च—ब्राह्मणस्योपनयनन्तु गर्भाऽष्टमे वर्षे भवति। गर्भादेकादशे राज्ञो, गर्भात्तु द्वादशेऽब्दे विश—इति गृह्यसूत्रवचनात॥ एतद् द्विगुणिताब्दपर्यन्तं गौण उपनयनकालः,कथ्यते।तदूर्ध्वन्तु'पतितसावित्रीकाः संस्कारहीना भवन्तीति ॥१॥ तथा च मनुः—"आषोऽशाद् ब्राह्मणस्य, सावित्रीनातिवर्तते। आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः" ॥२॥

अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते, यथाकालमसंस्कृताः॥ सावित्रीपतिता व्रात्या, भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥३॥ "तत्र कालभेदो यथा"—वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेद्, ग्रीष्मे राजन्यम् शरदि

वैश्यं *[सर्वंकालमेके]–इतिशतपथब्राह्मणे ॥४॥ तत्र
ज्योतिःशास्त्रोक्तशुभमुहूर्तदिने सूर्यगुरुचन्द्रतारादिशु
उदगयन आपूर्यमाणपक्षेऽनध्यायषष्ठीरिक्ताधतिरिक्ततिथि
रविगुरुशुक्रान्यतमवारे,मध्याह्नादर्वाक् पुत्रस्योपनयनं चि
षुर्यजमानः पत्नीकुमाराभ्यां सह मङ्गलद्रव्यैः स्नात्वा
वाससी परिधाय, धृततिलकः, पूजासामग्रीं सम्पाद्य, आच
प्राणानायम्य गणेशादिपचाङ्गदेवताः सम्पूज्य, सपुत्रः पि
बहिःशालायां प्रांगणे वा शुभासने पूर्वाऽभिमुख उपविश्य
सङ्कल्पं कुर्यात्-

ॐ अद्येत्यादि० अमुकोऽहं स्वस्योपने तृत्वयोग्यतायै कृच्छ्रत्रयप्रत्याम्नाय गोत्रय निष्क्रयीभूतं सुवर्णं द्रव्यं वा ऽमुकनाम्ने ब्राह्मणाय दास्ये ॥

। तथा ऽत्र कुमारोऽपि प्रायश्चित्त सङ्कल्पं कुर्य्यात्--

ॐ अद्येत्यादि० अमुकोऽहं स्वस्योपनेय त्वयोग्यतायै कृच्छ्रत्रय-गोत्रयनिष्क्रयीभू सुवर्णममुकगोत्रोत्पन्नायामुकप्रवरायाऽमुक शर्मणे ब्राह्मणाय दास्ये ॥ ॐतत्सन्न ममे दद्यात् ॥

* "जन्मना जायते शूद्रः, संस्काराद्द्विज उच्यते ॥"

अथाऽऽचार्यः पिता वा तत्रतुषकेशशर्करादिशून्यपरिष्कृतां हस्तमात्रपरिमितांचतुरस्रभूभावुपनयनवेद्यां पञ्चभूसंस्कार-पूर्वकं समुद्भवनामाऽग्निमावाह्य संस्थाप्य च संङ्कल्पं कुर्य्यात्—

ॐ विष्णुः २ अद्येत्यादि० ममैतस्य पुत्रस्य श्रौतस्मार्तकर्म्मानुष्ठानसिद्धिद्वारा ब्रह्मवर्चोऽभिवृद्धये वेदाध्ययनाऽधिकारसि-द्ध्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थञ्च चातुर्वर्ण्येषु स्वस्ववेदशाखासूत्रप्रवरगोत्रमुनिर्वाणतवि-हिताऽभिहितधर्म्मकरणानुकूल-ब्रह्मचर्य्यगृ-हस्थाश्रमादिषु तत्तत्फलानुसन्धानाय द्विज-त्वसंसिद्धिकामः, षोडशसंस्कारान्तर्गतमुप-नयनसंस्कारं करिष्ये, तत्पूर्वाङ्गतयाऽऽदौ त्रीन् ब्राह्मणान् भोजयिष्ये, तेभ्यो दक्षि-णाञ्च दास्ये ॥

ततः कुमारपित्राभ्युदयिके कृते, तदभावे त्वाचार्येणैव कृते, ब्राह्मणान्कुमारञ्च भोजयित्वा 'सशिख कृतक्षौरं'' स्नानानन्तरं कुमारमाचार्यपुरुषा आचार्यसमीपे आनयन्ति । तदाचार्य्यस्तं कुमारं स्वस्य दक्षिणपार्श्वेऽग्नेः पश्चादुदङ्मुख मुपवेशयति । तदोपनेय आचार्यं सम्पूजयति पश्चादाचार्यः

सङ्कल्पं कुर्य्यात्-

ॐ अद्येत्यादि० अमुकोऽहं शिष्यपरम्रागतमेनं सहृदयं माणवकं कर्तव्योपनयनसंस्कारेणोपनयिष्ये ॥

अथाचार्यस्तदा कृत तिलकं व्रतिनं बद्धाञ्जलि कुमसम्बोधयति-

ॐ ब्रह्मचर्य्यमागामिति ब्रूहि-इत्याचार्य्यप्रैषानन्तरं-ॐब्रह्मचर्य्यमागामिति कुमाआह ॥ पुनः-ॐ ब्रह्मचार्यसानीति ब्रूहिइत्याचार्य्येणोक्ते, ॐ ब्रह्मचार्यसानीतिकुमारो ब्रूयात् ॥

अथाचार्य्यो माणवकं कौपीनंवासः परिधापयतितत्रमन्त्रः*-

येनेन्द्रायेत्याङ्गिराऋषिर्बृहतीछन्दो,बृहस्पपतिर्देवता, वासः परिधाने-विनियोगः।ॐ येनेन्द्राय बृहस्पतिर्व्वासः पर्य्यदधादमृतम्। तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय व्वर्च्चसे ॥

* आचार्यस्यैव मन्त्रपाठोऽयम्।

ततः-'परिदधामीति'-मन्त्रलिङ्गाद् द्विराचमनं तूष्णीं माणवकः करोति ।। ततो माणवकस्य कटिप्रदेशे वेष्टनत्रयेण तत्प्रवरसंख्याक ग्रन्थियुतां मेखलामाचार्यो बध्नाति। तदा माणवकपठनीयो मन्त्रः-

ॐ इयं दुरुक्तमिति वामदेव-ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, मेखलादेवता' मेखलाबन्धने विनियोगः ।। ॐ इयन्दुरुक्तं परिबाधमाना व्वर्णं पवित्रम्पुनती मऽआगात् । प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसादेवी सुभगा मेखलेयम् ।।१।। अथवा-ॐयुवा सुवासा०-इति विश्वामित्र-ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, यूपो देवता, मेखलाबन्धने-विनियोगः ।। ॐ युवा सुवासाः परिवीतऽआगात्सऽउश्रेयान् भवति जायमानः । तन्धीरासः कवयऽउन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ।।२।।

इत्याचार्य्यः माणवकं तूष्णीं वा मेखलां बध्नीयात्-ततो वृत ब्राह्मणेभ्योऽष्टौ सफलानि सोपवीतानि पात्राणि दद्यात् ।। तत आचार्यः प्रणवपूर्वकं गायत्रीमन्त्रेण वटोः शिखाबन्धनञ्च कुर्यात्-*पुनश्चोपवीतं वामहस्ते धृत्वाऽभिमन्त्र-

* ॐ भूर्भुवः स्वः । ॐ तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ।।

येत् ॥ तत्प्रकारो यथा-पूर्वं गङ्गोदकेनो पवीतप्रक्षालनम्-

ॐ आपो हिष्ठेत्यादित्र्यृचस्य सिन्धुद्वीपऋर्षिः, आपो-देवता, गायत्रीछन्दः, यज्ञोपवीतप्रक्षालनार्थे-विनियोगः ॥ ॐ आपो हिष्ठामयोभुवस्ता न ऽऊर्ज्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ॥१॥ ॐ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥२॥ ॐ तस्म्मा ऽअरङ्गमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ।३। इति॥

ततो यज्ञोपवीतप्रक्षालनानन्तरं दशवारगायत्रीमन्त्रैरभिमन्त्र्य तत्र नवतन्तुदेवतानामावाहनं स्थापनंचकुर्य्यात्-

ॐ प्रणवस्य ब्रह्मर्षिः, परमात्मादेवता, गायत्रीछन्दः, प्रथमतन्तौ ॐकारावाहने-विनियोगः ॥ प्रथमतन्तौ-ॐकाराय नमः ॥ ॐकारमावाहयामि,स्थापयामि ।१। ॐ अग्निन्दूतमितिमन्त्रस्य मेधातिथिर्ऋषिः,अग्निर्देवता, गायत्रीछन्दः, द्वितीयतन्तावग्न्याऽऽवाहने-विनियोगः ॥ ॐ अग्निन्दूतम्पुरोदधे

हव्व्यवाहमुपब्ब्रु वे । देवाँ २ ऽआसादया-
दिह ॥ द्वितीयतन्तौ—ॐ अग्नये नमः ॥
अग्निमाव्वाहयामि, स्थापयामि ॥२॥ ॐ
नमोस्तु सर्प्पेब्भ्यो० इति मन्त्रस्य प्रजापति-
र्ऋषिः, सूर्य्यो—देवता, अनुष्टुप्छन्दः तृती-
यतन्तौ सर्पाव्वाहने—विनियोगः ॥ ॐनमोस्तु
सर्प्पेब्भ्यो ये के च पृथिवीमनु । येऽअन्तरिक्षे
ये दिवि तेब्भ्यः सर्प्पेब्भ्यो नमः ॥ तृतीय-
तन्तौ—ॐसर्प्पेब्भ्यो नमः । सर्पानावाहयामि
स्थापयामि ॥३॥ ॐ व्वय ७ सोमेत्यस्य
बन्धुर्ऋषिः,गायत्रीछन्दः, सोमोदेवता चतु-
र्थतन्तौ सोमावाहने-विनियोगः ॥ ॐ व्वय
७ सोमव्व्रते तव मनस्तनूषु बिब्भ्रतः । प्प्र-
जावन्तः सचेमहि ॥ चतुर्थतन्तौ-ॐसोमाय
नमः ॥सोममावाहयामि, स्थापयामि ॥४॥
ॐ उदीरतामित्यस्य शङ्खऋषिः, पितरो-
देवता, त्रिष्टुप्छन्दः, पञ्चमतन्तौ पितॄ ना-
वाहने—विनियोगः ॥ ॐ उदीरितामवरऽ-

उत्परासऽउन्मध्यमाः पितरः सोम्म्यासः
असुँय्यऽईयुरव्वृकाऽऋतज्ञास्तेनोऽवन्तु पि
तरोहवेषु ।।पञ्चमतन्तौ-ॐपितृभ्यो नमः।
पितृनावाहयामि, स्थापयामि ।।५।।ॐप्रजा
पते० इतिमन्त्रस्य हिरण्यगर्भऋषिः, प्रजा
पतिर्देवता, त्रिष्टुप्छन्दः, षष्ठतन्तौ-प्रजा
पत्याऽऽवाहनेविनियोगः ।। ॐ प्प्रजापते न
त्त्वदेतान्न्यन्न्यो व्विश्श्वा रूपाणि परिता
बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु व्वयं
ᳬ स्याम पतयो रयीणाम् ।। षष्ठतन्तौ–ॐ
प्रजापतये नमः ।। प्रजापतिमावाहयामि,
स्थापयामि ।।६।। ॐ आ नो नियुद्भिरित्य
स्य वशिष्ठऋषिः, अनिलो देवता, त्रिष्टु
प्छन्दः, सप्तमतन्तौ–अनिलावाहने-विनि
योगः ।। ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरद्
ध्वरᳬसहस्त्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम्।व्वायो
अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयम्पात स्स्व
स्तिभिः सदा नः ।। सप्तमतन्तौ–ॐ अनि

लाय नमः।। अनिलमावाहयामि,स्थापयामि ।।७।। ॐ सुगावः-इत्यस्याऽत्रिऋषिः, गृहपतयो देवतास्त्रिष्टुप्छन्दः, अष्टमतन्तौ-यमावाहने-विनियोगः ।। ॐ सुगावो देवाः सदनाऽ अकर्मय ऽ आजग्मेद ७ सवनञ्जुषाणाः । भरमाणा व्वहमाना हवी ७ ष्यस्मे धत्त व्वसवो व्वसूनि—स्वाहा।। अष्टमतन्तौ—ॐ यमाय नमः ।। यममावाहयामि, स्थापयामि ।।८।। ॐविश्वे देवासऽआगत—इतिमन्त्रस्य श्री परमेष्ठीऋषिर्गायत्रीच्छन्दः, नवमतन्तौ विश्वेदेवानामावाहने—विनियोगः ।। ॐ व्विश्वे देवासऽआगत शृणुतामऽइम७हवम्। एदम्बर्हिर्निषीदत उपयाम गृहीतोसि व्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएषते योनिर्व्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ।। नवमतन्तौ—ॐ व्विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ।। विश्वान्देवानावाहयामि, स्थापयामि ।।९।। इति ।। अथ ग्रन्थिदेवानावाहयेत्—ॐ ब्रह्म

जज्ञानमितिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः,ब्रह्मा
देवता, गायत्रीछन्दः, 'ग्रन्थिमध्ये'—ब्रह्मा
ऽऽवाहने-विनियोगः । ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्र
थमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेनऽआवः
स बुध्न्याऽउपमाऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च
योनिमसतश्च व्विवः ॥ 'ग्रन्थिमध्ये'।
ॐब्रह्मणे नमः॥ ब्रह्माणमावाहयामि,स्था
पयामि ॥१॥ ॐ इदं व्विष्णुरित्यस्य-मेधा
तिथिर्ऋषिर्विष्णुर्देवता, गायत्रीछन्दः
'ग्रन्थिमध्ये'-विष्णोरावाहने—विनियोगः।
ॐ इदं व्विष्णुर्व्विचक्रमे त्रेधा निद
पदम् । समूढमस्य पा ँ सुरे स्वाहा।
'ग्रन्थिमध्ये'-ॐविष्णवे नमः ॥ विष्णुमावा
हयामि, स्थापयामि ॥२॥ ॐ त्र्यम्बकमि
त्यस्य-वशिष्ठ—ऋषिः, रुद्रो देवता, त्रिष्टु
प्छन्दः,'ग्रन्थिमध्ये'-रुद्रावाहने-विनियोगः
ॐ त्र्यम्बकँ य्यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्ध
नम्। उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्म्मुक्षी

यमामृतात् ।। "ग्रन्थिमध्ये'—ॐ रुद्राय नमः ।। रुद्रमावाहयामि, स्थापयामि ।।३।। ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनो त्वरिष्टँय्यज्ञ ऽ समिमन्दधातु । विश्श्वेदेवा सऽ इहमादयन्तामोँ २ प्रतिष्ठ ।। अत्राऽऽवाहितदेवताः सुप्रतिष्ठताः वरदाः भवन्तु ।। पुनर्यथालब्धोपचारैरावाहितदेवान् सम्पूजयेत्—ॐप्रणवाद्यावाहितोपवीतदेवताभ्यो नमः ।। गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि ।।

ततो यज्ञोपवीतं ध्यायेत् ।। अथ ध्यानम्--

ॐ प्रजापतेर्यत्सहजं पवित्रं. कार्पाससूत्रोद्भवब्रह्मसूत्रम् ।। ब्रह्मत्वसिद्धयै च यशः प्रकाशं, जयस्य सिद्धिं कुरु ब्रह्मसूत्रम् ।।१।।

इतिध्यात्वा ऽऽचार्य्यः यज्ञोपवीतं करसम्पुटेनिधाय, दशभिर्गायत्रीमन्त्रैरभिमन्त्र्य सूर्यायोपवीतं प्रदर्शयेत्--

ॐ उदुत्यञ्जात० ।।१।। ॐ चित्रन्देवानाम्० ।।२।। ॐ तच्चक्षुर्द्देवहितम्० ।।३।।

इतिमन्त्रैः सूर्य्यायोपवीतं प्रदर्श्याचार्यः माणवकस्य निवेशयति ॥ तत्रादौ

ॐ यज्ञोपवीतमितिमन्त्रस्य । परमे ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, लिङ्गोक्ता-देव श्रौतस्मार्तकर्म्माऽनुष्ठानसिद्ध्यर्थे, यज्ञो वीत परिधाने—विनियोगः ॥ ॐ यज्ञोप तमसीति-प्रजापतिऋषिर्यजुश्छन्दः, यज्ञ पवीतदेवता यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्

× अथापनयन [व्रतबन्ध] मुहूर्तः-तत्र गुरुशुक्रयोर्वृद्धत्व शिशुत्वकालं विना, सौम्यायने सूर्य्ये, माघादि-पञ्चमासेषु श्रेष्ठः। न्दुगुरुशुद्धौ मीनार्के च ब्राह्मणानां व्रतबन्धः श्रेष्ठः। तत्र नक्षत्रा अश्विनी, रो०, मृ०, आर्द्रा, पुन०, पुष्य, ऽश्ले०, पूर्वा० ३, उत्तरा चि०, स्वा०, ऽनु०, मू०, श्र०, ध०, शत०-रे०, एतद्वेधरहिते च शुभः ॥ तिथयः-२।३।५।१०।११।१२-शुक्लपक्षे, तथा २।३।५ पक्षे ऽप्युत्तमां ॥ सद्वाराः- सू० चं० बु० गु० शु० एषु, रुग्वाणादि रहिते श्रेष्ठः ॥ तत्र लग्नशुद्धिः-"त्रिषड् भस्थाः खलाः सर्वे, द्विद्यूनदिक्त्रिगः। सौम्याः केन्द्रत्रिकोणस्थाः, लाभे सर्वे व्रते शु तत्र च चन्द्रशुक्रगुरुलग्नेशाश्च लग्नात् षडष्टभावे न शुभाः। श लग्नाद्द्वादशे निन्द्यौ। लग्नात् १-५-८ स्थाने पापग्रहा न षडष्टद्वादशभावेषु सौम्यग्रहाः न शुभाः। त्रिषडेकादशे पापा फलदाः। पूर्णेन्दुः वृषभकर्कगतो लग्ने श्रेष्ठो ऽन्यथा न। ऽर्कोऽपि शुभः ॥ इति ॥

ृजं पुरस्तात्।आयुष्यमग्र्यम्प्रतिमुञ्च शुभ्रं
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ यज्ञोपवीत-
मसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

एवं संपठतो मन्त्र माणवकस्य दक्षिणबाहुमुद्धृत्य वाम-
कन्धोपरि यज्ञोपवीतं निदध्यात् ॥ ततो माणवकस्याचमन-
यम्. प्रदक्षिणमग्निं परीत्य माणवकोऽग्नेः पश्चिमे स्थित्वा-
णेय कृत्ति (मृगीचर्म) तूष्णीं समन्त्रं वा यज्ञोपवीतवद्धारयेत् ॥
त्र मन्त्रः--

ॐ मित्रस्य चक्षुरिति-मन्त्रस्य परमेष्ठी

अथ यज्ञोपवीतनिर्माणविधिः-शुचौ देशे शुचिः
त्रं, संहतांगुलिमूलके। आवेष्टद्य शण्णवत्या तत्,
त्रिगुणीकृत्य यत्नतः ॥१॥ अब्लिगकैस्त्रिभिः
म्यक्, प्रक्षाल्योर्ध्ववृतञ्च तत् । अप्रदक्षिणमावृत्तं
ावित्र्याः त्रिगुणीकृतम् ॥२॥ अधः प्रदक्षिणमा-
त्तं, समं स्यान्नवसूत्रकम् । त्रिरावेष्टद्य दृढं बध्वा,
ह्माविष्णुशिवान्नमेत् ॥३॥ यज्ञोपवीतं परम-
मति-मन्त्रेण धारयेत् । सूत्रं सलोमकञ्चेत्स्याराततः
त्वा विलोमकम् ॥४॥ सावित्र्या दशकृत्वोऽद्भिर्म
न्त्रताभिस्तदुक्षयेत् ॥ ५ ॥ इतिमदनपारिजाते,
रिहरभाष्ये।

ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोः लिङ्गोक्तादेवता, अ
नधारणे—विनियोगः ।। ॐ मित्रस्य चक्षु
रणं बलीयस्तेजो यशस्वि स्थविर ँ स
द्धम् ।। अनाहनस्यं वसनञ्जरिष्णु परी
व्वाज्यजिनन्दधेऽहम् ।।

ततो माणवकस्य द्विराचमनम् । तत आचार्यो ब्र
चारिणे तूष्णीं पलाश+दण्डं प्रयच्छति ।। तत्र मन्त्रः-

ॐ यो मे दण्ड-इति प्रजापतिऋर्षि
यजुश्छन्दो, दण्डो देवता, दण्डधारणे-वि
योगः ।। ॐ यो मे दण्डःपरापतद्वैहायसोऽधि
भूम्याम् ।। तमहं पुनराददऽआयुषे ब्रह्म
ब्रह्मवर्च्चसाय ।।

इति पठित्वा ब्रह्मचारी दण्डं प्रतिगृह्णाति ।। त
ब्रह्मचारी दण्डमुच्छ्रयति--

ॐ उच्छ्रयस्वेति-प्रजापतिऋर्षिर्यजुश्छन्
दण्डो-देवता, दण्डोच्छ्रयणे-विनियोगः
ॐ उच्छ्रयस्व व्वनस्पतऽऊर्ध्वो मा पाह्य
हसऽआस्य यज्ञस्यो दृचः ।।

+ यस्तु पालाशो ब्राह्मणस्य, बैल्वो राजन्यस्य, औदुम्बरो वैश्यस्ये

ततआचार्यः स्वाञ्जलिगृहीतवारिणा कुमारस्याञ्जलिं पूरयति--

ॐ आपो हिष्ठेतिसिन्धुद्वीपऋषिर्गायत्री-छन्दः, आपो देवता,माणवकाऽञ्जलिपूरणे-विनियोगः ॥ ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽऊर्ज्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ॥१॥ ॐ योवः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥२॥ ॐ तस्मा ऽअरङ्ग-मामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जन-यथा च नः ॥३॥

तत आचार्यः सूर्यं मुदीक्षस्वेति-प्रेषितो ब्रह्मचारी सूर्यंपश्यति-

ॐ तच्चक्षुरिति--दध्यङ्ङाथर्वणऋष्युष्णि-क्छन्दः, सूर्यो देवता सूर्यसुदीक्षणे--विनि-योगः ॥ ॐ तच्चक्षुर्द्देव हितम्पुरस्ताच्छुक्र-मुच्चरत् । पश्येच शरदः शतञ्जीवेम शरदः शत ७ शृणुयाम शरदः शतम्प्रब्र-वाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शत-म्भूयश्श्च शरदः शतात् ॥

तत आचार्यो माणवकस्य दक्षिणस्कन्धोपरि स्वदक्षिण हस्तं नीत्वा हृदयमालभते ॥

ॐ ममेतिप्रजापति-ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, बृहस्पतिर्देवता, हृदयाऽलम्भने-विनियोगः। ॐ मम व्व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तन्तेऽअस्तु । मम व्वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥

तत आचार्यः कुमारस्य दक्षिणहस्तं गृहीत्वा तं पृच्छति-

ॐ को नामासि, ॐ कस्य ब्रह्मचार्यसि।

इति श्लोकेन तं पृच्छति--

भो ब्रह्मचारिन्! वटुवेषधारिन् ! किन्नामधेयं तव मे वितर्कः।आचक्ष्व हे माणवकेन्द्र चन्द्र ! त्वं ब्रह्मचारी कतमोऽपि कस्य ॥१॥

ततः कुमारः कथयति-अमुकनामशर्म्माऽहं भोः ॥२॥ भवतो ब्रह्मचारीति ॥ अथाचार्यो भाषते-ॐ इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्य्यस्तवाहमाचार्य्यस्तव श्रीअमुकशर्म्मन्!

बटुनामान्तं इत्युक्त्वा चार्य्योबद्धाञ्जलिं कुमारं पूर्वादिदिक्षु प्रदक्षिणमुपस्थानङ्कारयति ॥ तत्राचार्यमन्त्र पाठः-

ॐ प्रजापतये त्वेति=प्रजाऋर्षिः षट्यजूंषि छन्दांसि लिङ्गोक्तादेवता, रक्षणे विनियोगः ॥ ॐ प्रजातयेत्वा परिददामि इति (प्राच्याम्) ॐ देवाय त्वा सवित्रे परिददामि इति (दक्षिस्याम्) ॐ अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि—इति (प्रतीच्याम्) ॐ द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि—इति (उदीच्याम्) ॐ विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि (इत्यधः) ॐ सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददास्यरिष्ट्यै (इत्यूर्ध्वम्) ॥

ततः कुमारोऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्याचार्यस्योत्तरत उपविशति ॥

ततो ब्रह्मवरणम् ॥ पाद्यादिभिर्वरणद्रव्यं ब्राह्मणञ्च, सम्पूज्य, हस्ते पुष्पचन्दनताम्बूलवासांस्यादाय सङ्कल्पं कुर्यात्-

ॐ अद्य कर्तव्योपनयनहोमकर्मणि कृताकृतवेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तु-ममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिपुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे ॥ "ॐ वृतोऽस्मीति"—

प्रतिवचनम् ।। ततोऽग्नेर्दक्षिणतभागे शुद्धमासनन्निधा
तदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य्य ब्रह्माणमग्निं प्रदक्षिणं का
यित्वा,

ॐ अस्मिन्कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय

ॐ 'भवानीति'—

तेनोक्ते, तदुपरि ब्रह्माणमुदङ् मुखमुपवेशयेत् ।। तत

प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा, वारिणा परि
पूर्य्य, कुशैराच्छाद्य, ब्रह्मणो मुखमवलोक्या
ऽग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ।। तत
र्बर्हिषश्चतुर्थभागमादायाऽऽग्नेयादीशानान्त
म् ब्रह्मणोऽग्निपर्य्यन्तम्, नैर्ऋत्याद्वायव्यान्त
मग्नितः प्रणीतापर्यन्तं, परिस्तीर्य्याऽग्ने
त्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुश
त्रयम्, पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भं कुश
पत्रद्वयम्, प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली, सम्मा
र्जनकुशाः पञ्च, वेणीरूपोपयमनकुशाः सप्त
पलाशसमिधस्तिस्रः स्रुवः आज्यम्, ष
पञ्चाशदुत्तरमुष्टिशतद्वयावच्छिन्नतण्डुल

र्णपात्र मेतानि पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्व-दिशि क्रमेणाऽऽसादनीयानि। ततःपवित्रच्छेदनकुशैः स्वप्रादेशामित पवित्रे छित्वा, दक्षिणकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय, व्यस्तं द्वाभ्यामनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा, प्रोक्षणीजलस्य त्रिरुत्पवनं कुर्यात् ॥ पुनः प्रोक्षणीपात्रं वामहस्ते धृत्वा, दक्षिणाऽनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा, तेन प्रोक्षणीजलं त्रिरुत्क्षिप्य, प्रणीतोदकेन प्रोक्षणी मभिषिच्य, प्रोक्षणीजलेनाऽऽसादितवस्तुसेचनम्, ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात् ॥ तत-आज्यस्थाल्यामाज्यं निरूप्याऽधिश्रित्य, ज्वलत्तृणेन हविर्वेष्टयित्वा, वह्नौ तत्प्रक्षिपेत ॥ स्रुवमधोमुखञ्च त्रिः प्रतप्यःसम्मार्जनकुशानाग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः संमृज्य, प्रणीतोदकेनाऽभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य, स्वदक्षिणतः कुशोपरि निदध्यात् ॥ तत-आज्यम-

ग्नेरवताय्र्याऽग्रतः संस्थाप्य, प्रोक्षणीवत् त्रिरुत्पूयावेक्ष्य, सत्यपद्रव्ये तन्निरस्य, पुनः पूर्ववत्प्रोक्षण्युत्पवनं कुर्य्यात् ॥ उपयमन-कुशाँश्च वामहस्ते कृत्वोत्तिष्ठन्प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा, तूष्णीं घृताक्ताः समिधस्ति-स्रोऽग्नौ प्रक्षिपेत ॥ तत-उपविश्य, सप-वित्रप्रोक्षण्युदकेन ईशानमारभ्येशानान्तं-प्रदक्षिणक्रमेणाऽग्निं पर्य्युक्ष्य, प्रणीतापात्रे पवित्रं निधाय, पातितदक्षिणजानुर्ब्रह्मणाऽ न्वारब्धः, समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहु-तीर्जुहु यात् ॥

तत्राऽऽद्यमारभ्य द्वादशाहुतिपर्य्यन्तं प्रत्याहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थित हुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः कर्तव्यः ॥ ततो ऽग्नि ध्यानाऽऽवाहनादिभिः सम्पूज्य होमः कार्य्यः ॥

ॐ प्रजापत्यादि-चतुर्णां मन्त्राणां प्रजा पतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, प्रजापतीन्द्राग्नि-सोमा देवताऽऽज्यहोमे- विनियोगः ॥ ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम ।१।

(ततोऽग्निमध्ये)-ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय ॥२॥ (ततोऽग्निपूर्वार्द्धे)-ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये ॥३॥ ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय ॥४॥ ॐ भूर्भुवः स्वरितिमहाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि, अग्निवायुसूर्य्या–देवता, उपनयनाङ्गप्रधानहोमे-विनियोगः। ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये न मम ॥१॥ ॐ भुवः स्वाहाः इदंवायवे न मम ॥२॥ ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्य्याय न मम ॥३॥ इति महाव्याहृतयः। ततः-ॐ त्वन्नो,ॐ सँत्वन्नो०-मन्त्रद्वयस्य वामदेवर्षिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्नीवरुणौ देवते प्रायश्चित्तहोमे-विनियोगः ॥ ॐ त्वन्नोऽ अग्ग्ने व्वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽ अवयासिसीष्ठ्ठाः ॥ यजिष्ठ्ठो व्वह्नितमः शोशुचानो विश्श्वाद्द्वेषा ँ सि प्रमुमुग्ध्यस्मत्-स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां, न मम ॥ १ ॥ ॐ स त्वन्नो ऽअग्ग्ने

वमो भवोतीनेदिष्ठठो ऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो व्वरुण ँ रराणो व्वीहि मृडीक ँ सुहवो न ऽएधि-स्वाहा ॥ इदमग्नि वरुणाभ्यां, न मम ॥२॥ ॐ अयाश्चाग्ग्न-इतिमन्त्रस्य विराट् ऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता, प्रायश्चित्तहोमे-विनियोगः ॥ ॐ अयाश्चाग्ग्ने स्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाऽअसि । अयानो यज्ञं व्वहास्ययानो धेहि भेषज ँ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे, न मम ॥३॥ ॐ ये ते शतमितिशुनःशेफऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, लिङ्गोक्ता देवताः प्रायश्चित्तहोमे-विनियोगः ॥ ॐ ये ते शतं व्वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा व्वितता महान्तः । तेभिर्नो ऽअद्य सवितोत व्विष्णुर्व्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्काः-स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो-देवेभ्यो मरुद्भ्यःस्वर्क्केभ्यश्च, न मम ॥४॥ ॐ उदुत्तममिति-शुनःशेफऋषिस्त्रि-

ष्टुप्छन्दो, वरुणो—देवता, प्रायश्चित्तहोमे—विनियोगः ॥ ॐ उदुत्तमं व्वरुणपाशमस्म-दवाधमं व्विमद्ध्यमꣳ श्रथाय ॥ अथाव्वय-मादित्यव्व्रते तवानागसो ऽअदितये स्याम-स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च न मम ॥५॥

एताः प्रायश्चित्त-संज्ञकाः ॥

ॐ प्रजापतये स्वाहा-इदं प्रजापतये न मम।१।

तदन्ते स्विष्टकृद्धोमं कुर्यात्–

ॐ अग्नये स्विष्टकृते-स्वाहा॥ इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ॥२॥

ततः संस्रव-प्राशनम् ॥ आचम्य, ब्राह्मणः पूर्णपात्रञ्च सम्पूज्य प्रणीतोदकेन सङ्कल्पं कुर्यात्-

ॐ अद्येत्यादि० ममैतस्य कृतैतदुपनयना-ङ्गीभूतहवनकर्म्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्म-कर्मणः प्रतिष्ठार्थमिदं सदक्षिणां पूर्णपात्रं प्रजापति-दैवतममुकगोत्रायाऽमुकनामशर्म्म-णे ब्राह्मणाय तुभ्य महं सम्प्रददे।ॐ स्वस्तीति

प्रतिवचनम् । ततो ब्रह्मणो ग्रन्थि विमोकः ॥

ॐ सुमित्रिया नऽ०-इतिदध्यङ् ङाथर्वण
ऋषिरापो देवता, शिरः प्रोक्षणे मार्जने
विनियोगः ॥ ॐ सुमित्त्रिया नऽआपऽओ
धयः सन्तु ॥

इतिमन्त्रेण पवित्रकं ग्रहीत्वा प्रणीताजलेन शिरः सम्मृज्य, त

ॐ दुर्म्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि
यञ्च व्वयन्द्विष्मः ॥

इति ऐशान्यां प्राणीतापात्रं न्युब्जीकरणम् ॥ ततः-

ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्त
तमास्ते कृण्वन्तु भेजषम् ॥

इति मन्त्रेण ॥ पुनः पवित्राभ्यां मार्जनम् ॥ ततः-

ॐ देवा गात्विति अत्रि-ऋषिरुष्णिक्
छन्दो, मनसस्पतिर्देवता, बर्हिर्होमे-विनि
योगः ॥ देवा गातुव्विदो गातुं व्वित्त्वा
गातुमित । मनसस्पतऽइमन्देवयज्ञ ँ स्वाहा
व्वातेधाः ॥

इति बर्हिर्होमः ॥ तत आचार्य्यः कुमारं शिक्षयति

यथा आचार्य्यः—"ॐ ब्रह्मचार्यसि", माणवकः—"ॐ ब्रह्मचारी-भवामि" ॥ १ ॥ आचार्य्यः—"ॐ आपोशान," ब्रह्मचारी-"ॐ अश्नानि," ॥२॥ आचार्य्यः—"कर्म कुरु," ब्रह्मचारी-"करवाणि" ॥३॥ आचार्य्यः—"ॐमा दिवा सुषुप्थाः," ब्रह्मचारी-"ॐ न स्वपानि" ॥४॥ आचार्य्यः—"ॐ वाचं यच्छ," ब्रह्मचारी—"ॐयच्छामि" ॥५॥ आचार्य्यः—"ॐ समिधमाधेहि," ब्रह्मचारी—"ॐ आदधामि" ॥६॥ आचार्य्यः—अपोऽ शान, ब्रह्मचारी-अश्नानि ॥

विशेष श्लोकैरुपदिशत्याचार्यः-

सद्ब्रह्मचर्य्यादिदशाविशेषैर्ब्रह्माण्डकार्याणि यथा विभागम् ॥ वेदाज्ञया शिष्य ! समाचर त्वं, तत्कर्मधर्माद्द्वयतां लभस्व ॥१॥ उपास्यतां संयमयोगपूर्वं, मातेव कल्याणरसं सृजन्ती । अङ्गैरुपाङ्गैः कलिता त्रयीयं, यतः स्फुरेन्मानससारसश्रीः ॥२॥ प्रारब्ध-

वेगेन समृद्धिभोगो, न विद्यया साध्य
एष पीनः । विद्यापि वैदुष्यमुपार्जयन्त
जागर्ति लोकद्वयसाधनाय ।।३।। भूयां
शास्त्राणि न तानि सर्वैर्ज्ञातुं तथा श्रोतु
मपि क्षमाणि ।। तस्मादितः-सार इत्युदार
भावो, ग्राह्योऽधुना सोऽपि हिताय लो
।।४।। प्रायोऽधुना संस्कृतपुस्तकेभ्यो, वैमु
ख्यभाजो बहवो हि ते तु ।। प्रबोधनीय
खलु राजवाणी, वयस्यवैदेशिकभाषयाऽपि
।।५।। चिरन्तनोदन्तनिदर्शनेन, सद्ब्रह्म
चर्यादिमहाव्रतेन । निधीयतां माणवकव
जेषु, प्रशस्तविद्याबलवीर्यभावः ।।६।। सदा
सदाचारविचारदीक्षा, तत्कर्म्मवीक्षा सुत
रामपेक्ष्या । येनास्य याताः पितरो महा
न्तस्तेनैव यातव्यमिति स्मर त्वम् ।।७।।

अथ दैवज्ञबोधिते दीक्षालग्ने लग्नदानं कुर्यात्–

अद्येहामुकोऽहममुकराशेरस्य पुत्रस्य
सावित्रीग्रहणलग्नात् (अमुक) स्थानस्थि

तेन (अमुक) ग्रहेण, सूचिताऽरिष्टनिवृत्तिद्वारा—शुभफलप्राप्तये, ग्रहाणां प्रीतये, इदं सुवर्णं सुवर्णनिष्क्रयीभूतं द्रव्यं वा दैवज्ञाय ब्राह्मणेभ्यश्च, दास्ये ॐ तत्सन्न मम ॥ ततोगुरुवरणम् ॥ पाद्यादीनि समर्पयामि ॥ वरणद्रव्याय नमः ॥ ॐगुरवे नमः ॥ इति सम्पूज्य ॥ अद्येत्यादि० अमुकोऽहं, मम श्रौतस्मार्तकर्माधिकारसम्पादकद्विजत्वसिद्धये, ब्रह्मगायत्रीदीक्षाग्रहणकर्मणि, एतेन वरणद्रव्येणामुकदैवतेनाऽमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं गुरुत्वेन त्वां वृणे ॥ इति वरणद्रव्यं दद्यात् ॥ गुरुः—वृतोस्मि ॥

ततः शङ्खघण्टाभेरीमृदङ्गतूर्य्यवादित्रादिरवे जायमाने वेदध्वनिना सह पतिपुत्रवतीस्त्रीणां मङ्गलवाग्जालैर्वितानितदिगम्बरे यज्ञमण्डपे शुभलग्ने, गुरुमीक्षमाणाय गुरुणा समीक्षितायाऽऽचान्तोदकाय माणवकायाऽग्नेरुत्तरतः, स्वस्य दक्षिणतः, पश्चिममुखोपविष्टाय, आचार्यः (पिता वा) प्रणवव्याहृतिपूर्वकां ब्रह्मगायत्रीं दक्षिणकर्णे त्रिवारं यथाक्रमं श्रावयेत् ॥ तत्र वटुश्च पुष्पफलादिभिर्गुरोः व्यस्तहस्ताभ्यां,

दक्षिणहस्तेन दक्षिणं पादं वामहस्तेन वामं पादं गृहीत्वा-

अमुकगोत्रोऽमुकप्रवरो ऽमुकवेदान्तर्गता मुकशाखाध्यायी अमुकशर्माऽहं भो गुरो त्वामभिवादये । इत्येतदुपसंग्रहणं नाम गुरुश्च आयुष्मान्भव, सौम्यामुकशर्म भोः! इत्याशिषम्प्रयुञ्जीत ॥ ततः सावित्री दानम् ॥ गायत्र्या—विश्वामित्रऋषिर्गा यत्रीछन्दः, सविता-देवता, सावित्रीदाने विनियोगः ॥

इत्यार्षादिक स्मृत्वा प्रणवव्याहृतिपूर्वां गायत्रीं [प्रथम-द्वियीय-तृतीय-पादक्रमेण] ब्रूयात् ॥ तद्यथा-

ॐभूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं—इति प्रथमवारम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्सवितु र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि-इति द्वितीयवा रम् ॥ ॐभूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्व्वरेण्य म्भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोद यात् ॐइति तृतीयवारंसर्वां गायत्रीं ब्रूयात् वाचयेच्च ॥ इति गायत्री ब्राह्मणस्य ॥

त्रैस्टुभीक्षत्रियस्य ॥ जागती—वैश्यस्य ॥ यद्वासर्वेषामेव पूर्वांगायत्रीं ब्रूयात् ॥क्षत्रियस्यॐ ता ॅ सवितुर्व्वरेण्यस्य चित्रामाहंव्वृणे सुमतिं व्विश्वजन्याम्। यामस्य कण्वोऽअदुहत् प्रपीना ॅ सहस्रधाराम् पयसा महीं गाम्। वैश्यस्य तु ॥ ॐ व्विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे व्विनाकमख्यत्सविता व्वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसोव्विराजति ॥इति॥ गुरुदक्षिणादानम् ॥ पाद्यादीनि समर्पयामि ॥ दक्षिणाद्रव्याय नमः ॥सम्पूज्य—ॐ अद्येत्यादि० मया कृतस्याऽस्य ब्रह्मगायत्रीदीक्षाग्रहणकर्म्मणः साङ्गफलावाप्तये, इदं सुवर्णमग्निदैवतं श्रीगुरुवे तुभ्यं सम्प्रददे ॥

तस्मिन्नेवाऽवसरे स्मार्त्तधर्मानुसारेणपञ्चायतनदीक्षामपि गृह्णाति ॥ ततस्तत्कालोऽस्थितां सन्ध्यां कुर्वीत--

ब्रह्मचारीकर्तृकः सुश्रुवाहोमः* ॥ अथ

---

† 'स्वाहा' शब्दस्य चात्र न प्रयोगः। 'अत्र तु समिदाधानं होमः।'

समिदाधानम् । अग्नेः पश्चिमतः उप
श्याऽऽचम्य, प्राणानायम्य, दक्षिणपाणि
ऽग्निं परिसमूहति ॥ ॐ अग्ने सुश्रुव०
इति पञ्चमन्त्राणां ब्रह्मात्रृषिर्यजूं
छन्दांसि, अग्निर्देवताऽग्निसमिन्धने-विनि
योगः । ॐ अग्ने सुश्रुवः सुश्रवसं मां कुरु
ॐ यथा त्वमग्ने देवानां सुश्रवः सुश्रवा
असि ॥ ॐएवम्मा ँसुश्रवःसौश्रवसङ्कु
ॐयथा त्वमग्ने देवानाँय्यज्ञस्य निधिपा
असि ॥ ॐ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य नि
धियो भूयासम् ॥

केचित्तु–मन्त्रत्रयमेव वदन्ति ॥ एभिः पञ्चभिर्मन्त्रै
ग्निसन्दीपनम् ॥ ब्रह्मचारी दक्षिणहस्तेन जलमादाय, ईश
नादारभ्येशानपर्यंतं भ्रामयेत् ॥ पर्युक्ष्योत्थाय प्रादेशमिता
कांसमिधमादाय, कर्णसम्मितां कृत्वा--

ॐ अग्नय:०–इति प्रजापतिऋषिराकृ
तिश्छन्दः, समिद्देवता, समिदाधाने-विनि
योगः समिधं हस्ते चादाय ॥ ॐ अग्नये

समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्व-
मग्ने समिधा समिध्य स ऽएवमहमायुषा
मेधया व्वर्च्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्च्चसे-
नसमिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहम-
सान्यनिराकरिष्णुर्य्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्म-
वर्च्चस्यन्नादो भूयास ँ स्वाहा। अनेनैव
मन्त्रेण द्वितीयां तृतीयां चसमिधं*जुहोति
माणवकः॥ ॐ एषा त-इति प्रजापतिर्ऋ-
षिरनुष्टुप्छन्दः समिद्देवता, समिदाधाने-
विनियोगः॥ ॐ एषा ते ऽअग्ने समित्तया
वर्धस्व चाप्यायस्व च व्वर्धिषीमहि च व्व-
यमाचप्याशिषीमहि स्वाहा॥ द्वितीयां
तृतीयाञ्च वा समिधाञ्जुहोति उभयोर्वा
मन्त्रेण समुच्चयेनैकां द्वितीयां तृतीयाञ्च
समिधामाधानं कार्यम्॥ सुश्रुव—होमादिकं
पूर्ववत्कृत्वा, तूष्णीं पाणिं प्रतप्य, मुख वि-

* जुहोतीति—एतच्च समिदाधानं न होमः अतोऽत्रन त्याग वाक्यप्रयोगः।

मृशेत् ।। ॐ तनूपाऽग्ग्ने ऽसीत्यादीनां बृ
हद्देवा ऋषियस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता, मुख
संमार्जने–विनियोगः ।। ॐ तनूपा ऽअग्ने
ऽसि तन्वं मे पाहि ।। ॐ आयुर्दाग्ग्नेऽस्या
युर्म्मे देहि ।। ॐ त्वच्चर्चोदाऽअग्नेऽसि त्व
च्चर्चो मे देहि ।। ॐ अग्ग्ने यन्मे तन्वाऽऊ
तन्मऽआपृण ।। ॐ मेधांमे देवः सविता
आदधातु ।। ॐ मेधां मे देवी सरस्वत
ऽआदधातु ।। ॐ मेधाम्मेऽअश्विनौ देवावा
धत्तां पुष्करस्रजौ ।। एभिः सप्तभिर्मन्त्रै
प्रतिमन्त्रं मुखं प्रोच्छति ।।

अत्र च केचन पदार्थाः समाचारपरम्पराप्राप्तया लिख्य
न्ते ।। अप्रतप्त--पाणिभ्यां शिरः प्रभृतिपा दपर्यंतानि सर्वा
गानि समालभते ।। ततो दक्षिणहस्तेन स्पर्शः-

ॐ वाक् च मऽआप्यायतामिति–मुखम् ।
ॐप्राणश्च मऽआप्यायतामितिनासिकाद्वयम्
ॐ चक्षुश्च मऽआप्यायतामितिनेत्रद्वयम् ।
ॐ श्रोत्रञ्च मऽआप्यायतामिति-कर्णद्वयम् ।

मन्त्रावृत्या पृथक् २। ॐ यशो बलञ्च मऽआप्यायतामितिबाहुद्वयम् ॥

मन्त्रावृत्या पृथक् ॥२। समालभ्याऽनामिकया ऽग्नेः भस्म गृहीत्वा, त्र्यायुषं कुरुते ॥

ॐ त्र्यायुषमिति—नारायणऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता त्र्यायुषकरणे—विनियोगः ॥ ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेरितिललाटे। ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमितिग्रीवायाम् ॥ ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषमिति-दक्षिणांसे। ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषमिति-वामांसे ॥ ॐ तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषमिति-हृदि ॥

ततो ब्रह्मचारी हस्तद्वयेन कर्णद्वयं गृहीत्वा-

अमुकगोत्रोऽमुकप्रवरोमुकशाख्यमुकवेदाऽध्याय्यमुकशर्म्माऽहं, भो अग्ने! त्वामभिवादये ॥ वारत्रयमिति कृत्वा, भो गुरो! त्वामभिवादये ॥ "आयुष्मान् भव" सौम्येति-गुरुर्ब्रूयात् ॥

ततो भिक्षाचरणम् ॥ तत्र श्लोकैरुपदिशत्याचार्यस्तम्-

"उत्तिष्ठ प्रीतोऽस्मिचिराय जीव, वृत्तः

स कालस्तव भिक्षणस्य ।। भिक्षा विधेया-ऽभिहिता विधेया, मातुः पुरोपेत्य तत-क्रमेण" ।।१।। "यद्यद्ध वेद-शाश्वतलोक-वृद्धिस्तत्तद् विधेयं नियतं विधेयम् ।। अथै-वृथाऽऽलापकथाप्रथाभिर्न यापनीयः समयो ह्यमूल्यः" ।।२।।

आचार्य्यं, इत्युपदिश्य, ब्रह्मचारी भक्ष्यभोज्यद्रव्यसहितं भिक्षापात्रञ्चावलम्ब्यनवपीतपटनिर्मितझोलिकां दक्षिण-स्कन्धे निधाय, हस्ते दण्डमवगृह्य, भिक्षार्थं गच्छेत् ।। तत्र प्रथमं मातरं भिक्षेत् ।।

ॐ भवति ! भिक्षां देहि, मातः,–इति ब्राह्मणः । भिक्षां भवति देहि, मातः,–इति क्षत्रियः ।। भिक्षां देहि, भवतीति–वैश्यः ।। अन्यत्र तु–'भवन् भिक्षांदेहीति' ।।

भिक्षादानकाले–ॐ स्वस्तीत्युक्त्वा भिक्षां प्रतिगृह्य गुरवे [आचार्याय] निवेदयेत् तथैव भिक्षान्तरं*याचेत ।। भो

मनु-मातरं वा स्वसारं वा, मातुर्वा भगिनीन्निजाम् । भिक्षेत भिक्षां प्रथमं, याचेनन्नावमानयेदिति ।। तदुक्तं याज्ञवल्केन गुरुञ्चैवा-प्युपासीत् स्वाध्यायाऽर्थं समाहितः । आहूतश्चाप्यधीयीतं, लब्धं चास्मै निवेदयत् ।। आदिमध्यावसानेषु, भवच्छब्दोपलक्षिता । ब्राह्मणक्षत्रिय-विशां, भैक्षचर्या यथाक्रमम् ।। सूत्रञ्च-भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षेत, भव-न्मध्यां राजन्यो, भवदन्त्यां वैश्यः तिस्रोऽप्रत्मायायिन्यः षट्वा दश-

गुरो ! इयं भिक्षाऽद्य मया लब्धेति निवेद्य, अथाहःशेषं वाग्यतस्तिष्ठेदासीनो वा ॥ ततो गुरुर्ब्रह्मचारिणे ब्रह्मचर्य-नियमान् श्रावयति—

'भूमौ शयनम्, क्षारलवणादि-निवृत्तिः ॥ दण्डधारणम् । अग्निपरिचरणम् । (अरण्यात् स्वयं शीर्णाः समिध आनीय सायं प्रातः, सन्ध्योपासनपूर्वकं परिसमूहनादि त्र्यायुष-करणान्तं यथोक्तकर्म प्रतिदिनं कुर्यात्) गुरुशुश्रूषाभिक्षाचर्या सायं प्रातर्भोजनार्थं भोजनसान्निध्ये वारद्वयं वाऽनिन्द्य कर्मनिष्ठवेदाध्यायिब्राह्मणगृहे गुर्वाज्ञया भैक्ष्यं याचित्वा, भोजनविधिना भुञ्जीत । मधु-क्षौद्रं मांसञ्च कदापि नाश्नीयात्। नद्यादि-जलाशये प्रविश्य स्नानं नाचरेत्, किन्तूद्-धृतोदकेन स्नायात् । खट्वादावुपर्यासनं

अपरिमिता वा मातरं प्रथमाम् ॥ इति विधिः ॥ कार्या भिक्षा सदाधार्यं, कौपीनं कटिसूत्रकम् । कौपीनमहतंधार्यं,दण्डं वा वस्त्रपार्श्वयुक् ॥१॥ यज्ञोपवीतमजिनम् मौञ्जीदंण्डञ्च धारयेत् ॥ नष्टे भ्रष्टे नवं मन्त्रात् धृत्वा भ्रष्टं जले क्षिपेत् ॥२॥ एवं स्नातकस्य कीर्तिर्भवति-त्रयः स्नातकाः-विद्यास्नातकः- व्रतस्नातकः विद्याव्रतस्नातकः-इति ।

वर्जयेत्। स्त्रीगमनं नग्न—स्त्री निरीक्षणं
स्त्रीणांमध्येऽवस्थानं च वर्जयेत् ।। वृक्षारो
हणम्, विषमभूमिलंघनम् लघुशंकाशौच
काले दक्षिणकर्णे यज्ञोपवीतधारणम् ॥

इत्युपनयनकालादारभ्य—समावर्तनावधि, ब्रह्मचारि
कृत्यं धर्मशास्त्रतो निर्दर्शितम् ।। तदेव श्लोकैरुपदिशेत्--

'न खादनीयो मधुरोऽप्यखाद्यो, न वर्ज
नीयोऽपि स्ववीर्य्यविन्दुः । चित्ते परस्त्रीवि
मुखप्रवृत्तिर्यथा भवेत्साऽपि तथा यथा यत
स्व ॥१॥ शारीरिकं मानसिकञ्च वीर्यं
मत्यर्थमिष्टं फलसाधनाय ।। इत्यादरादे
स वेदवेदं, तं ब्रह्मचर्य्याह्वयमाह योग
॥२॥ संसर्गजातेन कुचेष्टितेन, जायेत संक्रा
न्तमलोमणिश्च। हेयः कुसङ्गोत इतीह यत्ना
दुदारसंस्काररसाऽऽश्रयेण ॥३॥ धर्मच्यु
तानां निजकुप्रथानां, प्रचारमालोच्य न,सत
रुत्वम्। वेदोपवेदोद्धरसुस्वभावो, विशिष्ट
शिष्यो भव मे निदेशः ॥४॥ यया भवेच्छा

श्वतधर्मवृद्धिस्तथा समृद्धिः खलु सैव शिक्षा।
वर्णस्व भावान्परिणामयन्ती, नान्या मता
भारतवैभवाय ॥५॥

इति विज्ञ आचार्यः श्लोकार्थान्नृभाषया माणवकं श्रावयेत् ॥ तत आगतब्राह्मणा अपि, 'ब्रह्मवर्चस्वी भवे'-त्याशीर्वदेयुः ॥ तत-आचार्यादीन् गन्धादिभिः सम्पूज्य, तेभ्यो दक्षिणाञ्च, दत्त्वा ब्राह्मणभोजन-सङ्कल्पः- भूयसी दक्षिणा-सङ्कल्पश्च कार्यः । तैः प्रदत्ता आशिषो गृहीत्वा, यथासुखं विरमेत् ॥

❀ अथ वेदारम्भविधिः ❀

पारम्पर्याऽगतो येषां, वेदः सपरिबृंहणः ।
यच्छाखाकर्म कुर्वीत, तच्छाखाऽध्ययनं तथा
॥ १ ॥ अधीत्यशाखामात्मीयामन्यशाखां
ततः परम् । स्वशाखां यः परित्यज्य(अन्पामधीते) शाखारण्डः स उच्यते ।२॥ उपनीय गुरुः शिष्यं, महाव्याहृति पूर्वकम् वेदमध्यापयेदेनं, शौचाऽऽचारांश्च शिक्षयेत्

यदि आचार्य एक ही दिन में-[१] यज्ञोपवीत (जनेऊ धारण), [२] वेदारम्भ (चारों वेदों का प्रारम्भ) [३] समा-

वर्तन (गृहस्थाश्रम–प्रवेशः) इन तीनों वेदियों का कृत्य करा चाहें, तो नवग्रहादि पूजन पृथक न होगा। अन्यथा पृथक पूजन करना होगा। तथा तीनों हवन वेदियों पर कुशक ण्डिका तो पृथक २ होगी। यज्ञोपवीत संस्कार के अनन्त वेदारम्भ कर्म्म किया जाता है ॥ तद्यथा ॥

तत्राचार्यो वेदाऽऽरम्भवेदीसमीपमागत्योपविश्याऽऽचम्य प्राणानायम्य, गणपत्यादिकं नमस्कृत्य, पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निस्थापनं विधाय, तत्राऽर्घं पात्रं संस्थाप्य, ब्रह्मोपवेशनादि-पर्युक्षणान्तं, कर्मकृत्वा, सङ्कल्पं कुर्यात् ॥

ॐ अद्येहेत्यादि अमुकराशेरस्य बटोः श्रौतस्मार्त्त कर्म्माधिकार सम्पादकब्रह्मगायत्रीमन्त्रदृढीकरणार्थं, यजुर्वेदादिक्रमेण वेदारम्भं करिष्ये ॥ इति सङ्कल्प्य ॥ प्रतिज्ञाय ब्रह्माणं सम्पूज्य वृणुयात् ॥ ॐ अद्येहेत्यादि कर्तव्यवेदारम्भाङ्गीभूतहवनकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म कर्तुमनेन वरणद्रव्येणाऽमुकदैवतेनाऽमुकशर्माणं ब्राह्मणं ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे। ततः । स्रुवेण मध्ये दीर्घाकाराहुतीरित्यन्तं विधाय, देवताभिध्यानं

करोति ॥ ॐ अद्येह—अस्य बटोः वेदाऽऽर-म्भकर्मणाऽहं यक्ष्ये ॥ तत्र—प्रजापतिमिन्द्र-मग्निम्, सोममन्तरिक्षम्, वायुम्, ब्रह्मा-णम्, छन्दांसि, पृथिवीमग्निम्। ब्रह्माणम्, छन्दांसि। दिवम्, सूर्य्यम्, ब्रह्माणम् छन्दां-सि, दिशश्चन्द्रमसम्। ब्रह्माणम् छन्दांसि। प्रजापतिम् देवान्, ऋषीन्, श्रद्धाम्, मेधाम्, सदसस्पतिमनुमतिमग्निम् वायुम्, सूर्य्यम्, अग्नीवरुणावग्निवरुणावग्निम्, वरुणम्, स-वितारम्, विष्णुम् विश्वान्, देवान् मरुतः, स्वर्क्कान्, वरुणमदितिम्, प्रजापतिम्, स्वि-ष्टकृतञ्चाज्येनाऽहं यक्ष्ये ॥ इदमाज्यं तत्त-द्देवताभ्यो मया परित्यक्तं, यथादैवतमस्तु॥ (मनसा) प्रजापतिन्ध्यात्वा, आघारावा—ज्यभागौ हुत्वा, ॐ एतन्ते इत्यादि ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, हरिनामाऽग्ने सुप्रतिष्ठितो भव ॥ अथाऽग्नेः पूजनम्। ॐ अद्य हेत्यादि-अमुकोऽहं अमुकराशेरस्य बटोः वेदाऽऽरम्भ-

होमकर्मणि हरिनामाग्नेः पूजनं करिष्ये।

ॐ तादेवाग्निरितिमन्त्रेण–ध्यानाऽऽवाहनासनपाद्यादि-
नीराजनान्तं, सम्पूज्य ॥ दक्षिणं जान्वाच्य, ब्रह्मणाऽन्वा-
ब्धो [मनसा] प्रजापतिं ध्यात्वा जुहुयात् ॥

ॐ प्रजापतये–स्वाहा, इदं प्रजापतये ॥
ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय ॥ ॐ अग्नये
स्वाहा,इदमग्नये ॥ ॐ सोमाय–स्वाहा
इदं सोमाय ॥ अथ यजुर्वेदाहुतयः ॥ ॐ
अन्तरिक्षाय-स्वाहा, इदमन्तरिक्षाय ॥ ॐ
वायवे–स्वाहा, इदं–वायवे ॥ ॐ ब्रह्मणे-
स्वाहा, इदं ब्रह्मणे ॥ ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा
इदं छन्दोभ्यः ॥ अथ ऋग्वेदाहुतयः॥ ॐ
पृथिव्यै स्वाहा, इदं पृथिव्यै न मम ॥ ॐ
अग्नये स्वाहा, इदमग्नये ॥ ॐ ब्रह्मणे स्वा-
हा, इदं ब्रह्मणे ॥ ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं
छन्दोभ्यो न मम ॥ अथ सामवेदाऽहुतयः
ॐ दिवः स्वाहा, इदं दिवे न मम ॥ ॐ
सूर्याय स्वाहा, इदं सूर्याय न मम ॥ ॐ ब्र

णे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम ।। ओ३म् छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यो न मम ।। अथाऽथर्ववेदाऽऽहुतयः ।। ओ३म् दिग्भ्यः स्वाहा, इदं दिग्भ्यो न मम ।। ओ३म् चन्द्रमसे स्वाहा, इदं चन्द्रमसे न मम ।।ओ३म् ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम ।।ओ३म् छन्दोभ्यः स्वाहाः, इदं छन्दोभ्यो न मम ।। ओ३म् प्रजापतये—स्वाहा, इदं—प्रजापतये ।। ओ३म् देवेभ्यः-स्वाहा, इदं-देवेभ्यः ।। ओ३म् ऋषिभ्यः—स्वाहा, इदं —ऋषिभ्यः ।। ओ३म् श्रद्धायै—स्वाहा, इदं —श्रद्धायै ।। ओ३म् मेधायै—स्वाहा, इदं -मेधायै ।। ओ३म् सदसस्पतये—स्वाहा,इदं-सदसस्पतये ।। ओ३म् अनुमतये—स्वाहा, इदमनुमतये ।। ततो भूरादिनवाहुतिहोमं स्विष्टकृतञ्च हुत्वा दिक्पालेभ्यो बलिं दत्वा उत्थाय घृतपूर्णेन स्रुवेण पूर्णाहुतिं दद्यात् ।। ओ३म् मूर्द्धानन्दिवो ऽअरतिम्पृथिव्व्या व्वैश्श्वानरमृतऽआजातमग्निम् कवि ᳪ सम्राजमतिथिञ्जनानामासन्ना पात्र-

ञ्जनयन्त देवाः स्वाहा ॥

तत्पश्चाद्वसोर्द्धारा होमः ॥ संस्रवप्राशनम् ॥ ततस्त्रि राचामेत् ॥ पवित्राभ्यां मार्जनम् ॥ पवित्रप्रतिपत्तिः ॥ ब्रह्मणे पूर्णपात्रदान सङ्कल्पः ॥

ॐ अद्येहाऽमुकोऽहं अमुकराशेरस्य पुत्र स्यवेदारम्भाङ्गहोमकर्मणः साङ्गफलप्राप्त्यर्थं अपूर्णपूरणार्थम्, इदं पूर्णपात्रं ससुवर्णं ब्रह्मन्! तुभ्यं सम्प्रददे ॥ इति दद्यात् ॥ ब्रह्मा च-ॐ अक्रन् कर्मेति मन्त्राशिषं दद्यात् ॥ ततो ब्रह्म ग्रन्थिविमोकः अग्नेः पश्चात् प्रणीताविमोकः॥ ॐ आपः शिवाः शिवतमा शान्ताः शान्ततमास्तांस्ते कृण्वन्तु भेषजम् ।

इत्युपयमनकुशैर्मार्जनम् ॥ ततः परिस्तरणक्रमेण बर्हि रुत्थाप्य घृतेनाभिघार्य हस्तेनैव ॥

ॐ देवा गातु० इति मन्त्रेण जुहूयात् ॥ ततः काशीगमनम् ॥ अथ वेदारम्भकर्म ॥ यथा ॥ अद्येहामुकोहम् अमुकशर्मणो वेदा

रम्भकर्म्मणः पूर्वाङ्गत्वेन गणपत्यादि-देवानां स्थापनावाहनपूजनानि च करिष्ये ॥ ताम्र-स्थाल्यादौ दध्यक्षतान् गृहीत्वा उत्तरवृद्ध-चास्थापयेत् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः गणेश ! इहागच्छेह तिष्ठ,पूजार्थं त्वामावाहयामि ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, विष्णो ! इहागच्छ० ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, सरस्वति ! इहा० ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, लक्ष्मि ! इहा० । ॐ भूर्भुवः स्वः स्वविद्यासूत्रकारकात्यायन ! इहा० । ॐ एत-न्त'-इति-प्रतिष्ठाप्य, नाममन्त्रेण ध्यानादि-नीराजनान्तं-सम्पूज्य,प्रणम्य, वेदारम्भकारं गुरुं वृणुयात् । वरणद्रव्यं पाद्यादिभिःसम्पूज्य ब्राह्मणञ्च सम्पूजयेत् । ॐअद्येत्यादि । मम ब्र-ह्मगायत्रीमन्त्रदृढीकरणार्थं पञ्चयज्ञतत्त्व ज्ञानकामनया शरीरशुद्धिद्वारा-ऐहिकामुष्मि-कफलसम्पादक वेदारम्भकर्मणि,एतेनवासाङ्गु-लीयकासनमूल्योपकल्पितेनाऽमुकद्रव्येणाऽमु-कदैवतेनाऽमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं

वेदारम्भगुरुत्वेन त्वामहं वृणे ॥ इति-वृ
त्वा ॥ "वृतोस्मीति"-गुरुः ॥ ततः पूर्वाभि
मुखोपविष्टाय माणवकाय गुरुर्वेदारम्भं कार-
येत् ॥ ब्रह्मचारी पवित्रपाणिनाचम्य, प्राणा
यामं विधाय ॥ ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य
ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन
तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ इति गुरुं प्रणम्य, वेदा
रम्भं गुरुद्वारा सप्रणवं कारयेत् ॥ ॐ इषे
त्वादि-खम्ब्रह्मान्तस्य, माध्यन्दिनीयकस्य
वाजसनेयकस्य, यजुर्वेदाम्नायस्य
विवस्वान् ऋषिर्गायत्र्यादीनि सर्वाणिच्छ
न्दांसि, सर्वाणि यजूंषिसामानि प्रतिलि
ङ्गोक्ता-देवता, यजुर्वेदारम्भे विनि
योगः ॥ ॐ हरिः ॐ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः
गायत्रीमन्त्रपठन पूर्वकं वेदारम्भं कुर्यात् ॥
ॐ इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः
सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्म्मणऽआ
प्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरन

मोवा ऽ अयक्ष्मा माबस्तेनऽईशतमाघश ᳪ सोद्ध्रुवा ऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्य जमानस्य पशून् पाहि ॥ इति पठित्वा ॥ ॐ अद्येत्यादि० अमुकोऽहं, कृतस्य यजुर्वेदारम्भकर्म्मणः साङ्गफलावाप्तये, इदं द्रव्यममुकदैवतममुकगोत्रायाऽमुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय गुरवे तुभ्यमहं सम्प्रददे ॥ एवं सर्वत्रोह्यम् ॥१॥ ततः ऋग्वेदादिमन्त्रस्य मधुच्छन्दा-ऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता, स्वाध्याये-विनियोगः ॥ ॐ अग्निमीले पुरोहितँ य्यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥ इति ऋग्वेदः ॥२॥ अथ सामवेदादिमन्त्रस्य गौतमऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता, स्वाध्याये विनियोगः ॥

२ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३१
ॐ अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
१ २ ३ १ २
निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ इति सामवेदः ॥३॥ शं नो देवीरिति दध्यङ्ङाथर्व्वण-

ऋषिर्गायत्री—छन्दोऽग्निर्द्दैवता, स्वाध्याये विनियोगः ॥ ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय ऽआपो भवन्तु पीतये । शँय्योरभिस्रवन्तु नः । इत्यथर्व्ववेदः ॥४॥ पुनः पूर्ववत् महाव्याहृतिप्रणवपूर्वकां गायत्रीं त्रिरुक्त्वा । 'ओ३म् विरामोस्तु'—इति वदन्तं गुरुं शिष्यः पादोपसंग्रहपूर्वकं प्रणम्य, विरमेत् ॥ अधीत्यनिराकरणमन्त्रान् पठेदिति ॥ ओ३म् अथातो ऽधीत्याधीत्यानिराकरणम् । प्रतीकं त्विचक्षणम् । जिह्वा मे मधु यद्वचः, कर्णाभ्यां भूरि शुश्रुवे । मा त्व ँ हार्षीच्छ्रुतम्मयि, ब्रह्मणः प्रवचनमसि, ब्रह्मणः प्रतिष्ठानमसि, ब्रह्मकोशोऽसि, सनिरसि, शान्तिरस्य निराकरणमसि, ब्रह्मकोश मे विशः त्वाचा त्वापि दधामि, त्वाचा त्वापि दधामि स्वरकरणकण्ठचौरसदन्त्योष्ठ्यग्रहणधारणोच्चारण शक्तिर्म्मयि भवतु । आप्यायन्तु मे ऽङ्गानि, त्वाक्प्राण

श्चक्षुः श्रोत्रं यशो बलम्। यन्मे श्रुतमधीतं तन्मे मनसि तिष्ठतु तिष्ठतु॥ अत्राऽवसरे गुरुरुपदिशति तम्॥ श्लोकैः-हे शिष्य! वेदानवधारय त्वं, तदुक्तकर्माण्यपि साधय त्वम्॥ अज्ञानयोगेन विजृम्भमाणाञ्जातोयदोषान् परिमार्जय स्वान् ॥१॥ विष्णुः शिवो वा परदैवतं वा, फलाविशेषेऽपियथाभिलाषम्। तद्ब्रह्मदृष्ट्या समुपासनीयं, गलत्प्रमादं परमादरेण ॥२॥ चार्वाक-चार्वीक्रमकर्तनासु, वैतण्डिकानां मतिमर्दनासु। यथा क्रमेत प्रतिभा वटूनां, तथा विधा सम्प्रति साधनीया ॥३॥ आयोज्यतां सत्पथरञ्जनाय, मलीमसानां मतभञ्जनाय॥ विशेषता शिष्यपरम्परासौ, हृष्टासु विद्यासु कलोत्तरासु ॥४॥ उत्पद्यतां नाम विलीयतां वा, नवा नवा जातिरहो तया किम्। न यत्र पारस्परिको प्रतीतिः, क्रिया हि सा जातिरनर्गला किम्

॥ ५ ॥ अथाचारात्—अस्मिन्नवसरे ऽपि बटुं पाठार्थं वाराणसीं प्रति प्रस्थापयन्ति। पुनः कालान्तरं मातुलस्तमानयति ॥ तत्र वेदानां ग्रहणे सूत्रम् ॥ अष्टचत्वारिंश द्वर्षाणि वेदब्रह्मचर्य्यञ्चरेत् ॥ द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदं यावद्ग्रहणं वेति । अध्ययननियमा आचार्येणाहूतोऽधीयीत शयानं चेदासीनः । आसीनञ्चेत्तिष्ठन् । तिष्ठन्तं चेदभिक्रामन्, अभिक्रामन्तं चेदभिधावन् । गुरुमेवं वर्तमानो ब्रह्मचारी ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ इति ॥ अथ-दक्षिणासङ्कल्पः ॥ ॐ अद्येहाऽमुकोऽहममुकशर्मणः बटोः वेदारम्भहोमकर्मणः वेदारम्भकर्मणश्च साङ्ग

वेदारम्भ—नियम—

'गुर्विज्ञो विशेषतः'-इस-वचन से वेदारम्भ में गुरु वेदज्ञ होना चाहिये ॥१॥ 'वेदारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा" ॥२॥ "ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा" ॥३॥ प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम् ; सावित्रीं चानुपूर्वेण ततो वेदान् समीरयेत् ॥४॥ हस्तहीनन्तु योऽधीते, स्वरवर्ण विवर्जितम् । ऋग्यजुसामभिर्दग्धो, वियोनिमधिगच्छति ॥५॥

तासिद्धयर्थं सादगुण्यार्थञ्च इदं सुवर्ण-
मग्निदैवतं वररूपेणाचार्याय तुभ्यं सम्प्र-
ददे ॥ इति–दद्यात् ॥ आचार्यश्चाशिषं
दद्यात् ॥ ततस्त्र्यायुषकरणम् ॥ त्र्यायुष-
मिति-नारायणऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता,
त्र्यायुषकरणे–विनियोगः ॥ तत उपविश्य
स्रुवेण भस्मानीयाङ्गेषु विलेपयेत् । त्र्या-
युषं जमदग्नेः इति ललाटे ॥ पुनः पूर्ववत् ॥

❀ अथ समावर्तन विधिः ❀

वेदानधीत्य वेदो वा, वेदं वाऽपि यथा-
क्रमम् । अविप्लुतब्रह्मचर्य्यो गृहस्थाऽश्रम-
माविशेत् ॥१॥

तत्र कृतनित्यक्रियः सभार्य्यं आचार्यो ब्रह्मचारिणा सह शुभासने चोपविश्याऽऽचम्य, प्राणानायम्य, गणेशादि पञ्चाङ्गदेवताः सम्पूज्य ॥ सङ्कल्पं कुर्य्यात्–

ॐ अद्येत्यादि० अमुकोऽहममुकराशेरस्य
वटोःस्नातकत्वसिद्धिप्राप्तये समावर्तनकर्म्म
करिष्ये ॥ ततः ॥ 'भो आचार्य ! अहं

स्नास्यामीति'—ब्रह्मचारी गुरोरनुज्ञां प्रार्थ-
येत् ॥ स्नाहीत्याचार्येणोक्ते, ब्रह्मचारी
गुरोः पादौ स्पृशेत् ॥ततः परिश्रितप्रदेशे
आचार्य सन्निहितदक्षिणदिश्युपविष्टे ब्रह्म-
चारिणि आचार्यः कुशैर्हस्तमात्रां भूमिं परि-
समुह्य, कुशानैशान्यां परित्यज्य, गोमयो-
दकेनोपलिप्य, स्रुवमूलेनोत्तरोत्तरक्रमेण
त्रिरुल्लिख्य, अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मृदमु-
ल्लेखनक्रमेणोद्धृत्य, पुनर्जलेनाऽभ्युक्ष्य,
कांस्यपात्रेण सूर्यनामानमग्निमानीय,
सम्मुखं निदध्यात् ॥ ततः ॥ पुष्पचन्दन-
ताम्बूलवासांस्यादाय ॥ ओमद्यामुकस्य
ब्रह्मचारिणः कर्तव्यसमावर्तनहोमकर्मणि
कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म कर्तुममुकगो-
त्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनता-
म्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे ॥ इति
ब्रह्माणं वृणुयात् ॥ ॐ—'वृतोऽस्मीति'-
प्रतिवचनम् ॥ ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धामा-

सनं निधाय, तदुपरि प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य, ब्रह्माणमग्निप्रदक्षिणं कारयित्वाऽस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय। 'भवानीति'—तेनोक्ते तदुपरि ब्रह्माणमुदङ्मुखमुपवेशयेत्॥ ततः॥ प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा, जलेन परिपूर्य, कुशैराच्छाद्य, ब्रह्मणो मुखमवलोक्याऽग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात्॥ ततः॥ कुशपरिस्तरणम्॥ बर्हिषश्चचतुर्थभागमादायाग्नेयादीशानान्तम्। ब्रह्मणोऽग्निपर्य्यन्तम्॥ नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तमग्नितः प्रणीतापर्यन्तम्॥ ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयम्॥ पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तगर्भं कुशपत्रद्वयम्॥ प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली॥ सम्मार्जनकुशाः॥ उपयमनकुशाः॥ समिधस्तिस्रः॥ स्रुवम्॥ आज्यम्॥ पूर्णपात्रम्। विशेषोपकल्पनीयानि। समिन्धनकाष्ठानि। समिधस्तिस्रः॥ पर्युक्षणा-

र्थमुदकम् ॥ हरितकुशः ॥ अष्टावुदकुम्भाः ॥ धौतवस्त्रम् ॥ औदुम्बरम् ॥ द्वादशाङ्गुलं दन्तधावनकाष्ठं ब्राह्मणस्य ॥ दशाङ्गुलं क्षत्रियस्याऽष्टाङ्गुलं वैश्यस्य च ॥ दधि- तिलाश्च ॥ नापितः । स्नानार्थमुदकम् ॥ उद्वर्तनद्रव्यम् ॥ चन्दनमहते वाससी ॥ यज्ञोपवीते ॥ पुष्पाणि ॥ उष्णीषम् ॥ कर्णा- लङ्कारौ ॥ अञ्जनमादर्शः ॥ नूतनं छत्र- मुपानहौ च, नव्यो वैणवो दण्डः ॥ पवित्र- च्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशिक्रमेणासादनी- यानि ॥ इति पात्रासादनम् ॥ ततः ॥ पवि- त्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्त्वा, सपवित्रक- रेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षि- प्याऽनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां गृहीतपवित्राभ्यां तज्जलेनकिञ्चित् त्रिरुत्क्षिप्य, प्रणीतोद- केन प्रोक्षणीपात्रं त्रिरभिषिच्य, प्रोक्षणी- जलेनासादितसर्ववस्तुसेचनम् कृत्वाऽग्नि- प्रणीतापात्रयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निद-

ध्यात् ॥ आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापोऽधिश्र-
यणम् ॥ ततः शुष्ककुशान् प्रज्वाल्याज्यो-
परिप्रदक्षिणं भ्रामयित्वा, वह्नौ तत्प्रक्षिप्य,
स्रुवं त्रिः प्रतप्य, सम्मार्जनकुशानामग्रैर-
न्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं सम्मृज्य, प्रणीतो-
दकेनाऽभ्युक्ष्य, पुनस्त्रिःप्रतप्याऽग्नेर्दक्षिण-
तो निदध्यात् ॥ तत-आज्यमग्नेरवतार्य,
त्रिःप्रोक्षणीवदुत्पूयाऽऽवेक्ष्य, सत्यपद्रव्ये
तन्निरस्य, पुनः प्रोक्षण्युत्पवनम् ॥ तत
उत्थायोपयमनकुशान् वामहस्ते कृत्वा,
प्रजापतिं (मनसा) ध्यात्वा, (तूष्णीं) घृता-
क्तास्तिस्रः समिधोऽग्नौ प्रक्षिपेत् ॥ पुनरु-
पविश्य, सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमे-
णाग्निमुदक्संस्थं पर्युक्ष्य, प्रणीतापात्रे पवित्रे
निधाय, प्रोक्षणीपात्रं विसर्जयेत् ॥ ततः
पातितदक्षिणजानुर्ब्रह्मणाऽन्वारब्धः, समि-
द्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाऽऽज्याहुतीर्जुहुयात् ॥
तत्र तत्तदाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशे-

षस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ।। ॐ प्राजापत्या-
दिचतुर्णां-मन्त्राणां प्रजापतिऋर्षिस्त्रिष्टु-
पछन्दः प्रजापतीन्द्राग्नीसोमाः देवता,
आज्यहोमे—विनियोगः ।। अग्नेरुत्तर प्रदेशे,
पूर्वाघारमाघारयेत् (मनसा)-ॐप्रजापतये
स्वाहा,इदं प्रजापतये न मम ।। ततोऽग्नेर्द-
क्षिण प्रदेशे, उत्तराघारमाघारयेत्
ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम ।
इत्याघारौ ।। ततोऽग्नेरुत्तरार्द्ध-पूर्वार्धे-ॐ
अग्नये-स्वाहा,इदमग्नये न मम ।। ततोऽग्ने-
र्दक्षिणार्द्ध-पूर्वार्धे—ॐ सोमाय स्वाहा,
इदं सोमाय न मम ।। इत्याज्य भागौ ।
*ॐअन्तरिक्षाय-स्वाहा, इदमन्तरिक्षाय ।
ॐ वायवे-स्वाहा, इदं वायवे ।। ॐ ब्रह्मणे
स्वाहा,इदं ब्रह्मणे ।। ॐ छन्दोभ्यः-स्वाहा,
इदं छन्दोभ्यः ।। ×ॐ पृथिव्यै-स्वाहा,इदं
पृथिव्यै ।। ॐ अग्नये-स्वाहा, इदमग्नये ।

* यजुराहुतयः, अन्वारब्धं विना । × ऋगाहुतयः ।।

ॐ ब्रह्मणे-स्वाहा इदं ब्रह्मणे ॥ ॐ छन्दो-भ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यः ॥ ×ॐ दिवे-स्वाहा, इदं दिवे ॥ ॐ सूर्य्याय स्वाहा, इदं सूर्य्याय ॥ ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे ॥ ॐ छन्दोभ्यः-स्वाहा, इदं छन्दोभ्यः ॥ +ॐ दिग्भ्यःस्वाहा, इदं दिग्भ्यः॥ ॐ चन्द्रमसे-स्वाहा, इदञ्चन्द्रमसे ॥ॐब्रह्मणे-स्वाहा, इदं ब्रह्मणे ॥ ॐ छंदोभ्यः-स्वाहा, इदञ्छन्दोभ्यः ॥ *ॐ प्रजापतये-स्वाहा, इदं प्रजापतये ॥ ॐ देवेभ्यः-स्वाहा, इदं देवेभ्यः ॥ ॐ ऋषिभ्यः-स्वाहा, इदं ऋषि-भ्यः ॥ ॐश्रद्धायै स्वाहा, इदं श्रद्धायै ॥ॐ मेधायै-स्वाहा, इदं मेधायै ॥ ॐ सदसस्प-तये स्वाहाः, इदं सदसस्पतये ॥ ॐ अनु-मतये-स्वाहा, इदं मनुमतये ॥ व्याहृतित्र-यस्य प्रजापतिऋर्षिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छ-न्दांसि, अग्निवायुसूर्य्या-देवताः, समावर्त्तन-

× समाहुतयः ॥ + अथर्वाहुतय ॥ * सामान्याहुतयः ॥

होमे विनियोगः ।। ॐ भूः-स्वाहा, इदमग्न
ये, न मम ।। ॐ भुवः-स्वाहा, इदं वायवे
न मम ।। ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्य्याय,
मम ।। एता महाव्याहृतयः । ॐ त्वन्नो
अग्ने० स त्वन्नोऽग्ने० इति,द्वयोर्मन्त्रयो
र्वामदेवर्षिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्नी वरुणौ देवते
प्रायश्चित्तहोमे–विनियोगः ।। ॐत्वन्नो
अग्ने व्वरुणस्य व्विद्वान्देवस्यहेडोऽअवया
सिसीष्ठाः । यजिष्ठो व्वह्नितमः । शोशुचा
नो व्विश्वा द्वेषाᳬसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा
इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम ।। ॐसत्वन्नोऽ
ग्ने बमो भवोतीनेदिष्ठोऽअस्याऽउष
व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो व्वरुणᳬरराणो व्वी
मृडीकᳬसुहवो नऽ एधि–स्वाहा।।इदमग्नी
वरुणाभ्याम् ।। अयाश्चाग्ने०-इति-वि
ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता, प्रायश्चि
होमे-विनियोगः।।ॐअयाश्चाग्नेस्यनभि
स्तिपाश्च सत्त्यमित्त्वमयाऽअसि अया

यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषज्ञᳬ स्वाहा-इद-
मग्नये ॥ ॐ ये ते शतमितिशुनःशेप-ऋषि-
स्त्रिष्टुप्छन्दो, लिङ्गोक्तादेवताः, प्रायश्चित्त-
होमे-विनियोगः ॥ ॐ ये ते शतं व्वरुण ये
सहस्रं यज्ञियाः पाशा व्वितता महान्तः ।
तेभिर्नोऽअद्य सवितोत व्विष्णुर्व्विश्वे
मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्काः-स्वाहा, इदं वरु-
णाय, सवित्रे, विष्णवे, विश्वेभ्यो देवेभ्यो,
मरुद्भ्यः, स्वर्केभ्यश्च न मम ॥ ॐ उदुत्तम-
मिति–शुनःशेप ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्दे-
वता, प्रायश्चित्तहोमे-विनियोगः ॥ ॐ
उदुत्तमं व्वरुणपाशमस्म्मदबाधमं व्विम–
द्ध्यम ᳬ श्रथाय । अथा व्वयमादित्यव्रते
तवानागसोऽअदितये स्याम-स्वाहा ॥ इदं
वरुणायादित्यायादितये च न मम ॥ ॐप्रजा-
पतये-स्वाहा, इदं प्रजापतये ॥ इति ॥
(मनसा)॥ॐअग्नये स्विष्टकृते-स्वाहा, इद-
मग्नये स्विष्टकृते ॥ संस्रवं प्राश्याऽऽचम्य,

पवित्राभ्यां मार्जनम्। पवित्र प्रतिपत्तिः पूर्णपात्रं सम्पूज्य ॥ ॐ अद्येत्यादि०-अमुकस्य मम समावर्तनाङ्गहवनकर्मणि कृता-कृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म्मणः साङ्गत्वसिद्ध्यर्थं प्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रंसदक्षिणां प्रजापति-दैवतममुकगोत्रायाऽमुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे ॥'ॐ स्वस्तीति'-प्रति-वचनम् ततो ब्रह्मणो ग्रन्थिविमोकः ॥ ॐ सुमित्रिया नऽ इति मन्त्रस्य दध्यङ्ङाथर्व-णऋषिरापो देवताः, शिरः प्रोक्षणमार्जने-विनियोगः ॥ ॐ सुमित्रिया नऽआपऽ ओष-धयः सन्तु-इति पवित्राभ्यां प्रणीताजलेन शिरः सम्मृज्य, ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥ स्व-पुरतः प्रणीतापात्रं न्युब्जी कुर्यात् ॥ उप-यमन कुशैर्मार्जनं कुर्यात्। ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताःशान्ततमास्तांस्ते कृण्वन्तु भेषजम्।।ॐदेवागातु-इत्यत्रिऋषिरुष्णिक्

छन्दो, वनस्पतिर्देवता, बर्हिर्होमे-विनियोगः ॥ ॐ देवा गातु विदो गातुं वित्त्वा गातु मित मनसस्पत ऽइदं देवयज्ञꣳस्वाहा त्वातेधाः ॥ इति–बर्हिर्होमः ॥ अथ सुश्रुवाहोमः ॥ आचम्य, प्राणानायम्य, पाणिनाग्नि परि–समूहयति ॥ ब्रह्मचारी स्व दक्षिणहस्तेनेन्धनमादाय, 'ॐ अग्ने सुश्रवः'-इत्यादीनां पञ्च-मन्त्राणां ब्रह्माऋषिर्यजूँषि छन्दांसि, अग्निर्देवता, अग्निसमिन्धने-विनियोगः ॥ (ब्रह्मचारी अग्नेः पश्चादुपविश्य) ॥ ॐ अग्नेसुश्रवः सुश्रवसं मां कुरु ॥ ॐ यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा ऽअसि ॥ ॐ एवं माꣳ सुश्रवः सौश्रवसं कुरु ॥ ॐ यथा त्वमग्नेदेवानां यज्ञस्य निधिपाऽअसि ॥ ॐ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥

ब्रह्मचारी दक्षिणहस्तेन जलमादाय, ईशानादारभ्येशानपर्यन्तं प्रदक्षिण क्रमेण भ्रामयेत् ॥ ततोऽग्नि जलेन प्रद-

क्षिणं पर्य्युक्ष्य, उत्थाय, घृताक्तां प्रादेशमात्रामेकां पला समिधमादाय जुहुयात् ॥

तत्र मन्त्रः ॥ ॐअग्नय-इति प्रजापतिर्ऋषिराकृतिश्छन्दः, समिद्देवता समिदाधाने विनियोगः ॥ ॐ अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसे एवमहमायुषा मेधया वर्च्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्च्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्य्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्य्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्च्चस्यन्नादो भूयास ँ स्वाहा ॥

इति-मन्त्रेण दक्षिणं कर्णं स्पृष्ट्वा होमयेत् ॥ एवं द्वितीयां तृतीयाञ्च समिधं होमयित्वा, उपविश्य–

ॐ अग्ने सुश्रव० इत्यादिपञ्चभिर्मन्त्रैः पूर्ववत्परिसमूहनं पर्य्युक्षणञ्च विधाय, तूष्णीं पाणी प्रतप्य मुखं विमृष्टे ॥ 'ॐ तनूपा ऽअग्न'-इत्यादीनां प्रजापतिर्ऋषिर्बृहती छन्दो, बृहत्यजूँषि-छन्दांसिअग्निर्देवता·

ऽत्युपस्थाने-विनियोगः। ॐ तनूपाऽअग्ग्नेसि तन्वं मे पाहि ॥ ॐ आयुर्दा ऽअग्ग्नेस्या-ऽऽयुर्म्मे देहि ॥ ॐ व्वर्च्चोदाऽअग्नेसिव्व-र्च्चो मे देहि ॥ ॐ अग्ग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण ॥ ॐ मेधाम्मे देवः सविता आद-धातु ॥ ॐ मेधांमे देवी सरस्वती आदधातु ॥ ॐ मेधाम्मे ऽअश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर-स्रजौ ॥ इति प्रतिमन्त्रं ललाटाच्चिबुक-पर्य्यन्तं मुखं प्रोञ्छति ॥ ततः ॥ ॐ अङ्गा-नि च म ऽआप्यायताम्—इति शिरसः आ, पादमङ्गान्यालभेत ॥ ॐ वाक्च म ऽआप्या-यताम्, इति- मुखम् ॥ ॐ प्राणश्च मऽआ-प्यायताम्, इति नासिकाम् ॥ ॐ चक्षुश्चमऽ-आप्यायताम्, इति-चक्षुषी युगपत्। ॐ श्रोत्रञ्च म ऽआप्यायताम्, इति-श्रोत्रे ॥ मन्त्रावृत्या पृथक् २ ॥ ॐ यशोबलञ्च म ऽआप्यायताम्, इति—बाहू ॥ मन्त्रावृत्या पृथक् २ ॥ तत उदकस्पर्शः ॥

अथाऽनामिकयाऽग्नेर्भस्म गृहीत्वा त्र्यायुषाणि कुर्व्वते।

ॐ त्र्यायुषञ्चमदग्नेः इति–ललाटे॥ ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति–ग्रीवायाम्॥ ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम्–इति–दक्षिणांसे॥ मन्त्रावृत्या वामांसे। ॐ तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्, इति–हृदि॥ ततः॥ सर्वमन्त्रेण सर्वांगे॥

ततोऽग्न्यभिवादनम्॥ व्यस्तपाणिभ्यां पृथिवीं स्पृशन् वैश्वानरं सम्बोध्याभिवादयेत्॥

अद्याऽमुकगोत्रोऽमुकप्रवरोऽमुकशाख्यमुकवेदाध्याय्यमुक–शर्माहं, भो अग्ने! त्वामभिवादये॥ इति–वारत्रयम्॥ भो सूर्य! त्वामभिवादये॥ भो गुरो! त्वामभिवादये। तत–आचार्य्यः कथयति, आयुष्मान् भव सौम्येति॥

ततः–परिश्रितस्याग्नेरुत्तरतो दक्षिणोत्तरस्थितान् प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य, तेषु कुशेषु, तीर्थजलपूरितानष्टौ कलशान् स्थापयेत्॥ पुनः पूर्वोक्तविधिना भूरसीति संस्कारञ्च कुर्य्यात्॥ स्वयं प्राङ्मुखो भूत्वा, प्रथमकलशाज्जलमादत्ते॥

* ॐ ये ऽप्स्वन्त-इति प्रजापतिर्ऋषिर-तिजगतीछन्द-आपोदेवता,जलग्रहणे-वि० । ॐ ये ऽप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टागोह्य उपगोह्यो मयूखो मनोहास्खलो विरुजस्तनू रेदूषुरिन्द्रियहातान् विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ॥

इति-जलं दक्षिणहस्तचुलुकेन जलं गृहीत्वाऽऽत्मानमभिषिञ्चति

ॐ तेनेति-प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्द, आपो देवता, आत्मान मभिषेचने वि० ॥ ॐ तेनमामभिषिञ्चामि । श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्म वर्च्चसाय ॥ इति ॥ [ततो द्वितीयकलशाज्जलमादत्ते] ॐ ये ऽप्स्वन्त—इति मन्त्रेणैवा ऽष्टकलशाज्जलग्रहणं विधेयम् ॥ अभिषेके तु मन्त्रविशेषः ॥ ॐ येनेति-प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द आपो देवता, अभिषेचने-वि० ॥ ॐ येन श्रियमकृणुतां येनावमृशता ँ सुरान्। येनाक्ष्या-

* इस मन्त्रका उच्चारण करके आम्रपल्लव द्वारा आठों-कलशोंमें से जल-ग्रहण करना चाहिये ।अभिषेक-मन्त्र सबके पृथक् २ आगेलिखेहैं।

वभ्यषिञ्चतां यद्वां तदश्विना यशः ॥२॥ ततस्तृतीयकलशात्—ॐ आपो हिष्ठेति· सिन्धुद्वीपऋषिर्गायत्रीच्छन्द-आपो देवता, अभिषेचने-वि० ॥ ॐ आपो हिष्ठा मयो० ॥३॥ अथ चतुर्थकलशात् ॥ ॐ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उश· तीरिव मातर-(इति सिञ्चेत्) ॥ ४ ॥ ततः पञ्चम कलशात् ॥ ॐ तस्मा ऽअर· ङ्गमा० ॥५॥ ततः षष्ठसप्तमाऽष्टमकल· शेभ्यो 'येऽप्स्वन्तरग्नय'-(इति मन्त्रेण जल· मादाय तूष्णीमभिषेचयेत्) ॥

ततोऽभिषेकावशिष्टेन जलेन सहस्रधारां शिरसि धृत्वा, स्नायात् ॥ अथ मेखलोन्मोकः। तत्र। पूर्वधृतां मेखलाञ्च वटुः मन्त्रं पठन् स्वयमेव शिरोभागेन मोचयेत्—

ॐ उदुत्तममिति-शुनःशेप ऋषिस्त्रिष्टु· पछन्दः वरुणो देवता, मेखलोन्मोके—विनि· योगः ॐ उदुत्तमं व्वरुणपाशमस्मदबा· धमस्व्विमद्ध्यम ७ श्रथाय। अथा व्वयमा·

दित्यव्रते तवानागसो ऽअदितये स्याम ॥

मेखलामुन्मुच्य निधायेति सूत्रात्-साहचर्य्याच्च दण्डमजिनं तूष्णीं भूमौ निधाय। त्रिराचामेत ॥ ततः ॥ ब्रह्मचारी अन्यद्वस्त्रं परिधायोत्तरीयञ्च धृत्वा त्रिराचम्याऽऽदित्यमुपतिष्ठेत् ॥

ॐ उद्यन्भ्राजेति-प्रजापतिर्ऋषिः,शक्वरीछन्दः, आदित्यो-देवता,उपस्थाने-विनियोगः ॥ ॐ उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्। प्रातर्यावभिरस्थाद्दश सनिरसि दशसनिम्मा कुर्व्वाविदन्मागमयोद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवा यावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्व्वाविदन्मा गमय। उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रोमरुद्भिरस्थात् सायं यावभिरस्थात्। सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्व्वाविदन्मागमय ॥

इति–मन्त्रेण चोर्ध्वबाहुः सूर्योपस्थानं कुर्य्यादिति ॥ ततो दधितिलान्वा दक्षिणहस्तगतसोमतीर्थेन प्राश्य, आचम्य, जटालोमनखानि संहृत्य, वपननिमित्तकं शीतलोदकेन स्ना-

त्वा, आचम्य, ततः द्वादशाङ्गुल-दशाङ्गुला-ऽष्टाङ्गुल-दीर्घेण कनिष्ठिकाग्रस्थूलेनोदुम्बरकाष्ठेन ब्राह्मणक्षत्रियविट्-क्रमेण दन्दधावनं कुर्य्यात्-

ॐ अन्नाद्यायेत्याथर्वणऋषिरनुष्टुप्छन्दः, सोमोदेवता, दन्तधावने-विनि० ॥ ॐ अन्नाद्याय व्यूहध्व ँ सोमो राजाऽयमागमत्। स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च ।इति।

दन्तकाष्ठं त्यक्त्वाऽऽचम्य सुगन्धिद्रव्ययुक्तेन तैलयवादि-चूर्णेन शरीरोद्वर्तनं कृत्वा, तप्तोदकेन सशिरस्क स्नात्वा, आचम्य, चन्दनाद्यनुलेपनं गृहीत्वा, अनुलेपनेनहस्तावुपलिप्य नासिकयोर्मुखस्य चोपगृह्णीते मन्त्रेण-

प्राणापानावित-प्रजापतिर्ऋषिर्यजुः-प्राणापानादिलिङ्गोक्ता देवताश्चन्दनोपसंग्रहणे-विनियोगः ॥ ॐ प्राणपानौ मे तर्पय, नासिकयाम्। चक्षुर्मे तर्पय, चक्षुषोः ॥ श्रोत्रं मे तर्पय, श्रोत्रयोः ॥

तत-अपसव्यं विधाय, पाणी प्रक्षाल्य, आस्तृतकुशत्र-योपरि तदवनेज्नं जलं दक्षिणाऽभिमुखः पितृतीर्थेन दक्षि-णस्यां दिशि निषिञ्चेत् ॥

ॐपितर-इति प्रजापत्यशिवसरस्वतीन्द्रा-ऋषयो, यजुः पितरो-देवता, निषेचने-वि० ॥ ॐ पितरः शुन्धध्वम् ॥

इति पाण्योरवनेजनजनं शनैः शनै भूमौ निषिञ्चेत् ॥ पुनः सव्येनोदकस्पर्शः ॥ ततोऽनुलेपानन्तरं स्वशरीरे केशवा-दिनाम मन्त्रैर्द्वादशतिलकान् धारयेत् ॥ तद्यथा-

ललाटे-ॐकेशवाय नमः ।१। उदरे-ॐनारा-यणाय नमः ॥२॥ हृदि-ॐ माधवाय नमः ॥३॥ कण्ठकूपके-ॐ गोविन्दाय नमः ॥४॥ दक्षिण-कुक्षौ-ॐ विष्णवे नमः ॥५॥ वाम-कुक्षौ-ॐ वामनाय नमः ॥६॥ दक्षिण-बाहौ-ॐ मधुसूदनाय नमः ॥७॥ वाम-बाहौ-ॐ श्रीधराय नमः ॥८॥ कर्णमूलयोः-ॐ त्रिविक्रमाय नमः ॥९॥ पृष्ठे-ॐ पद्म-नाभाय नमः ॥१०॥ ककुदि-ॐ दामोद-राय नमः ॥११॥ शिरसि-ॐ वासुदेवाय नमः ॥१२॥ ॐ इति ललाटे वंशपत्राकृ-तिकं मध्यशून्यं धारयेदिति ॥

चैवं तिलकं धृत्वा मन्त्रं जपेत्—

ॐ सुचक्षा०-इति-प्रजापतिर्ऋषि-र्यजुलिङ्गोक्ता-देवताः, जपे-विनियोगः ॥ ॐ सुचक्षाऽअहम क्षीभ्याम्भूमासꣳसुवर्च्चा मुखेन। सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासमिति । अथोपकल्पितनूतनवासांसि परिदधीत ॥ ॐ परिधास्यै०—इत्याथर्वणऋषिः, पंक्तिश्छन्दो, वासो-देवता, नूतनवासः परिधाने—विनियोगः ॥ ॐ परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि । शतञ्च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसम्व्ययिष्ये। (द्विराचम्य)।

ततः मन्त्रेण द्वितीययज्ञोपवीतधारणं कुर्यात् । ब्रह्मचारिण एकन्तु, स्नातकस्य द्वे । बहूनि चेति-वचनात्॥ अथोत्तरीयम् ॥

ॐ यशसा मेत्याथर्वणऋषिः पंक्तिश्छन्दो लिंगोक्तादेवता उत्तरीयपरिधाने वि० ॥ ॐ यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृह

स्पती । यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥ इति ॥ एक एव वासश्चेत्तदा पूर्वोत्तरेणाच्छादयेत् ॥

ततआचम्य ॥ मालारूपाः सुमनसो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णाति–

ॐ या आहरदिति-भरद्वाजऋषिरनुष्टुप्छन्दः, सुमनसो–देवताः, पुष्पमालाग्रहणे–वि० ॥ ॐ याऽआहरज्जमदग्निः श्रद्धायै कामायेन्द्रियाय । ताऽअहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च (हस्ताभ्यां गृहीत्वा) ॥ इति ॥ अथाबध्नीते ॥ यद्यशोप्सरसामिति-भरद्वाजऋषिरनुष्टुप्छन्दः, सुमनसो–देवताः पुष्पमालाबन्धने–वि० ॥ ॐयद्यशोप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलम्पृथु । तेन संग्रथिताः सुमनसऽआबध्नामि यशो मयि ॥ इति ॥ (अथोष्णीषेणशिरोवेष्टयते ॥ तत्र मन्त्रः) ॥ ॐ युवा सुवासा इत्यङ्गिराऋषिर्बृहतीछन्दो, बृहस्पतिर्देवता, शिरोवेष्टने–वि० ॥ ॐ

युवा सुवासाः परिवीतऽआगात् सऽउश्रेयान् भवति जायमानः । तन्धीरासः कवयऽउन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥

इति ततोऽन्यान्यपि कञ्चुकादीनि वासांसि परिधाय, कर्णवेष्टको [कुण्डले] परिधत्ते ॥

ॐ अलङ्करणमितिप्रजापतिऋर्षिर्यजुश्छन्द,अलंकरणं दैवतमलंकरणे-विनियोगः॥

ॐ अलंकरणमसि भूयोऽलंकरणम्भूयात् ॥ इति—मन्त्रेण कुण्डले कर्णयोर्ददाति ॥ अथाक्षिणी, अञ्जनेनानंक्ते ॥ ॐ वृत्रस्येति-प्रजापतिऋर्षिर्यजुश्छन्द, अञ्जनं-देवता, अक्ष्यञ्जने-विनियोगः ॥ ॐ व्वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्द्दा ऽअसि चक्षुर्मे देहि ॥

पूर्वं दक्षिणनेत्रे,तत अनेनैव मन्त्रेण वामनेत्रेऽञ्जनं कुर्यादिति ॥ ततश्चाऽऽत्मदर्शन-मादर्शे ॥

ॐ रोचिष्णुरिति-प्रजापतिऋर्षिर्यजुश्छन्दः, सूर्य्योदेवता, आदर्शप्रेक्षणे—विनियोगः ॥ ॐ रोचिष्णुरसि ॥ इति ॥ तत-

श्छत्रं प्रतिगृह्णाति। बृहस्पतेश्छदिरिति-गौतमऋषिर्बृहती छन्दः छत्रं देवता, छत्र-ग्रहणे-विनियोगः॥ ॐ बृहस्पतेश्छदिरसि। पाप्मनो मामन्तर्द्धेहि तेजसो यशसो मान्त-र्द्धेहि ॥(तत-उपानहौ युगपत्प्रतिमुञ्चते)। ॐ प्रतिष्ठे स्थ०-इति जमदग्निऋर्षिर्वि-राट्छन्दो, लिंगोक्ता देवता, उपनत्प्र-तिमोके-विनियोगः ॥ ॐ प्रतिष्ठे स्थो विश्वतोमापातम् ॥ तदन्ते वैणवं दण्डं धारयति। ॐ विश्वाभ्य० इति-याज्ञ-वल्क्यऋषिर्यजुश्छन्दो, दण्डो-देवता, दण्ड-ग्रहणे-विनियोगः ॥ ॐ विश्वाभ्यो माना-ष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः ॥ इति मन्त्रेण दण्डग्रहणं कुर्यात् ॥ (अत्र च मातृपूजनादि-पूर्णपात्रदानान्तमाचार्य्यस्य कृत्यम्॥ तथा-ऽष्टकलशाऽभिषेकादिदण्डग्रहणान्तं स्नात-कस्य वटोः कृत्यम्) वासश्छत्रोपानहद्दण्ड-व्यतिरिक्तानि दन्तधावनादीनि मन्त्रवन्ति

सदा कुर्य्यात् ॥ वासः प्रभृतीनि तु नूतनान्येव मन्त्रवन्ति धारयेत ॥ तत—आचार्यं सम्पूज्य, वरं (गोदानं) दद्यात् ॥ "गौर्ब्राह्मणस्य वरमुच्यते" ॥ तत्र सङ्कल्पः ॥ ॐ अद्येहामुकोऽहं मम स्नातकत्वसिद्धये कृतस्य समावर्त्तनकर्म्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं सादगुण्यार्थमिमां गां गोनिष्क्रयीभूतं सुवर्ण रजतं वा वररूपेण आचार्याय तुभ्यं सम्प्रददे ॥ ॐ तत्सत् ॥ इति-दत्वा ॥ तत आचार्यमुखतःस्नातकोनियमान्शृणुयात्सूत्राणिअथ स्नातकस्यनियमान् वक्ष्यामः×नृत्यगीतवादित्राणिन कुर्यात्॥ नृत्यंतालाद्यनुकार्य्यङ्गविक्षे

+ ब्रह्मचारियों के मुख्य नियम—रात्रि में अपने गाँव से दूसरे गाँव में न जाय। वर्षा में कहीं यात्रा न करे। मार्ग छोड़कर न चले। किसी वृक्ष पर न चढ़े और न फल ही तोड़े। कुएें में न झाँके। ऊपर से न कूदे। घोड़े पर न चढ़े। सूर्योदय एवं सूर्यास्त-काल-पर शयन न करे। सूर्य को उदय एवं अस्त होते हुए न देखे। पानी में सूर्य की एवं अपनी छाया न देखे। युवा-स्त्रियों से एकान्त-भाषण न करे। किसी से अश्लील-भाषण न करे। स्त्रियों के मध्य में न बैठे। हरि-कीर्तन के अतिरिक्त गाना, बजाना तथा नाच कदापि न करे। नग्न स्नान न करे। हिजड़ों को देखकर न हँसे।

पः वादित्रं तालाद्यनुकारि चतुर्विधम्, एतानि
स्वयं न कुर्यात्, न तत्र गमनम् ॥ क्षेमे सति
न रात्रौ ग्रामान्तरं गच्छेत् ॥ न कूपेऽवेक्षेत् ॥
गांधयन्तीं परस्मै नाचक्षीत ॥ शस्यकुशादि-
मत्यां भूमौ मूत्रपुरीषोत्सर्गं न कुर्य्यात् ॥
वृक्षारोहणं, फलत्रोटनं च न कुर्यात् ॥ अमा-
र्गेण न गच्छेत्, न विषमभूमिं लंघयेत् ॥
नग्नो न स्नायात्, न सन्धिवेलायां शयीत
गच्छेद्वा ॥ अश्लीलं वाक्यं नोपवदेत् ॥ जल-
मध्ये सूर्यच्छायां न पश्येत् ॥ उदयास्तस-
मये सूर्यं न पश्येत् ॥ उदके नात्मानं पश्येत् ॥
अजातलोम्नीं प्रमत्तां पुरुषाकृतिं षण्ढाञ्च
स्त्रियं न गच्छेत् ॥ क्लीबं दृष्ट्वा नोपह-
सेदिति—धर्मशास्त्रविहितसाधारणनियमाः ॥
अथ त्रिरात्रनियमाः—न मृन्मये
पिबेत्तोयं, नाद्यान्मासञ्च कर्हिचित् । स्त्री-
शूद्रकृष्णशकुनिशुनां दर्शनकं त्यजेत् ॥१॥
तत्सम्पर्कान्न पानीयं, तैः सार्धंभाषणं तथा ॥

आतपे ष्ठीवनं मूत्रं, पुरीषं नैव संत्यजेत्
॥२॥ नान्तर्दधीत स्वात्मानं, सूर्य्यात्त-
प्तोदकेन च। अर्थाहृतेन च स्नायादित्याह
परमा श्रुतिः ॥३॥ सत्या वाणी प्रवक्त-
व्य, विधेयं गुरुवन्दनम्। पञ्चयज्ञा प्रकर्त-
व्या, इत्याह परमा श्रुतिः ॥४॥ इति धर्म-
शास्त्रविहित त्रिरात्रनियमाः ॥ ततो गृह-
स्थाऽऽश्रमे त्वयैवं कार्य्यमिति-'शिक्षयति
गुरुः' ॥ ते श्लोकाः ॥ "ते पञ्च यज्ञाः सम-
यानुसारं, सम्पादनीयाः सहसान्ध्यकृत्याः।
येऽनुष्ठिताः लोकफलाय पञ्च-प्राणा इवा-
न्ये घटयन्ति शक्तिम् ॥१॥ प्रदीपिकावद्
गृहकान्तिमूला, मणिप्रभावान्नयनाऽभिरा-
माः। स्त्रियो निलिप्य प्रतिमा इवारा,
सम्भावनीया बहुनादरेण ॥२॥ श्रद्धाऽ
भक्तिर्विहिता यदर्थं, विद्यापि सा तेद्य समा-
प्तिमेता। स साम्प्रतं स्वं सदनं समेहि
निदेशमेनं परिपालय त्वम् ॥३॥ परस्पर-

द्वेषविशेषमूला, ये सन्त्युपास्तौ विविधा विकल्पाः। श्रुतीः स्मृतीः पूर्वकृतीः प्रदर्श्य, ते वारणीया नितरां त्वयापि ॥४॥ (गत्वा च तत्र) विद्याविकासाय मठाऽभिधेयास्तत्रोच्चकैश्छात्रगणा निधेयाः। तत्रापि शुद्धा विधयो विधेया यैस्ते स्युरभ्युन्नतनामधेयाः ॥५॥ (ततो नवग्रहाऽभिषेकतिलकञ्च)

ब्राह्मणदक्षिणाभोजनान्तानि विदध्यात् ॥

अद्य० मम चूड़ोपनयनवेदाऽऽरम्भसमावर्तनकर्म्मसु पूर्वाङ्गत्वेन पूजिता इमाः स्वर्णादिप्रतिमा अग्न्यादि देवता नवग्रह प्रीतये अमुक गो० अ० श० ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दास्ये। प्रतिष्ठार्थञ्चतासां दक्षिणांचदास्ये।

इति--सङ्कल्प्य ॥ प्रतिमाभिः सह भूयसीं दक्षिणां दद्यात् ॥ तत उत्तर पूजनं विधाय ॐ पूर्णेति० पूर्णाहुतिं दत्वा, ब्राह्मणद्वाराभिषेकं गृह्णीयात्, तत्र तिलकादिपुरःसरमेव तत्। तत्र गोदानमप्यत्रावसर एवेति ॥

"ॐ यान्तु देवगणाः०"-उक्त्वा पूजितदेवताः विसर्जयेत् ॥ ततो ब्राह्मणान् भोजयि-

त्वा, दक्षिणां दत्त्वा च स्वयमिष्टबन्धुभिः सह भुञ्जीत ॥ यथासुखं विरमेच्च ॥

हमारे देश में ऋषि-मुनियों ने बालकों को तेजस्वी एवं विद्या-बल-बुद्धि-सम्पन्न बनाने के लिए षोडस-संस्कारों में यज्ञोपवीत-संस्कार को ही मुख्य माना है। श्रुति स्मृतियों में यह 'उपवीत-संस्कार' केवल ब्राह्मणों के लिए ही नहीं अपितु क्षत्रिय एवं वैश्यों के लिए भी बताया है, जिससे कि सभी ब्रह्म-तेजस्वी एवं वेदाऽधिकारी बन सकें।

'द्वाभ्यां जन्म-संस्काराभ्यां जायत्'--इति द्विजः।

'जन्मना जायते शूद्रस्संस्काराद् द्विज उच्यते'।

अर्थात्, प्रथम-जन्म मातृ-गर्भ द्वारा तथा द्वितीय-जन्म उपनयन-संस्कार द्वारा-इस प्रकार दो बार जन्म होने के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य-तीनों ही द्विजत्व को प्राप्त होते हैं। द्विज-मात्र के लिए सर्व-प्रथम सन्ध्योपासना-कर्म बताया है। यथा- 'विप्रो वृक्षस्तस्य मूलञ्च सन्ध्या, वेदः शाखा धर्म्म-कर्माऽदिपत्रम्''-अर्थात् विप्र ही मानो वृक्ष-स्वरूप हैं, उनकी सन्ध्योपासना ही जड़ है, चारों वेद शाखायें हैं तथा धर्मकर्मादि पत्ते हैं।

सन्ध्याहीनो ऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्म्मसु।
यदन्यत्कुरुते कर्म, न तस्य फलभाग्भवेत् ॥

अर्थात्-''ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यदि सन्ध्या-हीन हों

तो वे सर्वथा अपवित्र होते हैं उन्हें किसी पुण्य-कर्म का भाग नहीं मिलता।" बिना यज्ञोपवीत-धारण किये सन्ध्योपासन कर्म कदापि नहीं हो सकता, और न धर्मशास्त्रों द्वारा यज्ञकर्म उद्यापन, ग्रहशान्ति एवं प्रतिष्ठा-आदि करने का ही अधिकार मिलता है। विवाह-संस्कार तो बिना यज्ञोपवीत के हो ही नहीं सकता। अतः यज्ञोपवीत-धारण करना तीनों वर्णों-के लिए मुख्य है। तेज वृद्धि एवं पराक्रम-वृद्धि के लिये गायत्री-मन्त्र जपनाभी परमावश्यक है। ब्राह्मणों के लिए 'ब्रह्म-गायत्री' मन्त्र, क्षत्रियों के लिये 'त्रैष्टुभी-गायत्री' मन्त्र तथा वैश्यों के लिए-'जागती-गायत्री' मन्त्र-ये तीनों-मन्त्र वर्ण-भेदसे पृथक् २ वेदों में बताये गये हैं। वैसे सभी अधिकारी गुरु-दीक्षा लेकर 'ब्रह्म गायत्री'-मन्त्र जप सकते हैं।

उपनयन-कालनिर्णय—

'विप्रो गर्भाऽष्टमे वर्षे, क्षत्र एकादशे तथा।
द्वादशे वैश्यजातिस्तु, व्रतोपनयन मर्हति।' (व्यासस्मृतौ १।१८)

अर्थात् ब्राह्मणों को गर्भ से आठवें-वर्ष में, क्षत्रियों को ग्यारहवें वर्ष में, और वैश्य जाति के लिए बारहवें वर्ष में ब्रह्मचर्य्य-व्रत, दीक्षा, एवं यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये, किसी असुविधा के कारण यदि-संस्कार न हो सके तो 'मनु' के अनुसार इससे द्विगुने वर्षों में भी संस्कार किया जा सकता है

"आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशत्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः'। इति मनुस्मृतिः २।६५।।

अर्थात्-ब्राह्मण-१६ वें क्षत्रिय-२२ वें, तथा वैश्य २४वें वर्ष पर भी उपवीत-धारण कर सकते हैं। किन्तु वे उपनयन संस्कारका परित्यागन कदापि न करें। कारण कि-द्विजों के लिये निम्न-लिखित नियम बताये हैं। यथा—

'बिना यज्ञोपवीतेन, तोयं यः पिवति द्विजः'।
उपवासेन चैकेन, पञ्च-गव्येन शुद्ध्यति।१॥
'बिना यज्ञोपवीतेन, विण्मूत्रोत्सर्गकृद्यदि'।
ह्युपवासद्वयं कृत्वा' दानैर्होमैस्तु शुद्ध्यति॥२॥

अर्थात्-जोद्विज बिना यज्ञोपवीत-धारणकिये यदि जल-पान भी करता है, तो वह एक दिनके उपवास करनेसे एवं -पञ्चगव्य-प्राशन से शुद्ध होता है, तथा जो मल-मूत्र त्यागते समय कानों में जनेऊ नहीं लपेटता, तो वह दिनके उपवास करने से एवं दान होमादि क्रिया करने से शुद्ध होता है।

'सूतके मृतके चैव, गते मासचतुष्टये।
नवयज्ञोपवीतीनि, धृत्वा जीर्णानि संत्यजेत्'॥
[जीर्णयज्ञोपवीतानि शिरोमार्गेण संत्यजेदिति०]

अर्थात्--सूतक एवं मृतक-स्नानके अनन्तर तथा चार मास व्यतीत हो जाने पर नूतन-यज्ञोपवीत धारण कर लेना चाहिए, और जीर्ण यज्ञोपवीत का शिरोमार्गसे परित्यागन करे। पूर्व-कालसें वृद्धा-ब्राह्मणी यज्ञोपवीत निर्माण के लिए नई कपास का सूत्र [जो कहीं से खण्डित न हो]काताकरती थीं। उसी सूत्रसे मन्त्रों द्वारा सप्रामाणिक यज्ञोपवीत निर्माण

किया जाता था। वर्णोंमें अधिकारी भेदसे कुशा एवं मूँज द्वाराभी यज्ञोपवीत बनता था। आचार्य युद्ध कालके समय क्षत्रियों की रक्षाके लिए,'यह यज्ञोपवीत युद्ध में कहीं खण्डित न हो जाय ? इस कारण'-स्वर्णके तारोंका यज्ञोपवीत मन्त्रों द्वारा बनाया करते थे। किन्तु आजकल 'कपास-सूत्र' का ही यज्ञोपवीत बनाया जाता हैं। हमारे पूर्वाचार्योंने वेद-मत लेते हुए संस्कार-पद्धतियों में वर्ण-भेद द्वारा सफेद-सूत्र का यज्ञोपवीत ब्राह्मणोंको, मँजीठ वा गेरू आदिसे रँगा हुआ [लाल वर्णका] क्षत्रियोंको, तथा केशर व हल्दी से रंगा हुआ [पीत-वर्णका] वैश्योंको सात्विकादि-स्वभावानुसार पृथक्२ धारण करना बतलाया है।इसी प्रकार उन्होंने वर्ण-भेदके अनु-सार-ब्राह्मणोंकी मौञ्जी-मेखला,क्षत्रियों की धनुर्ज्या-मेखला एवं वैश्यों की मौर्वी-मेखला सप्रामाणिक पृथक् वर्णनकी हैं।

चर्म—ब्राह्मणोंके लिए-कृष्ण [काला] मृग-चर्म,क्षत्रियों के लिये-रुद्र [लाल]मृग-चर्म एवं वैश्योंके लिए पीतवर्ण का मृग-चर्म धारण करनेका विधान पद्धतियोंमें लिखा है।

दण्ड—ऋषियोंने ब्राह्मणोंके लिए शिखा-पर्यन्त लम्बा पलाश, ढाक अथवा बिल्व का दण्ड, क्षत्रियों के लिए ललाट पर्यन्त लम्बा बड़ वा खैरका दण्ड,तथा वैश्योंके लिए नासिका पर्यन्त लम्बा गूलर अथवा पीपलका दण्ड धारण करना बताया है। किसी आचार्य का मत है कि-अभाव में सभी पालाश-दण्ड धारण कर सकते हैं।

यज्ञोपवीत उत्पत्तिः--

ब्रह्मणा निर्मितं सूत्रं, विष्णुना त्रिवलीकृतम् ।
रुद्रेण दीयते ग्रन्थिः, सावित्र्या त्वभिमन्त्रितम् ॥

अर्थात्-अपनी उत्पत्ति के साथ-साथ ब्रह्माजी ने प्रथम यज्ञोपवीत सूत्र को निर्मित किया, विष्णु ने उसे त्रिवल किया तथा रुद्र भगवान ने उसमें ग्रन्थि दी और सावित्री ने मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित किया ।

स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न धार्यं तत्कथञ्चन ।
ब्रह्मचारिण एकं स्यात्, स्नातस्य द्वे बहूनि वा ॥

(इति मदनपारिजाते हरिहरभाष्ये)

❀ अथ वाग्दानविधिः ❀

तत्र यथाऽऽचारं निश्चिते विवाहात्पूर्वं कन्यापिता वाग्दानं करोति ॥ ततः कृत सविधः कन्यापिता जामातृपितरमाहूय, निर्विघ्नार्थं गणेशवरुणौ सम्पूज्य---

ॐ अद्येहाऽमुकोऽहं करिष्यमाणकन्यादानकर्म्मणः पूर्वाङ्गत्वेन वाग्दानं करिष्ये ॥

इति-सङ्कल्प्य ॥ कन्याविधिवदिन्द्राणीपूजनं कुर्य्यात् । तत्र पूर्वं सङ्कल्पः ॥

ॐ अद्येहाऽमुकगोत्रोत्पन्नाऽमुकराशिर-मुकी देव्यहं सर्वसौभाग्यसमृद्धये स्वर्णादि-मूर्तौ इन्द्राण्याः पूजनं करिष्ये ॥ इति सङ्क-ल्प्य ॥ ॐ अदित्यैरास्नासीति–दध्यङ्ङा-थर्वण–ऋषिर्यजुश्छन्द इन्द्राणीदेवतेन्द्राण्या-वाहने–विनियोगः ॥ ध्यानम् ॥ वामे करे प्रकर्तव्या, सौम्यासन्तानमञ्जरी। वरदा मण्डिता भूषैर्द्विभुजा सर्वदा शची ॥ ऋक् ॥ ॐ अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या ऽउष्णीषः। पूषासि घर्माय दीष्व ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राणीहागच्छेह तिष्ठ ॥ आवाहनम् ॥ देवेन्द्राणि महाभागे ! सर्वसौख्यपरायणे ॥ आगच्छ मम कल्याणं साधयस्व शिवप्रदे ॥ (ततः पाद्यादिभिः सम्पूजयेत् ॥ पूजामन्त्रौ)-देवेन्द्राणि नमस्तुभ्यं, देवेन्द्रप्रियभामिनि। वरं सौभाग्यमारोग्यं, पुत्रलाभञ्च देहि मे

देशाचार से-कन्यापिता वाग्दानार्थं कहीं-२ वरके पिताको, तथा कहीं-कहीं वर को ही निमन्त्रित करता है।

॥१॥ धान्यं देहि धनं देहि, पशून् देहीन्द्र-भामिनि ! यशो देहि सुखं देहि, सर्वकार्य-करी भव ॥२॥

इति मन्त्राभ्यामिन्द्राणीं सम्पूज्य-प्रार्थयेत् ॥

इन्द्राणीन्द्रपदस्थे त्वं, ज्ञानतोऽज्ञानतो मया।
यत्पूजितासि वरदे क्षमस्व प्रणतिप्रिये ॥

ततः । कुंकुमाक्तानि सद्रव्याणि नारिकेलादिपञ्चफलान्यादाय, कर्त्ता गोत्रोच्चारणं कुर्य्यात् ॥

अद्यामुकगोत्रोऽमुकप्रवरो ऽमुकवेदान्तर्गताऽ मुकवेदाध्यायी, अमुकशर्माऽहं, अमुकगोत्रोत्पन्नाया ऽमुकप्रवराया ऽमुकवेदाध्यायिने ऽमुकशर्मणः प्रपौत्राय, अमुकशर्मणः पौत्राय, अमुकशर्मणः पुत्राय, अमुकशर्मणे विष्णुस्वरूपिणे कन्यार्थिने वराय। अमुकगोत्रोत्पन्न स्यामुकप्रवरस्यामुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिनोमुकशर्मणः प्रपौत्रीम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्यामुकशाखाध्यायिनोमुकशर्मणः पौत्रीम्, अमुकगो-

त्रस्यामुकप्रवरस्यामुकशाखाध्यायिनोमुक–
शर्मणः पुत्रीम्, अमुकनाम्नीं श्रीरूपिणीं
वरार्थिनीमिमां कन्यां, ज्योतिर्विदादिष्टे
सुमुहूर्त्ते तुभ्यं दास्ये ॥

इति वारत्रयं गोत्रोच्चारणं कृत्वा, लग्नसामयिकग्रह-
निमित्तदानानि च कृत्वा, स्थालीस्थयज्ञोपवीतफलस्वर्णांगुली-
यवस्त्रतण्डुलहस्तः कन्यापितोत्थाय–

वाचा दत्ता मया कन्या, पुत्रार्थं स्वीकृता
त्वया । कन्यावलोकनविधौ निश्चितस्त्वं
सुखी भव ॥१॥ अष्टवर्षादिका कन्या, पुत्र-
वत्पालिता मया । त्वत्पुत्राय प्रदास्यामि,
स्नेहेन परिपाल्यताम् ॥२॥ व्यङ्गः क्लीबः
पङ्क्तिहीनो, त्रिर्विद्यो व्यसनी ऋणी ॥
तावत्तव सुतो न स्यात्कन्यां दास्यामि
निश्चयात् ॥३॥

इति प्रतिज्ञापूर्वकं वरपित्रे स्थालीस्थद्रव्यं दद्यात् ॥
'स्वस्तीति'-प्रतिवचनम् ॥ ततो वरगृहाऽऽगतसौभाग्यद्रव्यं
सुवस्त्रादिकञ्च कन्यायै स्वस्तिवाचनपुरस्सरं सुवासिनीद्वारा
परिधापयेत् ॥ तत उभयतो ब्राह्मणादिभ्योदक्षिणां दद्यात्,

तिलकादिञ्च कुर्य्यात् ॥

❀ अथ स्तम्भपूजनविधिः ❀

अद्येत्यादि० अमुकशर्माऽहं, ममास्याः कन्यायाः बीजगर्भसमुद्भवैनोनिवर्हणपूर्वकदाम्पत्यैश्वर्य्याऽभिवृद्धये, करिष्यमाणविवाहसंस्कारकर्मणि षोडशवरुणपूजनपूर्वकं सस्थूणाशक्तिनागमातृकब्रह्मादिषोडशकदलीमय-स्तम्भपूजनञ्च करिष्ये ॥ * [अन्तरीशाने] पूर्वं वरुणं सम्पूज्य, ॐ ब्रह्मयज्ञानमिति-गोतमऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो,ब्रह्मादेवता, ब्रह्मावाहने-विनियोगः ॥ अथावाहनम् ॥ ॐ एह्येहि विप्रेन्द्र ! पितामहेश! हंसाऽधिरूढ त्रिदशैकवन्द्य । श्वेतोत्पलाभास कुशाम्बुहस्त, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ऋक् ॥ ॐ ब्रह्मयज्ञानम्० ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, ब्रह्मदैवतसंज्ञक स्तम्भेहाग-

* ध्यान रहे कि यहाँ स्तम्भ पूजन का संकल्प विवाह परक ही लिखा गया है, अतएव-पाठक स्वयं चूडोपनयनादि अन्य संस्कारों में तत्सम्बन्धी संकल्प लगाकर पूजन करें ॥

च्छेति—सस्थूणनागमातृकाय ब्रह्मदैवतसंज्ञकस्तम्भाय नमः ॥ पाद्यादिभिः सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥ ॐ कृष्णाम्बराजिनधर, पद्मासन चतुर्मुख ॥ जटाधर जगद्धातः, प्रसीद कमलोद्भव ॥१॥ ॐ सावित्र्यै नमः ॥ ॐ ब्राह्मयै नमः ॥ ॐ गङ्गायै नमः ॥ इति—सम्पूज्य, स्तम्भमालभ्य ॥ ॐ ऊर्द्ध्व ऽऊषु-णऽ ऊतये तिष्ठा देवो न सविता । ऊर्ध्वो व्वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्व्वाघद्भिर्व्विह्वयामहे ॥ [स्तम्भशिरसि] ॐ नागमात्रे नमः ॥ सम्पूज्य, शाखां बद्ध्वा ॥ ॐ आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन्नमातरम्पुरः । पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥ क्षमापनम् ॥ ॐ यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयङ् कुरु । शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयन्नः पशुभ्यः ॥

[पञ्चोपचाराः]-गन्धपुष्पेधूपदीपौ, नैवेद्य-इति पञ्चकम् । [षोडशोपचाराः] आवाहनासनें पाद्यमर्घमाऽऽचमनीयकम् । स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च गन्धमाल्यान्यनुक्रमात् ॥१॥ धूपं दीपञ्च नैवेद्यं, ताम्बूलञ्च प्रदक्षिणा पुष्पाञ्जलिरिति-प्रोक्ता, उपचारास्तु षोडश ॥२॥ इति ॥

ॐ वनस्पतिसमुद्भूतो, निर्मितो विश्वकर्मणा ॥ स्थिरो भवाऽत्ररक्षार्थं, यावत्कार्यं समाप्यते ॥ एवं सर्वत्रबोध्यम् ॥१॥ (अन्तराग्नेये)—इदं विष्णुरिति—मेधातिथिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दो विष्णुर्देवता, विष्णवावाहने-विनियोगः ॥ आवाहनम् ॥ ॐ एह्येहि नारायण दिव्यमूर्ते, सर्वामरैरर्चितपादपद्म ॥ शुभाऽशुभानन्द शुचामधीश, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ऋक् ॥ ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे० । ॐ भूर्भुवः स्वः, विष्णो ! इहागच्छेति-ॐ विष्णवे नमः ॥ सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥ ॐ देवदेव जगन्नाथ ! विष्णो यज्ञपते विभो ॥ पाहि दुःखाम्बुधेरस्मान् भक्तानुग्रहकारक ॥ ॐ लक्ष्म्यै नमः॥ ॐ नन्दायै नमः ॥ ॐ वैष्णव्यै नमः ॥ ॐ आदित्यायै नमः ॥ सम्पूज्य ॥ ॐ ऊर्द्ध्वं इत्यादिशेषं पूर्ववद् ज्ञेयम् ॥२॥ (अन्तेनैऋत्ये)—ॐ नमस्त-इति परमेष्ठीऋषिर्गाय-

त्रीछन्दो, रुद्रो—देवता, रुद्रावाहने-वि० ॥ आवाहनम् ॥ ॐ एह्येहि गौरीश पिनाकपाणे, शशाङ्कमौले वृषभादिरूढ । देवाधिदेवेश महेश नित्यं, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ऋक् ॥ ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव० ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः-रुद्रेहागच्छेति ॥ ॐ रुद्राय नमः ॥ सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥ ॐ पञ्चवक्त्र वृषारूढ, त्रिलोचन ! सदाशिव ! । चन्द्रमौले ! महादेव, मम स्वस्तिकरो भव ॥ ॐ माहेश्वर्यै नमः । ॐ गौर्यै नमः ॥ ॐ शोभनायै नमः ॥ इति सम्पूज्य, ॐ ऊर्द्ध्व० इत्यादि-शेषं पूर्ववद् ज्ञेयम् ॥३॥ (अन्तेवायव्ये)-ॐ त्रातारमिति-गर्गऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, इन्द्रो देवतेन्द्राऽऽवाहने--वि० ॥ आवाहनम् ॥ ॐ एह्येहि वृत्रघ्न गजाधिरूढ, सहस्रनेत्र त्रिदशैकवन्द्य । शचीपते ! शक्र ! सुरेश ! नित्यं, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ऋक् ॥ ॐ त्रातारमिन्द्रमविता-

रमिन्द्रꣳहवे हवे सुहवꣳशूरमिन्द्रम् । ह्वयामि-शक्क्रम्पुरुहूतमिन्द्र ꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, भो इन्द्रेहागच्छेति० ॐ इन्द्राय नमः ॥ सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥ ॐ देवराज गजारूढ, पुरन्दर शतक्रतो । वज्रहस्तु महाबाहो, वाञ्छितार्थप्रदो भव ॥ ततः ॥ ॐ इन्द्राण्यै नमः ॥ ॐ आनन्दायै नमः ॥ ॐ विभूत्यै नमः ॥ इति सम्पूज्य, ॐ ऊर्द्ध्वं० इत्यादिशेषं पूर्ववद् ज्ञेयम् ॥४॥ [बहिरीशाने] ॐ चित्रमितिकुत्सऋषिर्विराट्छन्दः, सूर्य्योदेवता, सूर्यावाहने–वि० ॥ आवाहनम् ॥ ॐ एह्येहि सप्ताश्व सहस्रभानो, सिन्दूरवर्ण प्रतिमावभास । छायापते ! सूर्य ! दिनेश ! नित्यं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ऋक् ॥ ॐ चित्रन्देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्म्मित्रस्य व्वरुणस्याग्नेः । आप्प्राद्यावा पृथिवीऽअन्तरिक्ष ꣳ सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थु षश्चच-

ॐ भूर्भुवः स्वः, सूर्येहागच्छेति ॥ ॐ सूर्याय नमः ॥ सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥ पद्महस्त रथारूढ, पद्मासन सुमङ्गल । क्षमां कुरु दयालो ! त्वं, ग्रहराज नमोऽस्तुते ॥ ॐ सावित्र्यै नमः ॥ ॐ मङ्गलायै नमः ॥ ॐ भूत्यै नमः ॥ इति-सम्पूज्य ऊर्ध्वं०-इत्यादि शेषं पूर्ववद् ज्ञेयम् ॥५॥ (ईशानपूर्वयोर्मध्ये) ॐ गणानान्त्वेति—प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो, गणपतिर्देवता, गणपत्याऽऽवाहने-विनियोगः ॥ आवाहनम् ॥ ॐ एह्येहि हेरम्ब ! महेशपुत्र, समस्त—विघ्नौघविनाशदक्ष । माङ्गल्यपूजा-प्रथम—प्रधान, गृहाण पूजां भगवन्न मस्ते ॥ ऋक् ॥ ॐ गणानान्त्वा० ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, भो गणपते ! इहाऽऽगच्छेति-ॐगण-पतये नमः ॥ सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥ लम्बोदर नमस्तुभ्यं, सततं मोदकप्रिय । अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ ॐ विघ्नहारिण्यै नमः ॥ ॐ जयायै नमः ॥ ॐ सर-

स्वस्त्यै नमः ॥ इति सम्पूज्य, ॐ ऊर्ध्वं० इत्यादि-शेषं पूर्ववत् ज्ञेयम् ॥६॥ (पूर्वाग्नेययोर्मध्ये) ॐ यमाय त्वेति-दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिर्यजुश्छन्दः यमो देवता यमाऽऽवाहने-विनियोगः ॥ आवाहनम् ॥ ॐ एह्येहि वैवस्वत ! धर्मराज ! सर्वामरैरर्चित धर्ममूर्त्ते । विशालवक्षस्थल रुद्ररूप, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ॐ यमाय त्वा मखाय त्वा, सूर्यस्य त्वा तपसे । देवस्त्वा सविता मध्वा नक्तु पृथिव्याः सꣳस्पृशस्पाहि । अर्चिरसि शोचिरसि तपोसि ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, भो यमेहाऽऽगच्छ, इह तिष्ठ ॥ ॐ यमाय नमः ॥ इति सम्पूज्य प्रार्थयेत् ॥ ॐ धर्मराज महाकाय, दण्ड हस्त वरप्रद । रक्तेक्षण महाबाहो ! पाहि यज्ञं नमोऽस्तु ते । ॐ पूर्व-सन्ध्यायै नमः ॥ ॐ आञ्जन्यै नमः ॥ ॐ क्रूरायैनमः ॥ ॐ नियन्त्र्यै नमः ॥ इति सम्पूज्य, ॐ ऊर्द्ध्व० -इत्यादि

शेषं पूर्ववद् ज्ञेयम् ।।७।। (बाह्ये आग्नेये) ॐ नमोऽस्त्वति मन्त्रस्य देवश्रवा ऋषि-स्त्रिष्टुप्छन्दो, नागराजो-देवता, नागराजा-ऽऽवाहने-विनियोगः ।। ध्यानम्-ॐ एह्येहि-नागेन्द्र धराधरेन्द्र !, सर्वामरैर्वन्दितपाद-पद्म ।। नाना फणामण्डलराजमान, गृहाणपूजां भगवन्नमस्ते ।। ऋक् ।। ॐ नमोस्तु सर्प्पे-भ्यो ये के च पृथिवी मनु । ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्प्पेभ्यो नमः ।। ॐ भूर्भुवः स्वः नागराजेहागच्छ, इह-तिष्ठ ॐ नागराजाय नमः ।। सम्पूज्य प्रार्थयेत् ।। ॐ आशीविष समोपेत, नागकन्या विराजित । आगच्छ नागराजेन्द्र, फणासप्तकमण्डित । ॐ अध-रायै नमः । ॐ मध्यम-सन्ध्यायै नमः ।। ॐ पद्मायै नमः ।। ॐ महा पद्मायै नमः ।। इति सम्पूज्य, ॐ ऊर्द्धव०-इत्यादि शेषं पूर्ववद् ज्ञेयम् ।।८।। (अग्नि दक्षिणयोर्म-ध्ये) ॐ यदक्रन्द-इति भार्गवऋषिस्त्रि-

ष्टुप्छन्दः, स्कन्दो-देवता, स्कन्दाऽऽवाहने विनियोगः। ॐ एह्येहि गौरीसुत देवदेव! षट्कृत्तिकारक्षित देहयेष्ट मयूरवाह प्रणतार्त्तिहारिन्, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते। ॥ ऋक् ॥ ॐ यदक्रन्दः प्रथमञ्जायमानऽउद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहूऽउपस्तुत्यम्महि जातन्ते ऽ अर्व्वन् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, भोस्कन्द! इहागच्छ, इह-तिष्ठ ॥ ॐ स्कन्दाय नमः सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥ ॐ मयूरवाहन स्कन्द, गौरीसुत षडानन। कार्त्तिकेय ! महाबाहो ! दयां कुरु दयानिधे ॥ ॐ पश्चिमसन्ध्यायै नमः॥ ॐ जयायै नमः॥ ॐ विजयायै नमः ॥ इति सम्पूज्य, ॐ उद्बुध्य० इत्यादि शेषं पूर्ववद् ज्ञेयम् ॥८॥ (दक्षिणनैर्ऋत्यमध्ये) ॐ वायुरिति—वसिष्ठ—ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, वायुर्देवता, वाय्वावाहने-विनियोगः॥ अथाऽऽवाहनम् ॥ ॐ

एह्येहि वायो ! मम रक्षणाय, मृगाऽधिरूढ
स्त्वधिसिद्धसङ्घैः । प्राणाधिप त्राणकर
प्रधान, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ऋक्॥
ॐ व्वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा
यज्ञम् । शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥ ॐ
भूर्भुवः स्वः, वायो ! इहागच्छ, इह तिष्ठ ॥
ॐ वायवे नमः ॥ सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥ ॐ
नमो धरणिपृष्ठस्थ–ध्वजधारिन् समीरण ।
पाहि यज्ञमिमं देव ! प्रसन्नो भव मे सदा ॥
ॐ तीव्रायै नमः ॥ ॐ गायत्र्यै नमः ॥ ॐ
वायव्यै नमः ॥ सम्पूज्य ॥ ॐ ऊर्ध्वं० इत्या-
दि–शेषं पूर्ववद् ज्ञेयम् ॥१०॥ (नैऋर्त्ये)
ॐ सोममितिबन्धुऋर्षिर्गायत्रीछन्दः, सो-
मो–देवता, सोमावाहने–विनियोगः ॥
आवाहनम् ॥ ॐ एह्येहि सोमाध्वरदेव—
देव !, विधत्स्व रक्षां भगणेन साधम् ॥ योग-
स्य सर्वौषधिपितृयुक्त, गृहाण पूजां भगवन्न-
मस्ते ॥ ऋक् ॥ ॐ सोम ँ राजानमवसे

ऽग्निमन्वारभामहे। आदित्यान् विष्णु सूर्यं ब्रह्माणञ्च बृहस्पति ॰ स्वाहा॥ ॐ भूर्भुवः स्वः भो सोम ! इहागच्छ, इह-तिष्ठ॥ ॐ सोमाय नमः॥ सम्पूज्य, प्रार्थयेत्॥ ॐ क्षीरार्णवसमुद्भूत, द्विजराज ! सुधाकर॥ सोम त्वं सौम्यभावेन, ग्रहपीडां निराकुरु॥ ॐ सावित्र्यै नमः॥ ॐ अमृतकलायै नमः॥ ॐ विजयायै नमः॥ इति सम्पूज्य, ऊर्ध्वं॰ इत्यादि-शेषं पूर्ववद् ज्ञेयम्।११। (पश्चिमनैर्ऋत्यमध्ये) ॐ इमम्मे वरुणेति—वत्सऋषिर्बृहतीछन्दो, वरुणो—देवता, वरुणाऽऽवाहने-विनियोगः॥ आवाहनम्॥ ॐ एह्येहि यादोगणवारिधीश, पर्जन्यदेवाप्सरसां गणेन। विद्याधरेन्द्राऽमरगीयमान, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ ऋक्॥ ॐ इमम्मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, भो वरुण ! इहागच्छ, इह तिष्ठ-ॐ वरुणाय

नमः ॥ इति सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥ ॐ शङ्ख-स्फटिकवर्णाभ, श्वेतहाराम्बरावृत । पाशहस्त महाबाहो, वरुण त्वं दयां कुरु ॥ ॐ वारुण्यै नमः ॥ ॐ बार्हस्पत्यै नमः । ॐ पाशधारिण्यै नमः ॥ इति सम्पूज्य ऊर्ध्व० इत्यादिशेषं पूर्ववद् ज्ञेयम् ॥१२॥ (पश्चिमवायव्यमध्ये) ॐ सुगाव इति-वसिष्ठ ऋषिर्गायत्री-छन्दो, वसुर्देवता, वस्वावाहने-विनियोगः ॥ आवाहनम् ॥ ॐ एह्येहि देवेश्वर दिव्यदेह !, वसो प्रसन्ना-त्मद्दगष्टमूर्ते । ममास्य यागस्य सुरक्षणार्थं, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ऋक् ॥ ॐ सुगावो देवाः सदना अकर्म्म य आजग्मेद ँ सवनञ्जुषाणाः । भरमाणाव्वह माना-हवी ँ ष्यस्मे धत्त व्वसवो व्वसूनि-स्वाहा ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, वसो ! इहागच्छेति-ॐ वसवे नमः ॥ सम्पूज्य, प्रार्थयेत् । ॐ दिव्यवस्त्वाष्टमूर्त्ते त्वं, दिव्यदेहधर प्रभो ।

पाहि यज्ञमिमं सर्वं, वरदं त्वां नमाम्यहम्॥ ॐ विनतायै नमः ॥ ॐ गरिमायै नमः ॥ ॐ सम्भूत्यै नमः ॥ इति-संपूज्य, ऊर्ध्वं॰ इत्यादि शेषं पूर्ववद् ज्ञेयम् ॥१३॥ (वायव्ये)-ॐ सोमोधेनुमिति-गोतमऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, धनदो-देवता, धनदावाहने-विनियोगः ॥ आवाहनम् ॥ ॐ एह्येहि रक्षोगणनायक त्वं, विशालवेतालपिशाचसङ्घैः ॥ ममाऽध्वरं पाहि कुवेर देव !, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ऋक् ॥ ॐ सोमो धेनु ँ सोमो अर्व्वन्तमाशु सोमो व्वीरं कर्म्मण्यं ददाति सादन्यं विदथ्य ँ सभेयं पितृश्रवणं य्यो ददाशदस्म्मै ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, भो धनदेहागच्छेति-ॐ धनदाय नमः ॥ सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥ ॐ दिव्यदेह धनाध्यक्ष, पीतहाराम्बरावृत । उत्तरेश ! महाबाहो, वाञ्छितार्थं प्रदो भव ॥ ॐ आदित्यै नमः ॥ ॐ सिनीवा-

ल्यै नमः ॥ॐ लघिमायै नमः ॥ इति–
सम्पूज्य। ॐ ऊर्ध्व० इत्यादि–सर्वं पूर्ववद्-
ज्ञेयम् ॥१४॥ (उत्तरवायव्यमध्ये) ॐ
बृहस्पत-इति-गृत्समद ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो,
बृहस्पतिर्देवता, बृहस्पत्याऽऽवाहने विनि-
योगः ॥ आवाहनम् ॥ ॐ एह्येहि देवेन्द्र
गुरो मखेश ! बृहस्पते यज्ञपते सुयागे।
रक्षार्थमत्रोपविशानुकम्पिन्, गृहाण पूजां
भगवन्नमस्ते ॥ ऋक् ॥ ॐ बृहस्पते ऽअ-
तियदर्य्योऽ अर्हा द्युमद्विभाति क्रतुमज्ज-
नेषु। यद्दीदयच्छवस ऽऋत प्प्रजात-तद-
स्म्मासु द्रविणं न्धेहि चित्रम् ॥ ॐ भूर्भुवः
स्वः, भो बृहस्पते ! इहागच्छेति० ॐ बृह-
स्पतये नमः ॥ इति–सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥
ॐ देवाचार्य्य यथा शक्त्या, पूजितोऽसि
मया मुदा। क्रूरग्रहोपशान्ति त्वं, कुरु नित्यं
नमोऽस्तु ते ॥ ॐ पौर्णमास्यै नमः ॥ ॐ
देवमात्रे नमः ॥ ॐ सन्तत्यै नमः ॥ संपूज्य,

ॐ ऊर्ध्व० इत्यादि—शेषं पूर्ववद् ज्ञेयम् ॥१५॥ (उत्तरेशानयोर्मध्ये) ॐ विश्वकर्मन्निति—शासऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, विश्वकर्मादेवता, विश्वकर्माऽऽवाहने—विनियोगः ॥ अथाऽऽवाहनम् ॥ ॐ एह्येहि शिल्पीश्वर विश्वकर्मन् ! मूर्त्यादिनिर्माणकरैकमुख्य । दोर्दण्डसंसाधितसर्वशिल्प, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ऋक् ॥ ॐ व्विश्वकर्मन्हविषा व्वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ॥ तस्मै व्विशः समनमन्तपूर्वीरयमुग्रो व्विहव्योयथासत् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः भो विश्वकर्मन् ! इहागच्छेति—ॐ विश्वकर्मणे नमः ॥ सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥ ॐ विश्वकर्मन् ! प्रसीद त्वं, शिल्पशास्त्रविशारद । दण्डपाणे महाबाहो,तेजोमूर्तिधर प्रभो ॥ ॐ वास्तुदेवतायै—नमः ॥ ॐ वैश्वकर्मण्यै-नमः ॥ ॐ शारदायैः-नमः ॥ संम्पूज्य, ॐ ऊर्ध्व० इत्यादि—शेषं पूर्ववद्

ज्ञेयम् ॥ १६ ॥ प्रार्थयेत् ॥ ॐ जितं ते पुण्डरीकाक्ष ! नमस्ते विश्वभावन ! । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश !, महापुरुष पूर्वज ॥

ततो दधिमाषभक्तबलिदानं दद्यात् ॥

बहिःपूर्वे ॥ ॐ त्रातारमिति–गर्गऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो,इन्द्रो-देवता, सदीपदधिमाषभक्तबलिदाने-विनियोगः।ऋक्। त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र ँ हवे हवे सुहव ँ शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रम्पुरुहूतमिन्द्र ँ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, भो इन्द्रेहागच्छेति–ॐ इन्द्राय नमः । सदीपदधिमाषभक्तबलये नमः ॥

सम्पूज्य जलं तत्र त्यजेत् ॥

दधिमाषौदनैर्युक्तं, सदीपं बलिमुत्तमम्। सर्वविघ्नप्रणाशाय, गृहाणेन्द्र वर प्रद ॥ मण्डले सम्प्रवक्ष्यामि, मया भक्त्या निवेदितम् । इदमर्घ्यमिदं पाद्यं, दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥ १॥इति [आग्नेये] ॐ त्वन्नोऽअग्ने० इति-हिरण्यस्तूप-ऋषिस्त्रिष्टुप्छ–

न्दोऽग्निर्देवता, सदीपदधिमाषभक्तबलिदाने—विनियोगः। ऋक्। ॐ त्वन्नो ऽअग्ने व्वरुणस्य व्विद्वान्देवस्य हेडो ऽ अव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठ्ठो व्वह्निनतमः शोशुचानो व्विश्श्वा द्वेषा ँ सि प्रमुमुग्ध्यस्म्मत्॥ ॐ भूर्भुवः स्वः अग्ने! इहागच्छेति-ॐ अग्नये नमः। सदीपदधिमाषभक्तबलये नमः॥ सम्पूज्य, जलं तत्र संत्यजेत्॥ दधिमाषौदनैर्युक्तं, सदीपं बलिमुत्तमम्। गृहाणाग्ने महाबाहो, रक्षो विघ्नं प्रणाशय॥ मण्डलेति पूर्ववत्॥२॥ (दक्षिणे) ॐ असीतिजमदग्निऋर्षिस्त्रिष्टुप्छन्दो, यमो-देवता, सदीपदधिमाषभक्तबलिदाने-विनियोगः॥ ऋक्॥ ॐ असि यमो ऽअस्यादित्यो ऽ अर्व्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्व्रतेन। असि सोमेन समया विपृक्त ऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, यमेहागच्छेति—ॐ यमाय नमः॥ सदीपदधिमाषभक्तबलये

नमः ।। सम्पूज्य,जलन्तत्र संत्यजेत् ।। दधि-
माषौदनैर्युक्तं सदीपं बलिमुत्तमम् ।। यम-
राज गृहाण त्वं, सर्वदोषं निवारय ।। मण्ड-
लेतिपूर्ववत् ।।३।। (नैर्ऋत्ये) असुन्वन्तमि-
तिविवस्वानृषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, निर्ऋतिर्दे-
वता, सदीपदधिमाषभक्तबलिदाने-विनि-
योगः ।। ऋक् ।। ॐ असुन्वन्तमयजमान-
मिच्छस्तेनस्येत्यामन्विहितस्करस्य । अन्य-
मस्मदिच्छ सा त ऽ इत्या नमो देवि
निर्ऋते तुभ्य मस्तु ।। ॐ भूर्भुवः स्वः,भो
निर्ऋते!इहागच्छेति-ॐ निर्ऋतये नमः ।।
सदीपदधिमाषभक्तबलये नमः ।। सम्पूज्य,
जलं तत्र त्यजेत् । दधिमाषौदनैर्युक्तं,सदीपं
बलिमुत्तमम् गृहाण निर्ऋते देव, सर्वान्
दोषान्निवारय ।। मण्डलेति-पूर्ववत् ।।४।।
(पश्चिमे)-ॐ तत्वायामिति-शुनः शेप-
ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, वरुणो-देवता, सदीपद-
धिमाषभक्तबलिदाने-विनियोगः ।। ऋक् ।।

ॐ तत्त्वा यामि ब्ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदा-
शास्ते यजमानो हविर्ब्भिः । अहेडमानो
व्वरुणेह बोद्ध्युरुश ँ स मा नऽ आयुः प्प्र-
मोषीः ।। ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणेहागच्छेति-
ॐ वरुणाय नमः । सदीपदधिमाषभक्त-
वलये नमः । सम्पूज्य जलं तत्र संत्यजेत् ॥
दधिमाषौदनैर्युक्तं, सदीपं बलिमुत्तमम् ।
गृहाण देव वरुण, रक्षो विघ्नं प्रणाशय ॥
मण्डलेति पूर्ववत् ।।५।। [वायव्ये] आनो-
नियुद्भिरिति-वसिष्ठऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, वा-
युर्देवता-सदीपदधिमाषभक्तबलिदाने-विनि-
योगः ।। ऋक्।। ॐ आनो नियुद्भिः शति-
नीभिरध्वर ँ सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम्।
व्वायो ऽअस्मिन्तसवने मादयस्वयूयं पात
स्वस्तिभिः सदा नः ।। ॐ भूर्भुवः स्वः
वायो ! इहागच्छेति–ॐ वायवे नमः ॥
सदीपदधिमाषभक्तबलये नमः ।। सम्पूज्य
जलं तत्र त्यजेत् ।। दधिमाषौदनैर्युक्तं,

सदीपं बलिमुत्तमम् । गृहाणवायो ! देवेश!, सर्वव्याधिक्षयं कुरु ॥ मण्डलेति पूर्ववत् ॥६॥ (उत्तरे) वयमिति-बंधुऋर्षिस्त्रिष्टुप्छन्दः सोमो देवता, सदीपदधिमाषभक्तबलिदाने–विनियोगः ॥ऋक्॥ ॐ व्वय ँ सोम व्व्रते तव मनस्तनूषु बिब्भ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, सोमेहागच्छेति–ॐ सोमाय नमः ॥सदीपदधिमाषभक्तबलये नमः ॥ इति सम्पूज्य, जलं त्यजेत् ॥ दधिमाषौदनैर्युक्तं, सदीपं बलिमुत्तमम् गृहाण । सोम ऋक्षेश,मम शान्तिकरो भव॥मण्डलेति पूर्ववत्॥७॥ [ईशाने] ईशावास्यमिति– गौतमऋषिर्जगतीछन्द,ईशानो—देवता सदीपदधिमाषभक्तबलिदाने–विनियोगः ॥ ऋक् ॥ ॐ ईशावास्यमिद ँ सर्वं यत्किञ्चजज्जगत्याञ्जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, ईशानेहागच्छे-

ति-ॐ ईशानाय नमः ॥ सदीपदधिमाषभक्त-बलये नमः ॥ सम्पूज्य, जलं तत्र त्यजेत् ॥
दधिमाषोदनैर्युक्तं, सदीपं बलिमुत्तमम् ।
गृहाणेशान सर्वज्ञ !, सर्वशत्रुक्षयं कुरु ॥
मण्डलेति पूर्ववत् । (ईशानपूर्वयोर्मध्ये-ऊर्ध्वायाम्) ॐ ब्रह्म यज्ञानमितिगोतम-ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, ब्रह्मा-देवता, सदीप-दधिमाषभक्तबलिदाने—विनियोगः॥ ऋक्॥
ॐ ब्रह्म यज्ञानम्प्रथमम्पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो व्वेन ऽआवः । सबुध्न्या ऽउपमा ऽअस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, ब्रह्मन्निहागच्छेति-ॐ ब्रह्मणे नमः ॥ सदीपदधिमाष-भक्तबलये नमः ॥
सम्पूज्य, जलं तत्र त्यजेत् ॥
दधिमाषौदनैर्युक्तं, सदीपं बलिमुत्तमम् ।
गृहाण ब्रह्मन् देवेश, सर्वसौख्यं विवर्धय ॥
मण्डलेति पूर्ववत् ॥ ९ ॥ (निर्ऋति पश्चि-

मयोर्मध्येऽधःस्थायाम्)-ॐ आयं गौरिति-सूर्यऋषिर्गायत्रीछन्दोऽनन्तो देवता, सदीपदधिमाषभक्तबलिदाने-विनियोगः । ऋक् । ॐ आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरम्पुरः। पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः-अनन्तेहागच्छेति-ॐ अनन्ताय नमः ॥ सदीपदधिमाषभक्तबलये नमः । संपूज्य, जलं तत्र त्यजेत् ॥ दधिमाषौदनैर्युक्तं, सदीपं बलिमुत्तमम् । गृहाणानन्त नागेन्द्र ! सर्वान् विघ्नान् प्रणाशय ॥ मण्डलेति पूर्ववत् ॥१०॥ (मण्डपाद्-बहिर्दक्षिणे)-

सदीपदधिमाषभक्तसिन्दूरकज्जलरक्तपुष्पपक्वान्नकुकुम-वलि सोपायनं निधाय ॥

ॐ न हि स्पशमिति-विश्वामित्रऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, क्षेत्रपालो-देवता, क्षेत्रपालबलिदाने-विनियोगः ॥ ऋक् ॥ ॐ न हि स्पशमविदन्न न्यमस्माद्वैश्वानरात्पुर-ऽएतारमग्नेः । एमेनमवृधन्नमृता ऽअमर्त्यं वैश्वा-

नरङ्क्षैत्रजित्याय देवाः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, क्षेत्रपालेहागच्छेति- ॐ क्षेत्रपालाय नमः ॥ बलये नमः ॥ सम्पूज्य, जलं तत्र त्यजेत् ॥ दधिमाषौदनैर्युक्तं, समीपं बलिमुत्तमम् । गृहाण त्वं क्षेत्रपाल !, रक्षोविघ्नं प्रणाशय ।

इति ततो दुर्ब्राह्मणं सम्पूज्य, तस्मै बलिं दद्यात् । सम्प्रार्थयेत् ।

ॐ भ्राजद्वक्त्रजटाधरं त्रिनयनं नीलाञ्जनादिप्रभं, दोर्दण्डान्तगदाकपालमरुणं स्रग्गन्धवस्त्राऽऽवृतम् ॥ घण्टाघुर्घुरमेखलाध्वनिमिलद्धुङ्कारभीमं प्रभुम्, वन्दे संहितसर्पकुण्डलधरं श्री क्षेत्रपालं सदा ॥ नमस्कारः ॥ त्रैलोक्ये यानि भूतानि, स्थावराणि चराणि च । ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं, रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥ इति ॥

❀ अथ विवाहसंस्कारपद्धतिः ❀

तत्रपूर्वं कन्यावरयोरायुषो विचारः ॥ अखिलधर्मशास्त्रानुमत्या ब्रह्मचर्याश्रमे वेदादिविद्याग्रहणानन्तरं पुरुषाणां विवाहः

कार्य्यं इति । दीर्घकालावधि ब्रह्मचर्यधारणं कलौ निषिद्धमतो मानवधर्मशास्त्रोक्तं ग्राह्यम् । तथा हि द्विजपुरुषाणां सप्तदश वर्षादारभ्य पञ्चविंशतिवर्षावधि विवाहकालः । बालिकानाञ्च दशद्वादशवर्षपरिमितमेवावधिः । तथा हि "वसिष्ठस्मृतौ"-प्रयच्छेन्नग्निकां कन्यामृतुकालभयात्पिता । ऋतुमत्यां हि तिष्ठन्त्यां दोषः पितरमृच्छति ॥१॥ पितुः प्रमादात्तु यदीह कन्या, वयः प्रमाणं समतीत्य दीयते ॥ सा हन्ति-दातारमुदीक्षमाणा, कालातिरिक्ता गुरुदक्षिणेव ॥२॥ यावच्च कन्यामृतवः स्पृशन्ति, तुल्यैः सकामामभियाच्यमानाम् । भ्रूणानि तावन्ति हतानि ताभ्यां, मातापितृभ्यामिति धर्मवादः ॥३॥ अ० १७ ।

---

* विवाह प्रथा के भेद *

"ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः, प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव, पैशाचश्चाऽष्टमोऽधमः ॥"

अथ कन्याद्वारे वरयात्राप्रवेशे प्रश्नोत्तराष्टकम्

कन्यापक्षीयाः—

शिवो गणेशः किमु विष्णुदेवः, समागतः किं भुवनैकवन्द्यः।
यो वा भवेत् स्वागतमत्र गेहे नतिस्तथा नः सगणस्य तेऽस्तु ॥१॥

वरपक्षीयाः—

नाऽहं शिवः सोऽपि शिवं सदावः नान्यो नरः केवलकौतुकीयः।
वरोऽस्मि नारायणरूपनामा, द्वारागतस्तेऽद्य गणैः स्वसार्धम् ॥२॥

कन्यापक्षीयाः—

कुतः कथं विष्णुजगज्जयिष्णोः, किन्ते मदभ्यागमकारणञ्च।
केमी त्वदीया हि गणाः समस्ता दिष्ट्यागतोऽत्र हि तथेति मे त्वम् ॥३॥

वरपक्षीयाः—

श्रुतं मया विप्रमुखाम्बुजाद्यद् दाता भवानेक इहावतीर्णः।
क्षीरोदनाम्नैव विचिन्त्य चेतः, स्त्वनाकपूर्वं पुरतः समेतः ॥४॥

कन्यापक्षीयाः—

अहोऽतिधन्याः कृतपुण्यकाः स्मो, येषां स गेहे नयगाऽभिरामः।
रामः स्वयं राजति याचते च, रामोऽद्य किं ते वयमागताय ॥५॥

वरपक्षीयाः—

वाचा प्रदत्ता प्रहितं यदर्थं, मुहूर्तपत्रं किल तत् स्मर त्वम्।
तां त्वच्छ्रियं लब्धुमिहागताः स्मस्त्वद् द्वारदेशे सगणैस्तदित्थम् ॥६॥

कन्यापक्षीयाः—

विभाति किं वाद्यमुदः छटापरा सुधांशुवर्णस्य तथैव किं कला।
मनोरथस्योत्परमा कृपा प्रभो ! सुता-प्रदानाऽवसरो वृतो यतः ॥७॥

वरपक्षीयाः—

वरश्रिया सर्वगुणैकसंश्रितां श्रियं सुतां सम्प्रति, विष्णुरूपिणे।
वराय दत्वैव वितथ्यवाचभाग, विवाहसंस्कारविधानतः शुभाम् ॥८॥

ततो दाता ददानीत्युक्त्वोपवेशयति ॥

कुछ जगह जब वरयात्रा कन्या के द्वार पर आती है तो कहीं २ इस तरह-प्रश्नोत्तार होते हैं। इस प्रश्नोत्तरी के अनन्तर आदर से

विवाह संस्कार-विधिः-

तत्र धूल्यर्घ-विधिः-कन्यापिता स्नातः शुचिः शुल्काम्बरधरः कृतनित्यक्रियः-आचार्यं सम्पूज्य वृणुयात् ॥

ॐ अद्येत्यादि० ममाऽस्याः कन्यायाः करिष्यमाणविवाहसंस्कारकर्म्मणि-एभिर्गन्धाऽक्षतपुष्पपूगीफलद्रव्ययज्ञोपवीतपुष्पमालावासोऽलङ्करणादिभिश्च—आचार्य्यकर्म—कर्तुमाचार्यत्वेन त्वामहं वृणे ॥ 'वृतोऽस्मीति'—प्रतिवचनम् ॥

ततः सपुष्पहस्तः कन्यापिता तं प्रार्थयेत् ॥

गणेश-पूजन करना भी संस्कार-सिद्ध्यर्थ श्रेय है। क्योंकि-सांख्योक्त २४ स्थूल-तत्वों में व्यापक जगदीश को गणेश कहते हैं। जो कि-विराट् नाम से वर्णित है। मुक्ति को कुतरने वाली विक्षेप या आवरण शक्ति रूप मूषक गणेश का वाहन है। गणेश की उपासना हमको यह उपदेश देती है, कि स्थूल तत्वों में व्यापक-परमात्मा का दर्शन विक्षेप और आवरण-शक्ति को नीचे दबाने से होता है। अतः-प्रत्येक-कार्यके आदि में गणेश-पूजन की आज्ञा उपदेश देती है कि मनुष्य जन्म की सफलता तभी है, जब कि वह जन्म लेकर त्रिविध-तापों से मुक्त होकर आत्मा के आनन्द स्वरूप मुक्ति का दर्शन करे। वह दर्शन यम-नियमादि आठ-कक्षाओं को उत्तीर्ण कर स्थूल, सूक्ष्म और कारण-प्रकृति में व्यापक विराट् हिरण्यगर्भ और ईश्वर में क्रमशः होकर शुद्ध-ब्रह्म में होता है, अन्यथा, नहीं, । अतएव गणेश [विराटरूप] पूजन आदि में रक्खा है। यही रहस्य विद्वानों ने बताया है।

"आचार्यस्तु यथा स्वर्गे, शक्रादीनां बृहस्पतिः। तथा त्वं भगवन् चात्र, आचार्यो भव सुव्रत" ॥१॥ यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा० ॥२॥ "अस्य यज्ञस्य निष्पत्यै, भवन्तोऽभ्यर्थिता मया ॥ सुप्रसन्नैर्हि कर्तव्यं शान्तिकं विधिपूर्वकम् ॥३॥ इति-सम्प्रार्थ्य, अस्मिन् कन्याविवाहकर्मणि त्वं मे आचार्यो भवेति-ब्रूयात्। तत आचार्योऽ'हं भवानि'-इति वदेत्।

सुधीर्यजमानस्तं वस्त्रद्रव्यादिभिस्तोषयेत् ॥ तत्राऽऽदौ-षोडश-द्वादश-दशाष्टान्यतमसंख्यकहस्तो मण्डपश्चतुर्द्वारः कार्यः तत्र वरचतुष्कारां वधूचतुष्करां वा वेदीं चतुरस्रां सोपानयुतां प्राक् प्रवणां रंभास्तंभादिभि सर्वतः सुशोभितां गृहद्वाराद् वामभागे कुर्यात् ॥ ततो विवाह दिने तत्पूर्वदिने वा स्वे स्वे गृहे कन्यापिता वरपिता च सपत्नीकः कन्यापुत्राभ्यां सह मङ्गलं स्नात्वाऽहते वाससी परिधाय, धृततिलको ऽलङ्कारादिभिरलङ्कृतो मातृयागपुरः-सरं नान्दीश्राद्धं विधाय, बहिः शालायां शुभासने चोपविश्य, स्वदक्षिणतः संस्कार्यं ञ्चोपवेश्य, आचम्य, प्राणानायम्य।

(गर्भाधानादिसंस्कारलोप-प्रायश्चित्तं-कुर्यात्) हस्ते जलमादाय, देशकालौस्मृत्वा,

ममाऽस्य पुत्रस्या ऽमुक शर्मणः देव–पितृ-ऋणाऽपाकरणहेतुधर्म्मप्रजोत्पादनसिद्धिद्वारा–श्रीपरमेश्वर–प्रीत्यर्थं विवाह-संस्कार-कर्म करिष्ये, तत्राऽऽदौ निर्विघ्नतार्थं गणपति पूजनं, मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं, पुण्याहवाचनानि च करिष्ये। इति वरपक्षे सङ्कल्पः ॥१॥ कन्या-विवाह-पक्षे।

तु जातकर्म्मादिलोपे। हस्ते हेमरजतादिद्रव्यं गृहीत्वा, विप्रं सम्पूज्य।

देशकालौ स्मृत्वा ममाऽस्याः कन्यायाः गर्भाधानादिचूडान्त–संस्कारलोपजन्यप्रत्यवायपरिहारार्थं प्रतिसंस्कारमर्धकृच्छ्रं, चूडायाः कृच्छ्रं, तत्प्रत्याम्नाय गोनिष्क्रयी

मण्डप-विधान—कन्या के हाथ से सोलह हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप बनाकर उससे नैॠत्य कोण में मण्डप से मिला हुआ उत्तर-द्वार वाला कौतुकागार होना चाहिए। यदि उतना स्थान न मिले तो जितना मण्डपयोग्य प्राप्त हो 'उसके नैॠत्य कोण में कौतुकागार बना लेवे। और मण्डप के बाहर ईशानकोण में मण्डप से मिलित वर के हाथ से चार हाथ लम्बी चौड़ी वेदी बनानी चाहिए। वेदी की मिट्टी शुद्ध हो और वेदी रमणीय होनी चाहिये ॥ स्त्रीपुंसयोस्तु सम्बन्धो,वरणं प्राग्विधीयते। वरणाद् ग्रहणं पाणेः, संस्कारो द्विजलक्षणः ॥इति शुभम्॥

भूतं यथाशक्ति इदं हिरण्यादिद्रव्यमग्नि-दैवतममुकगोत्राया ऽमुक शर्म्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे * ॥

इति सङ्कल्प्य, साक्षतोदकं द्रव्यं ब्राह्मणाय दद्यात् ॥

'स्वस्तीति'-प्रतिवचनम् । पुनः देशकालौ संकीर्त्य कन्यादाता प्रतिज्ञा-सङ्कल्पं कुर्यात्॥ अद्यामुकगोत्रो ऽमुक शर्म्माहं श्रुतिस्मृति पुराणोक्त फल प्राप्ति कामनासिद्ध्यर्थं ममाऽस्याः कन्यायाः भर्त्रा सह धर्मप्रजोत्पा-दनगृह्यपरिग्रह-धर्माचरणेष्वधिकारसिद्धि-

* विवाह के दिन से पहले तीन, छः, नौ, दिन छोड़कर शुभ दिनमें कन्या तथा वरके 'हल्दी-हाथ'-आदि कराके, कन्या के हाथ से १६ या १२ या १० या ८ परिमाण मण्डप चतुर्द्वार के बनाकर, उसमें कन्या के ४ हाथ की चोखुंठी-वेदी पूर्व को नीचे केला आदि से शोभित कर घर के बायीं ओर बनावे। मंगल स्नान के दिन नये- कपड़े, जेवर, तिलक (चन्दन) करके वर-कन्या के माता-पिता आसन में पिता की दाहिनी तरफ माता और उसके दाहिने वर या कन्या बैठे। आचमन, प्राणायाम करके वर या कन्या का जातकर्मादि-संस्कार न किया जाने के लिए व्रत या गोदान अथवा चांदीदान करके, ब्राह्मणको देवे। संस्कार लोप प्रायश्चित्त किये बिना विवाह ठीक नहीं होता। नान्दीश्राद्ध (नवः दैवत्य श्राद्ध) करना तो सभी जगह प्रचलित ही है।

द्वारा—श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थं विवाह संस्कारं करिष्ये ।। तदङ्गतया विहितं निर्विघ्नतार्थं गणपतिपूजनं, मातृपूजनं, नान्दीश्राद्धं, स्वस्ति—पुण्याह—वाचनं, ग्रहपूजनं कलशस्थापनं, दिग्रक्षणञ्च करिष्ये ।।

इति-संकल्प्य, गणेशपूजादिकर्म कुर्य्यात् ।। ततः ।।

ॐ अद्येत्यादि० अमुकगोत्रोऽमुकराशिरमुकशर्माऽहं, कन्यादान प्रतिग्रहार्थं ग्रहागतं (१) स्नातकवरं (२) मधुपर्के—णार्चयिष्ये ।।इति सङ्कल्प्य ।। उत्तराभिमुखः स्वयं (३) पूर्वाभिमुखं वरं, (काष्ठपीठे समुपवेश्य) ॐ साधु भवनास्तामिति—प्रजापतिऋ षि—र्यजुश्छन्दो, ब्रह्मादेवता, वरार्चने-विनियोगः ।। ॐ साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो

१—वर के द्वितीय विवाह में "स्नातक" यह शब्द न कहना चाहिये २-मधुपर्क विधि वर की शाखा में कही हुई करनी चाहिये ।। ३—सर्वत्र प्राङ्मुखो दाता प्रतिग्राही उदङ् मुखः । एष एव विधिर्दाने कन्यादाने विपर्ययः ।।

भवन्तमिति ब्रूयात् ॥ 'अर्चयेत्' च वरो ब्रूयात् ॥ विष्टरमादाय-ॐ विष्टरो विष्टरो विष्टर इत्यन्येनोक्ते, ॐ विष्टरः प्रतिगृह्य-तामिति कन्यादाता वदेत्। ॐ विष्टरं * प्रतिगृह्णामि इत्यभिधाय, वरो विष्टरं गृहीत्वा ॐ वर्ष्मोऽस्मीत्याथर्वणऋषिरनु-ष्टुप्छन्दो, विष्टरो देवता, उपवेशने-विनि-योगः॥ ॐ वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्य्यः। इमं तमभितिष्ठामि यो मां कश्चा-भिदासति ॥

इत्यनेनासने उत्तराग्रं निधाय विष्टरोपरि वर उपविशति॥

तत्रोपविष्टे वरेयजमानः (जलञ्च कुंकुमं कैव तण्डुलाः पुष्पमेव च। सर्वौषधि

---

* पञ्चाशत्कुशको ब्रह्मा, तदर्धेन तु विष्टरः। ऊर्ध्वकेशो भवेद् ब्रह्मा लम्बकेशस्तु विष्टरः। दक्षिणावर्तको ब्रह्मा वामावर्तस्तुविष्टरः॥१॥ अर्थात् पचास कुश को दाहिनी ओर से ऐंठकर ब्रह्मा ओर पच्चीस कुशों को बायीं ओर से ऐंठकर विष्टर कहा जाता है॥ कर्काचार्य आदि के मतानुसार-एक विष्टरको ऊपर बैठने के लिए तथा एक विष्टर चरणों के नीचे रखने के लिए होना चाहिये। अमराचार्य के मतानुसार-काष्ठ आदि युक्त आसन के ऊपर आसन को विष्टर कहते हैं। उदाहरणार्थ वष्टरो विटपीदर्भमुष्टिः पीठाद्यमासनम्। इत्यमरः॥

समायुक्तं पंचांग पाद्यमुच्यते) पाद्यमञ्ज-
लिनादाय-ओ३म् पाद्यं पाद्यं पाद्यमित्यन्येनोक्ते,
ओ३म् पाद्यं प्रतिगृह्यतामिति दाता वदेत् ॥
ओ३म् पाद्यं प्रतिगृह्णामि (इत्यभिधाय यज-
मानाञ्जलितोऽञ्जलिना पाद्यमादाय वरः)
ओ३म् विराजो दोहो सीतिप्रजापतिर्ऋषिर्य-
जुश्छन्द, आपोदेवता, दक्षिणपादप्रक्षालने *
विनियोगः ॥ ओ३म् विराजो दोहोऽसि विराजो दोह मशीयमयि पाद्यायै विराजो दोहः

इति दाता वरस्य पूर्वं दक्षिणपादं प्रक्षाल्याऽनेनैव मन्त्रेण वामपादं प्रक्षालयेत् ॥ पुनः द्वितीय विष्टरमादाय-

ओ३म् विष्टरो विष्टरो विष्टरः । विष्टरः प्रतिगृह्यतामिति-दाता वदेत् ॥ विष्टरं प्रतिगृह्णामि ।

---

* ब्राह्मण-वर का पहले दक्षिण-चरण फिर वाम-चरण धोवे। अन्य वर हो तो पहिले बांया फिर दक्षिण धोवे। तदनन्तर पूर्ववत् द्वितीय विष्टर को लेकर उत्तर को उसका अग्रभाग करके चरणोंके नीचे रख लेवे कोई कहते हैं कि-वर कलश-द्रव्य देकर फिर दूसरा विष्टर ग्रहण करे ॥ कुकुलं च शीलं च सनाथता च विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च एतान् गुणान् सप्तविचिन्त्यदेया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम् ॥

वरो वदेत् ॥ विष्टरं गृहीत्वा च वामचरणस्याधस्तादु-त्तराग्रं स्थापयेत् ॥

तत्र—मन्त्रस्तु-ॐ वर्ष्मोऽस्मीत्याथर्वण-ऋषिरनुष्टुप्छन्दो, विष्टरो देवता, उपवेशने-विनियोगः ॥ ॐ वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्य्यः । इमं तमभितिष्ठामि यो मां कश्चाभिदासति ॥ ततोऽर्घं करणम् ॥ आपः [1]क्षीरं कुशाग्राणि, दध्यक्षततिलास्तथा । [2]यवाः [3]सिद्धार्थकाश्चैव, अर्घोऽष्टाङ्गः प्रकीर्त्तितः ॥१॥ अन्यच्च ॥ जलं दधि घृतं क्षीरं [4]बदरी तण्डुलास्तिलाः । सिद्धार्थकास्तथा [5]दर्भा अर्घोऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः ॥२॥ प्रतिष्ठाप्य ॥ इत्थं दर्भान्वितमष्टाङ्गमर्घंकन्यादातास्व हस्तेच धृत्वा ॐ अर्घो ऽर्घोऽर्घः इत्यन्येनोक्ते ॥ ॐ अर्घः प्रतिगृह्यतामिति-दाता वदेत् ॥ अर्घं प्रतिगृह्णामीति-वरो वदेत् ॥

१-जल । २-जौ । ३-सफेद-सरसों । ४-बेर । ५-कुशा ।

तत्र दाता-ॐ आगतोऽसि बरश्रेष्ठ, सर्वकामार्थसिद्धये। प्रतिग्रहसमर्थोऽसि, ग्रहाणार्घं नमोऽस्तु ते ॥ इति ब्रूयात् ॥ ततो वरो यजमानहस्तादर्घंपात्रं ग्रहीत्वा ॥

ॐ आपः स्थेतिमन्त्रस्य सिन्धुद्वीपऋषिर्यजुश्छन्द, आपो-देवताऽर्घग्रहणे-विनियोगः ॥ ॐ आपः स्थयुष्माभिः सर्वान् कामानवाप्नुवानि ॥ ततो वरः स्ववामकरस्थमर्घमभिमन्त्रयते-ॐ समुद्रं व इत्याथर्वणऋषिर्बृहतीछन्दो, वरुणोदेवता, अर्घाऽभिमन्त्रणे-विनियोगः ॥ ॐ समुद्रं वः प्रहणोमि स्वां योनिमभिगच्छत। अरिष्टास्माकं व्वीरा मापरासे चिमत्पयः ॥ इति वरोऽर्घस्थं जलमैशान्यां-दिशि संत्यजेत् ॥ ततो दातृशिरसि किञ्चिदक्षतादिकं दद्यात्। (ततःकन्यादाताऽऽचमनीयमादाय ॐ मनो जूतिरिति-तत्सम्पूज्य तत्पात्रं कन्याप्रदः स्वहस्तेनादाय) आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्। इत्यन्येनोक्ते, 'आ-

चमनीयं प्रतिगृह्यता, मिति-दाता वदेत्॥ आचमनीयं प्रतिगृह्णामीति-वरो वदेत्॥ ततो वरो दातृहस्तादाचमनीयमादाय, ॐ आऽमागन्निति–परमेष्ठीऋषिर्बृहती-छन्द, आपो-देवता, आचमने-विनियोगः॥ ॐ आऽमाऽगन्यशसा स ँ सृज व्वर्चसा॥ तम्माकुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनाम-रिष्टिं तनूनाम ॥ इति वरः सकृदाचम्य स्मार्ताचमनञ्च कृत्वा, वारद्वयं तूष्णीमा-चामेत्॥ * ततः कांस्यपात्रे दधिमधुघृतानि कांस्यपात्रपिहितानि दाताऽऽदाय (अन्यः) ॐ मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्क इत्यन्येनो-क्ते॥ ॐ मधुपर्कः प्रतिगृह्यतामिति-दाता वदेत्॥ मधुपर्कं प्रतिगृह्णामीति–वरो वदेत्॥ ॐ मित्रस्य त्वा–इति–प्रजापति-ऋषिः पंक्तिश्छन्दो, मित्रो-देवता, दातृ-

* मधुपर्कमें घृत १ भाग, दधि १ भाग, मधु २ भाग होना चाहिये· उक्तञ्च-सर्पिरेकं गुणं प्रोक्तं, शोधितं द्विगुणं मधु ॥ मधुपर्कविधौ प्रोक्तं सर्पिषा च समं दधि ॥ १ ॥ इति पराशरः ॥

करस्थमधुपर्काऽवेक्षणे-विनियोगः ॥ ॐ मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ॥ इति दातृ-करस्थं मधुपर्कं निरीक्ष्य वरः । ॐ देवस्य त्वेति बृहस्पतिराङ्गिरसऋषिर्यजुश्छन्दः, सविता-देवता, मधुपर्कग्रहणे-विनियोगः ॥ ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ॥ ततो वरो दातृहस्तान्मधुपर्कपात्रं गृहीत्वा, स्ववामहस्ते निधाय। ॐ नमः श्यावास्येति-प्रजापतिः ऋषिर्यजुश्छन्दः, सविता-देवता, स्वहस्तगतमधुपर्कमिश्रणे-विनियोगः ॥ ॐ नमः श्यावास्यायान्नशने यत्तऽआविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि ॥

इत्यनामिकया त्रिः प्रदक्षिणमालोड्य, किंचिदनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां भूमौ मधुपर्कं तूष्णीं क्षिपेत् एवं पुनर्द्विवारं निरीक्षणमालोडलञ्च कृत्वा त्रिः प्राश्नाति ॥

ॐ यन्मधुन-इति कुत्सऋषिर्जगतीछन्दो, मधुपर्को-देवता, मधुपर्कप्राशनेविनियोगः ॥ ॐ यन्मधुनो मधव्यं परम ँ रूपमन्नाद्यं

तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥

इति अनामिकाऽङ्गुष्ठाभ्यां त्रिर्मधुपर्कं वरः प्राश्नीयात्। प्रतिप्राशने चैतन्मन्त्रं पठेत् ॥ ततोमधुपर्कशेषमसंचरदेशे क्षिपेत्। ततो द्विराचम्य वरः द्वाभ्यां हस्ताभ्यां सर्वाङ्गानि स्पृशेत् ॥

तत्र वरपठनीयमन्त्राः ॥ ॐ वाङ् मऽआस्येऽस्तु (तर्जनीमध्यमा ऽनामिकाभिः मुखं स्पृशेत्) ॐ नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ (अङ्गुष्ठप्रदेशिनीभ्यां नासिकारन्ध्रद्वयम्) ॐ अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ (अङ्गुष्ठा ऽनामिकाभ्यां युगपच्चक्षुषी) ॥ ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु (तथैवमन्त्रावृत्या पृथक्) ॥ ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु (अङ्गुल्यग्रैः) ॥ ॐ ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु (असंहताभ्याङ्गुलिभ्याम्) ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥ इति सर्वाङ्गानि समालभ्य, वरसमीपे भूमावुदग्रान् दर्भानास्तीर्य, दाता वर-

हस्ते गोनिष्क्रयद्रव्यं दत्वा पठेत् ॥ ॐ गौ-र्गौर्गौः ततो वरः द्रव्यं गृहीत्वा गां स्तुत्वा चास्तुं तृणानि दत्वा (१) पठेत्-तत्र-मन्त्रः-ॐ मातेति-ब्रह्मर्षिस्त्रिष्टुप्छन्दो, गौर्देवता, गोरभिमन्त्रणे-विनियोगः ॥ * ॐ माता रुद्राणां दुहिता व्वसूना ७ स्वसादित्याना-ममृतस्य नाभिः । प्रणुव्वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं व्वधिष्ट मम चामुष्य यजमानस्य च पाप्मा हतः ॐ ॥

---

* कुछ महानुभाव इस विधि एवं लिखित वाक्य को न समझ कर गोरूपवध करने में इस मन्त्र को लगाते हैं, फिर उसका प्राय-श्चित करते हैं। किन्तु यह कदापि उचित नहीं। कारण कि मन्त्र में "मागामनागामदिति-व्वधिष्ट" अर्थात् 'निपराध-गौ को मत मारो-ऐसा कहा है। तो फिर गौ की रक्षा एवं उसे तृण देना ही सर्वमान्य है, यहां तो गौ का पूजन स्तुति पालन करना ही बताया है।

यह गौ एकादश-रुद्रों की माता है, आठ वसुओं की कन्या है बारह-आदित्यों की बहिन है और अमृत का आश्रय है, इसलिये आप यह गौ मुझे दें। "इस गौ के दर्शन से मुझ वर का तथा दाता का पाप नष्ट हुआ" ये वाक्य धीरे से वर कहे।

यह भी लिखा है कि ब्राह्मण वर हो तो गोदान, क्षत्रिय हो तो भूमिदान, वैश्य हो तो अश्वदान देवे। इसके अभाव में सोना चांदी आदि दान करे।

इत्युपांशु पठेत् । 'उत्सृजत तृणान्यत्तु'-इत्युच्चैरुक्त्वा वरः स्वहस्तगतं द्रव्यं कुशोपरि उत्सृजेत् । दाता हस्ताभ्यां जलाक्षतंपुष्पाणि नीत्वा मधुपर्कीयगोदानं कुर्यात् ॥ अथवा ॥ तदुचितमूल्येन कुर्यात् ॥ ॐ अद्येत्यादि० अमुकोऽहं मधुपर्कोपयोगि-गोरुत्सर्गकर्मणः साद्गुण्यार्थे गोप्रत्याम्नायीभूतं सुवर्णं तन्निष्क्रयीभूतं रजतं वा ब्राह्मणाय वराय दास्ये ॥ ॐ तत्सत् ॥

ततो वरः दानभारदूरीकरणार्थं संङ्कल्पपुरः-सरंगोदानं तदुचितद्रव्यं वा ब्राह्मणाय [१] दद्यात् ॥

ॐ अद्येत्यादि०—अमुकोऽहं मधुपर्कोपयोगि—गोप्रतिग्रहदोषदूरीकरणार्थं तत्प्रत्याम्नायीभूतं सुवर्णं रजतद्रव्यं वा तुभ्यं दास्ये॥

इति-गोदानं, तदुचितमूल्यं वा आचार्याय दत्वा, दाता वरं वृणुयात् ॥

तत्र वरणद्रव्यम्—'स्वर्णांगुलीयवासांसि, फलं भाजनमासनम् । यज्ञोपवीतं माला च, द्रव्यं वरसमर्हणे ॥ पाद्यादीनि समर्पयामि॥

स्वर्णांगुलीय सहितवासोभ्यो नमः ।। इति सम्पूज्य ।। ॐ अद्येत्यादि०अमुकोऽहं,ममास्याः कन्यायाबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणपूर्वक-दाम्पत्यैश्वर्यफलाऽभिवृद्धये, करिष्यमाणविवाहसंस्कारकर्मणि एभिः स्वर्णाङ्गुलीयवासोभिरग्निबृहस्पतिदैवतैरमुकगोत्र–प्रवरशाखिनममुक–वेदाध्यायिनममुक–शर्माणं ब्राह्मणं विष्णुरूपिणं वरं कन्यादानप्रतिग्राहकत्वेन त्वां वृणे ।।

इति वरणद्रव्यं वराय प्रयच्छेत् ।। ततोवरः–

वृतोऽस्मीति' प्रतिवचनान्तरं,ॐ कोऽदात् कस्माऽअदात् कामोऽदात् कामायादात् । कामो दाता कामः प्रतिगृहीता कामैतत्ते ।।

इति पठेत् ।। ततः कन्यावरौ वस्त्राणि मन्त्रपठनपूर्वकं परस्परं परिदधति ।। कन्या–

ॐ जराङ्गच्छेति-प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, वासो-देवता,अधो वासः परिधाने-विनियोगः ।। ॐ जराङ्गच्छ परिधत्स्व

व्वासो भवाकृष्टीनामभि शस्ति पावा ॥ शतञ्च जीव शरदः सुवर्च्चा रयिञ्च पुत्राननु संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व व्वासः ॥ इति कन्याऽधोवस्त्रं परिधाय ॥ ॐ याऽअकृन्तन्निति—प्रजापतिर्ऋषिस्त्रि॰ष्टुप्छन्दो, वासो—देवतोत्तरीयपरिधाने-विनियोगः ॥ ॐ याऽअकृन्तन्नवयन्याऽअतन्वत ॥ याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व व्वासः ॥ इति कन्या स्वोत्तरीयं वस्त्र परिधाय, द्विराचमनं कुर्यात् ॥ ततो वरः॥ ॐ परिधास्यै—इत्याथर्वणऋषिः, पंक्तिश्छन्दो, वासो-देवताऽधोवासः परिधाने विनियोगः ॥ ॐ परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि ॥ शतञ्च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥ इत्यधोवस्त्रं वरः परिधाय ॥ ॐ यशसामित्यार्थर्वणऋषिः, पंक्तिश्छन्दो,

वासो—देवता, कञ्चुकादि-परिधाने—विनियोगः ॥ ॐ यशसामाद्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती ॥ यशोभगश्च मा विन्दद्य शो मा प्रतिपद्यताम् ॥ इति वरः कञ्चुकं परिधापयेत् ॥ द्विराचम्य ॥

× ॐ युवासुवासा—इति विश्वामित्रऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, यूपोदेवतोष्णीषपरिधाने-विनियोगः ॥ [ॐ युवासुवासाः परिवीतऽआगात्सऽउ श्रेयान्भवति जायमानः । तन्धीरासः कवयऽउन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः । इत्युष्णीषं वरः शिरसि परिदध्यात्] ॥ ततो-वरायाऽलङ्करणानि दद्यात् ॥ हिरण्यगर्भसम्भूतं, पवित्रं चाङ्गुलीयकम् । भाद्रपदं प्रदास्यामि, प्रीणातु कमलापतिः ॥ १ ॥ क्षीराऽब्धिमथने पूर्वं चोद्धृतं कुण्डलद्वयम् । श्रिया सह समुद्भूतं, ददे श्रीः प्रीयतामिति ॥२॥ अशून्यं शयनं नित्यमशून्यामुन्नति श्रियम् । सौभाग्यं देहि मे नित्यं शय्यादानेन केशव ॥३॥ हंसतूलीसमायुक्तां, मृद्वीं खट्वामलङ्कृताम् । सर्वोपस्करणोपेतां, शिवयय्यां निवेदये ॥ ४ ॥ परापवादपैशुन्यादभक्ष्यस्य च भक्षणात् । उत्पन्नपापं दानेन, ताम्रपात्रस्य नश्यतु ॥ ५ ॥ यानि पापानि काङ्क्ष्याणि, कालोत्थानि कृतानि वा । अगम्या-कांस्यपात्र-प्रदानेन, तानि नश्यन्तु मे सदा ॥ ६ ॥

× यह विधि कहीं किसी देश विशेष में है सर्वत्र नहीं । सूत्र ग्रन्थों में इसका वर्णन नहीं है ।

गमनं चैव, परदाराऽभिमर्शनम् ॥ रौप्यपात्रप्रदानेन, तत्पापं मे व्यपोहतु ॥ ७ ॥ दीपस्तमो नाशयति, दीपः कान्ति प्रयच्छति । तस्माद्दीपप्रदानेन, मम वंशप्रवर्धनम् ॥ ८ ॥ वस्त्राणां छादनं यस्मादतः स्थावरजङ्गमम् । तस्मादेतत्प्रदानेन, मम सन्तु मनोरथाः ॥ ९ ॥ ततो—धूल्यर्घदक्षिणां दद्यादिति ॥ ततोऽग्निस्थापनम् ।

तत्र हस्तमात्रभूमिं कुशैः परिसमुह्य, तान् कुशानैशान्यां परित्यज्य, गोमयोदकेनोपलिप्य, जलेनाभ्युक्ष्य, स्रुवमूलेन प्रागग्रास्तिस्रो रेखा विलिख्य, उल्लेखनक्रमेणाऽनामिकांगुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य पुनर्जलेनाभ्युक्ष्य, तूष्णीं काँस्यपात्रोपनीतं योजकनामानं वन्हि स्वाभिमुखं वेद्यामग्निकोणादानीय संस्थापयेत् ॥ ॐअग्निं दूतं पुरोदधे

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ १ ॥ वैवाहिको विधिः स्त्रीणां, संस्कारो वैदिकःस्मृतः॥ न कन्यायाः पिता विद्वान्,गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि।गृह्णञ्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥२॥ क्रयक्रीता च या कन्या पत्नी सा न विधीयते । तस्यां जाताः सुतास्तेषां पितृपिण्डं न विद्यते ॥३॥ कन्यायां दत्तशुल्कायां, ज्यायांश्चेद्वर आव्रजेत् । धर्मार्थकामसंयुक्तं, वाच्यं तत्रानृतं वदेत् ॥ ४ ॥

हृव्यवाहमुपब्रुवे देवाँ ॥२ आसादयादिह ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः,अग्ने ! इहागच्छेह तिष्ठ* ॥

ॐ प्रसीदवन्हे सन्ताचें, कृशानो हृव्यवाहन । अग्ने पावक शुक्रार्यनाष्टमाक नमोऽस्तु ते । इत्यग्नि सम्प्राथ्यं, रक्षार्थं किञ्चिन्नियुज्य,वेदीशानभागे दीपञ्च प्रज्वालयेत् ।

❀ अथ कन्यादानविधिः ❀

तत्र देशाचाराद्वाद्यघोषपुरस्सरो वरः कौतुकागारं गच्छन् दातृद्वारा कन्यावरान्तरे वस्त्रं दद्यात् ॥

अथ कन्यापिता 'परस्परं समञ्जेऽथामिति' प्रैषपूर्वकं सम्मुखौ कुर्यात् । वरस्तु सम्मुखीभूतः सन् मन्त्रं पठति ॥ समञ्जन्त्विति-आथर्वणऋषिरनुष्टुप्छन्दो, लिङ्गोक्ता-देवता, परस्पर समञ्जने विनियोगः ॐ समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ । सम्मातरिश्वासन्धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ । इतिवरः पठेत् । ततो वरकन्ययोर्हस्तेन गणपत्यादिपञ्चाङ्ग देवता-पूजनञ्च कारयितव्यम् ॥ ततआचारात्

---

* कुश कण्डिका विधि भाषा में नामकर्म्म संस्कार में दे दी गई है अतः आवश्यकतानुसार वहां से देख कर इसका प्रयोग कर लें।

गोत्रोच्चारणं पूर्वं वरस्य, पश्चात्कन्यायाश्चविप्रः करोति ॥ ततो वरपक्षीयः ॥ ब्रह्मा वेदपतिः शिवः पशुपतिः सूर्यो ग्रहाणां पतिः, शक्रो देवपतिर्हविर्हुतपतिः स्कन्दश्च सेनापतिः ॥ विष्णुर्यज्ञपतिर्यमः पितृपतिर्ज्योतिस्पतिश्चन्द्रमाः, सर्वे ते पतयः सुमेरुसहिताः, कुर्वन्तु वां मङ्गलम् ॥ १ ॥ (वरपक्षीय) अमुकगोत्रस्या ऽमुक प्रवरस्या ऽमुकशाखिनो ऽमुकवेदाध्यायिनो ऽमुक नाम शर्म्मणः प्रपौत्रः, पौत्रः, पुत्रः प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये, स्वस्ति सम्वादेषूभयोर्वृद्धिः॥ ततो कन्या पक्षीयः ॥ मत्स्यः कूर्मतनुर्वराहनृहरी श्रीवामनो भार्गवः । तद्वद्दाशरथिश्च यादवपतिर्बुद्धोऽथ कल्किस्तथाः । अन्ये चाऽपि सनत्कुमारकपिलप्राणाः

कोशल्या विशदालवालजनितः सीतालताऽऽलिगितः, सिक्तः पंक्तिरथेन सोदरमहाशाखाऽभिसंवर्धितः । रक्षस्तीव्रनिदाघपाटनपटुश्छायाश्रितानन्दकृत्, युष्माकं स त्रिभूतयेऽस्तु भगवान् श्रीरामकल्पद्रुमः ॥१॥

कलांशाः हरेः, सर्वे ते कलि कल्मषाप हरणाः कुर्वन्तु ते मंगलम् ।।२।।(कन्या-पक्षीय)अमुकगोत्रस्या ऽमुक प्रवरस्या ऽमुकशाखिनो ऽमुक वेदाध्यायिनो ऽमुकनामशर्म्मणः प्रपौत्री पौत्री, पुत्री प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये, स्वस्ति सम्वादेषूभयोर्वृद्धिः ।। ततः वरपक्षीयः ।। आदित्योऽग्नियुतः शशी सवरुणो भौमः कुवेरान्वितः,सौम्यो विश्वयुतो गुरुः समघवा देव्या युतो भार्गवः ।। सौरिः केतुयुतः सदासुर वरो राहुर्भुजंगेश्वरो, मांगल्यं सुखःदुख-दाननिरताः, कुर्वन्तु सर्वे-ग्रहाः ।। ३ ।। (वर-पक्षीय) अमुकगोत्रस्या ऽमुक प्रवरस्या ऽमुकशाखिनो ऽमुकवेदाध्या

देवक्यां यस्य सूतिस्त्वमगात विदिता रुक्मिणी धर्मपत्नी, पुत्राः प्रद्युम्नमुख्याः सुरनरजयिनो वाहनं पक्षिराजः। वृन्दारण्यं विहारो व्रजपुरवनिता वल्लभा राधिकाद्याश्चक्रं विख्यातम स जयति जगतां स्वस्तये नन्दसूनुः ।। २ ।। रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामाभीरवामभ्रुवामभ्यर्णं परिरभ्य निर्भरमुरः प्रेमान्धयाराधया। साधु त्वद्वदनं सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुतिः, व्याजालिंगनचुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातु वः ।। ३ ।।

यिनो ऽमुक नाम शर्म्मणः प्रपौत्रः, पौत्रः, पुत्रः प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये, स्वस्तिसम्वादेषूभयोर्वृद्धिः ।। ततो कन्या पक्षीयः। गङ्गा सिन्धुसरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा, काबेरी सरयू महेन्द्रतनया चर्मण्वती वेदिका ।। क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता च या गण्डकी। पूर्णाः पुण्यजलैः समुद्रसहिताः कुर्वन्तु ते मंगलम् ।।४।। (कन्या-पक्षीय) अमुक गोत्रस्या ऽमुक प्रवरस्या ऽमुक शाखिनी ऽमुक वेदाध्यायिनो ऽमुकनामशर्म्मणः प्रपौत्री, पौत्री, पुत्री प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये स्वस्ति सम्वादेषूभयोर्वृद्धिः ।। ततः वरपक्षीयः ।। आयुः द्रोणसुते श्रियो दशरथे शत्रुक्षयो राघवे। ऐश्वर्यं नहुषे गतिश्चपवने मानश्च दुर्योधने। शौर्यं शान्तनवे बलं हलधरे सत्यञ्च कुन्तीसुते। विज्ञानं विदुरे भवन्तु भवतः कीर्तिश्च नारायणे ।।५।। (वर–पक्षीय)अमुकगोत्रस्या

ऽमुक प्रवरस्या ऽमुकशाखिनो ऽमुकवेदाध्या-
यिनो ऽमुक नाम्न शर्म्मणः प्रपौत्रः, पौत्रः, पुत्रः
प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये, स्वस्ति सम्वादे-
षूभयोर्वृद्धिः ।। ततो कन्यापक्षीयः ।। आयु-
ष्मान् भव पुत्रवान् भव सदा, श्रीमान् यश-
स्वी भव । प्रज्ञावान्भव भूरिभूतिकरणे
दानैकनिष्ठो भव । तेजस्वी भव वैरिदर्प-
दलने व्यापारदक्षो भव, श्रीशम्भोर्भवपाद-
पूजनरतः सर्वोपकारी भव ।। ६ ।। (कन्या-
पक्षीय) अमुक गोत्रस्या ऽमुक प्रवरस्या ऽमु-
कशाखिनो ऽमुक वेदाध्यायिनो ऽमुकनाम-
शर्म्मणः प्रपौत्री, पौत्री, पुत्री प्रयतपाणिः
शरणं प्रपद्ये, स्वस्ति सम्वादेषूभयोर्वृद्धिः ।।
ततः वरपक्षीयः ।। आयुर्बलं विपुलमस्तु
सुखित्वमस्तु सौभाग्यमस्तु विशदा तव
कीर्तिरस्तु । श्रेयोऽस्तु धर्ममति रस्तु रिपु-
क्षयोऽस्तु, सन्तानवृद्धिरभिवाञ्छितसिद्धि-
रस्तु ।। ७ ।। (वर-पक्षीय) अमुकगोत्रस्या

ऽमुक प्रवरस्या ऽमुकशाखिनो ऽमुकवेदाध्या-
यिनो ऽमुक नाम शर्म्मणः प्रपौत्रः, पौत्रः,
पुत्रः प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये, स्वस्ति
सम्वादेषूभयोर्वृद्धिः ॥ ततः कन्यापक्षीयः॥
दीर्घायुर्भव-जीव वत्सरशतं नश्यन्तु सर्वा-
पदः स्वस्थः सम्भव मुञ्च चञ्चलधियं
लक्ष्म्यैकनाथो भव ॥ किं ब्रूमो भृगुगौतमा-
त्रिकपिलव्यासादिभिर्भाषितं, यद्रामस्य
पुराऽभिषेकसमये तच्चाऽस्तुते मंगलम् ॥८॥
(कन्या-पक्षीय) अमुकगोत्रस्या ऽमुक प्रवर-
स्या ऽमुकशाखिनो ऽमुकवेदाध्यायिनोऽमुक-
नामशर्म्मणः प्रपौत्री, पौत्री, पुत्री प्रयतपाणिः
शरणं प्रपद्ये, स्वस्ति सम्वादेषूभयोर्वृद्धिः ॥
यावदिन्द्रादयो देवा, यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
यावद्धर्मक्रियालोके तावद्भूयात् स्थिति-
स्तव ॥९॥ ततः ॐ अद्येत्यादि० विवाह-
कर्मणि द्विजद्वाराकारितस्य शाखोच्चा-
रणकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यैच इमां दक्षिणां

ब्राह्मणाय दास्ये ॥ ॐतत्सत् ॥

इति गोत्रोच्चारणदक्षिणां दद्यात् ॥ ततो लग्ने समायाते ग्रहदानानि कुर्यात् ॥ ततः दाता स्वयमुत्तराभिमुखः, पश्चिमाभिमुखी कन्यां, पूर्वाभिमुखाय वराय विधिना दानं दद्यात् * ।

दाताऽहं वरुणो राजा, द्रव्यमादित्यदैवतम् । वरोऽसौ विष्णुरूपेण, प्रतिगृह्णात्वयं विधिरिति वरं सम्प्राथ्र्य, कन्यां सम्पूजयेत् ॥ ॐ श्रीश्चते० । इति गन्धविलेपनम् ॥ ॐ अम्बेऽ अम्बिकेबालिके न मानयति कश्चचन, ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम् ॥ इत्यक्षतञ्च ॥ ॐसमख्ये देव्या धिया संदक्षिणयोरुचक्षसा । मा मऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहं तव व्वीरं व्विदेय तव देवि संदृशि ॥ इति—पुष्पादिकं दत्वा ॥ ततः कन्याप्रदकर्तृकं ग्रन्थिबन्धनं कङ्कणबन्धनञ्च ॥

---

* दीर्घकाष्ठे शिलापृष्ठे, नौकायां शकटे तटे । विवाहे बहुसम्पर्के स्पर्शदोषो न जायते ॥ १ ॥ अतः इन स्थानोंमें स्पर्श-दोष नहीं माना जाता

अथ कन्यादानम् ॥ कन्यादाता शंखस्थ दूर्वाऽक्षतफल पुष्पचन्दनजलान्यादाय, जामातृदक्षिणकरोपरि कन्यादक्षिण-करं निधाय, कन्यादान संकल्पं कुर्यात ॥

ॐ अद्य तत्सद्ब्रह्म ॥ अथाऽनन्तवीर्यस्य श्रीमन्नारायणस्याऽचिन्त्याऽपरिमिताऽनन्त शक्तिसमन्वितस्य स्वकीयमूलप्रकृतिपरम-शक्त्याप्रक्रीडमानस्य सच्चिदानन्दसन्दोह-रूपे स्वात्मनि सर्वाऽधिष्ठाने स्वज्ञानकल्पि-तानां महाजलौघमध्ये परिभ्रमसमाणानामने-ककोटिब्रह्माण्डानामेकतमेऽस्मिन् ब्रह्माण्ड-खण्डे अव्यक्तमहदहङ्कारपृथिव्यप्तेजोवा-य्वाकाशादिभिर्दशगुणोत्तरैरावरणैरावृते, आधारशक्तिश्रीकूर्मवराहधर्मानन्ताष्ट- दि-ग्गजादि प्रतिष्ठिते, ऐरावत पुण्डरीक-वामन-कुमुदाञ्जन-पुष्पदन्त-सार्वभौम-सुप्र-तीकाऽ ऽख्याऽष्टदिग्दन्तिशुण्डदण्डोद्दण्डिते, तदेतद्ब्रह्माण्डान्तर्गतभूर्लोक भुवर्लोक--स्व-र्गलोक--महर्लोक-जनलोक-तपोलोक--सत्य-

लोकाऽऽख्यानां-सर्वज्ञ-सर्वशक्ति-सर्वोत्तम-सर्वाधिप-श्रीचतुर्मुखप्रभृति स्वस्वलोकाऽधिष्ठातृ-पुरुषाऽधिष्ठितानामधोभागे, फणिराजराजस्य शेषस्य सहस्रफणमण्डलैकफणोपरि, सर्षपकणायमानमहीमण्डलान्तर्गताऽतलवितल-सुतल तलातल-महातल-रसातल-पातालानां स्व-स्वाधिष्ठानाऽधिष्ठितानामुपरिभागे, सुमेरु-मन्दराचल-निषधहिम गिरिशृङ्गवद्धेमकूटदुर्धर्षपारियात्रशैलमहाशैलमहेन्द्रसह्यमलयाचल -विन्ध्यर्ष्यमूक चित्रकूटमैनाकमानसोत्तरत्रिकूटोदयाचलपर्यन्ताऽनेकाभिधानादि -गणप्रतिष्ठितायाम्, जम्बूप्लक्षशाल्मलीकुशक्रौञ्चशाकपुष्कराख्यसप्तद्वीपवत्याम्, लवणेक्षुसर्पिर्दधिक्षीरशुद्धोदकाख्यसप्तसागरसमन्वितायाम्, समस्तभूरेखायाम्, कमल कदम्बगोलकाकारायाम्, वर्तमाने कुवलयकोशान्तर्गत-दलवद्विराजमाने, उत्तर कुरु हिर-

ण्यकरम्यकभद्राश्वकेतुमालेलावृतहरिवर्ष-किम्पुरुष-भारताख्य-नवखण्डवति जम्बूद्वीपे, सर्वेभ्यो व्यतिरिक्तसारवति, देवादिभिरप्यभीष्टसुकृतक्षेत्रभूतहेतुनाभिलषिततमे, अंगवंगकलिंग-काम्बोजसौवीरसौराष्ट्रमहाराष्ट्रवंगानलोत्कलमगधमालव -नेपाल-केरल-चोल-गौड़मल-पाञ्चाल -सिंहल-मत्स्य-द्रविड़-कर्णाटक- राटव-शूरसेन-कौंकण-टौंकण-पोण्डच पुलिन्ध्रान्ध्रद्रौणदशार्ण-विदेहविदर्भ - मैथिलि,-केकय-कौशल-कुन्तल-सैन्धव-जावल-सार्वसिन्धु-मद्र-मध्यदेशपर्वत-काश्मीर-पुष्ठाहार- सिन्धुपारसिकगान्धार-वाह्नीकप्रभृतिबहुविधदेशविशेषसम्पन्ने, दण्डकारण्य-नैमिषारण्य-चम्पकारण्य-बदरिकारण्य कामिकारण्य--धर्मारण्य-- छेतारण्य--कामुकारण्य-सैन्धवारण्यप्रभृत्यनेकारण्यवति, श्रीगङ्गा--यमुना--सरस्वती--गोदावरी--नन्दा-

मन्दाकिनी—कौशिकी, नर्मदा, सरयू, कर्मनाशा, चर्मण्वतीक्षिप्रा-वेत्रवती—कावेरी—फल्गू—मार्कण्डेयी—रामगंगा--शतद्रु--विपाशैरावती--चन्द्रभागा--वितस्ता---सिन्धु—दृषद्वतीप्रभृत्यनेकनदीनदवति, कुरुक्षेत्र, हरिद्वारक्षेत्र-मालक्षेत्रान्विते भारतखण्डे तत्राऽपि, मध्यरेखायां कुरुक्षेत्रात्पश्चिमे भागे, शतद्रु—विपाशातीरयोर्मध्ये, पुण्यक्षेत्रे, बदरिकाश्रमादिके, गर्गवराहाद्याचार्य गणितसंख्यायां श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्धेऽह्नो द्वितीययामे, तृतीयमुहूर्ते, श्रीश्वेतवाराहनाम्नि प्रथमकल्पे, स्वायम्भुव—स्वारोचिषोत्तमतामस--रैवत — चाक्षुषेतिषण्मनूनामतिक्रम्यमाणे, सम्प्रति सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे, कलियुगस्य प्रथमचरणे, बौद्धावतारे, श्रीमन्नृपतिविक्रमाऽर्कसमयात् सम्वत्सराणां समयेनाऽतिक्रान्तानां षष्ट्यब्दानां मध्येऽमुकनामसम्वत्सरे ऽमुकायनेऽमुकर्तौ,

मासे, पक्षे, वारे, नक्षत्रे, योगे, करणे, सुमुहूर्तेऽमुकराशिस्थिते, सूर्य्ये, चन्द्रे, भौमे, बुधे, गुरौ, शुक्रे, शनौ, राहौ, केतौ,—एवं ग्रहगुणगणविशेषण विशिष्टायाम्, शुभपुण्यतिथावऽमुकगोत्र—प्रवरराशिरमुकशर्माऽहं, सपत्नीकोऽहम् मुकगोत्रस्याऽमुकप्रवरस्याऽमुकशाखिनोऽमुकवेदाध्यायिनोऽमुकशर्मणः प्रपौत्राय, पौत्राय, पुत्राय, आयुष्मते विष्णुस्वरूपिणे कन्यार्थिनेऽमुकशर्म्मणे वराय अमुकगोत्रस्यऽमुकप्रवरस्याऽ मुकशाखिनोऽमुकवेदाध्यायिनोऽमुकशर्मणः प्रपौत्रीं पौत्रीं पुत्रीमायुष्मतीं श्रीरूपिणीं वरार्थिनीममुकनाम्नीमिमाँ कन्यां, यथाशक्त्यलंकृतां, यथाशक्त्यु पकल्पितयौतकयुतां, प्रजापतिदैवताँ, मम पुराणोक्तशतगुणीकृतज्योतिष्टोमातिरात्रसमफलप्राप्तिपूर्वकं, मम समस्तपितृणां निरतिशयानन्दब्रह्मलोकावाप्त्यादिफलावाप्तिपूर्वकं श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये च तथाऽ-

तेन वरेणास्यां कन्यायामुत्पादयिष्यमाण-सन्तत्या दशपूर्वान् दशापरान्मां चैकविंश-तिपुरुषान् पवित्रीकर्तुं देवाग्निगुरुब्राह्मण-सन्निधावरुन्धत्यादिसाक्षिकतया सह धर्म्माच-रणाय पत्नीत्वेन *ब्राह्मविवाहविधिना तुभ्यमहं सम्प्रददे ॥ प्रतिगृह्णातु भवान् ॥

इत्युक्त्वा दाता चोत्थाय सकुशाक्षतजलं कन्यादक्षिण-हस्तं वरस्य दक्षिणहस्ते समर्पयेत् × ॥ स च कन्याहस्त-मञ्चलग्रन्थिबन्धनपर्य्यन्तं न मुञ्चेत् ॥

'ॐ स्वस्तीति'—प्रतिवचनम् ॥ ततः

प्रार्थना ॥ कन्यां लक्षणसम्पन्नां, कनका—
भरणैर्युताम् ॥ ददामि विष्णवे तुभ्यं, ब्रह्म-
लोकजिगीषया ॥१॥ विश्वम्भराः सर्व—
भूताः, साक्षिण्यः सर्वदेवताः ॥ इमां कन्यां
प्रदास्यामि, पितॄणां तारणाय च ॥ २ ॥
गौरींकन्यामिमां विप्र यथाशक्तिविभूषि—

---

* सामान्यत. विवाह ब्राह्मादिक आठ-प्रकार के होते हैं। कई आचार्य सोलह प्रकार के कहते हैं।

× कन्यार्थं कनकं धेनु दासीरथमहा गृहाः। महीव्यश्वगजाः शय्या, महादानानि वै दश ॥ ये दश-महादान कन्यादान के साथ-साथ वर को दिये जाते हैं।

ताम् । गोत्राय शर्मणे तुभ्यं, दत्तां त्वं समुपाश्रय ॥३॥ कन्या लक्ष्मीः समाख्याता, वरो नारायणः स्मृतः ॥ तस्मात् कन्याप्रदानेन, विष्णुर्मे प्रीयतामिति ॥४॥ कन्ये! ममाग्रतो भूयाः, कन्ये मे देवि पार्श्वयोः। कन्ये मे पृष्ठतो भूयास्त्वद्दानान्मोक्षमाप्नुयाम् ॥५॥ श्रीनारायणप्रार्थना ॥ ॐ त्रैलोक्यनाथ ! देवेश ! सर्वभूतदयानिधे ! दानेनानेन सुप्रीतः, सदा शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

ततो वरः ॐ देवस्यत्वेति० ' मन्त्रेण कन्याग्रहणं कुर्यात्।

ततो दातावदेत् ॥ ममाऽन्वये समुद्भूता, पालिता वत्सराऽष्टकम् । तुभ्यं विप्र ! मया दत्ता, पुत्रपौत्रप्रवर्द्धिनी ॥१॥ धर्मे चार्थे च कामे च, त्वयेयमतिचारतः । न त्याज्याज्यहुतिरिव,भूमौ संसारभूतिदा ॥२॥ यस्त्वया धर्मश्चरितः, कर्तव्यश्चानया सह । धर्मे चार्थे च कामे च, नातिचर्या त्वया क्वचित् ॥३॥ ततो वरः कथयति ॥ अहं नातिचरामीह,

यदुक्तं भवता ततः । धर्मार्थकामकैः कार्यैर्देहच्छायेव सर्वदा ।। १ ।। ततो दाता—ॐ अद्येहामुकोऽहं कन्यादानकर्मणः साद्गुण्यार्थं फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थमिदं सुवर्णमग्निदैवतं विष्णुरूपाय वराय तुभ्यं सम्प्रददे ।।

दत्वा च परस्परं 'ॐ युवा सुवासा'-इति मन्त्रेण वरकन्ययोः कटिदेशे संलग्नमञ्चल* ग्रन्थि बध्नीयात् ।।

अत्र च देशाचाराच्छोलिकादानम् ।। (जीवत्पति-पुत्रवतीस्त्रीद्वारा कांस्यपात्रस्थद्रव्यं कन्याहस्तेन कदलीफलाम्रफलमातुलुङ्गफलद्राक्षाफलदाडिमीफल—पूगीजातीजम्बीरनारिङ्गनार केलबीजपूरपनसाऽक्षोटकफलानि सदिक्षुदण्डोत्तराणि सुवर्ण रौप्य

---

* शिष्टाचारादत्र। कन्या प्रदकर्तृकं ग्रन्थिबन्धनम् कन्याकासुदशे पार्श्वे, द्रव्यपुष्पाक्षतानि च । निक्षिप्य तानि संबद्ध्वा, वरवस्त्रेणसंयुजेत् ।।१।। वस्त्रैः संयोज्य तौ पूर्वं, कन्यादानं समाचरे दिति ।। ग्रन्थिबन्धन मन्त्रः ।। ॐ गणाधिपं नमस्कृत्य, नमस्कृत्य महेश्वरम् ः दम्पत्योः प्रीतिसिद्ध्यर्थं, ग्रन्थिबन्धं करोम्यहम् ।।१।। ॐएतन्ते देव सवितः० ।। यह विधी भी किसी देश विशेष में होती है, सर्वत्र नहीं ।

काँस्यादिपात्रस्थितानि जीवत्पतिपुत्रवती स्त्रीहस्तेन ब्राह्मणाय दद्यात)॥ ॐ याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः बृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्व ँ हसः ॥ "ॐ भद्रङ्कर्णेभिः शृणु०" ॥१॥ द्वितीयम्। कर्पूरलवङ्गवासितखण्डमरीचशर्करा घृतसंस्कृतानि मोदकघृतपूरकुण्डलिनीमल्लपूपामृतशष्कुलीफेणिकादीनि सर्वरसान्वितानि विविधपक्वान्नानिसुवर्णरौप्यकाँस्यादिपात्रस्थितानि जातमात्रजीवत्पुत्रवती-स्त्रीहस्तेन ब्राह्मणाय दद्यात् ॥ ॐअन्नपतेऽन्नस्यनो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्रप्रदातारन्तारिष ऽऊर्जन्नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥२॥ तृतीयम् ॥ माणिक्यमहानीलपद्मरागरत्नमुक्ताखचितहाटकमुकटहंसहंसावलिकेयूरहस्तांगुलीयपादकटकपादांगुलीयग्रैवेयकशिरोरत्नकाञ्चीवल्लीनासिकेयमालादि—विविधाऽऽभरणानि, सुव-

र्णरौप्यकाँस्यादिपात्रस्थितानि जातमात्र-
जीवत्पुत्रवतीस्त्रीहस्तेन सुवासिन्यै दद्यात् ॥
ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य
जातः पतिरेक ऽआसीत् । स दाधार पृथिवीं
द्यामुतेमाङ्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ॐ
रूपेणवोरूपमभ्यागातुं थोवोविश्ववेदा-
विभजतु । ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा
विश्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यै
॥३॥ चतुर्थम् ॥ हरितश्वेतपीतरक्तनील-
माञ्जिष्ठक्षौमकार्पासोर्णाम्बरसहितानि,
नानादिग्देशजातानि, बहुक्रयक्रीतानि,
सर्वदृष्टिमनोहराणि श्वेताम्बराणि, सुवर्ण-
जलसिञ्चनशोभितानि, सुवर्णरौप्यकाँ-
स्यादिपात्रस्थितानि, जातमात्रजीवत्पुत्र-
वतीस्त्रीहस्तेन कन्यायै दद्यात् ॥ ॐ यद-
श्वाय वासऽउपस्तृणन्त्यधीवासं या हिर-
ण्यान्यस्मै । सन्दानमर्व्वन्तं षड्वीशं प्रिया
देवेष्वायामयन्ति ॥ ॐ स्वर्णधर्मः स्वाहा,

स्वर्णार्कः स्वाहा, स्वर्णशुक्रः स्वाहा, स्वर्णज्योतिः स्वाहा, स्वर्णसूर्य्यः स्वाहा। केचित् पञ्चवारं सप्तवारं वा कुर्वन्ति॥ इति छोलिकाऽऽभरणदानम्॥

ततः कौतुकागाराद्वरः श्वशुरदत्तां कन्यां बहिर्निष्कासयेत्॥

ॐ यदैषीति अथर्वणऋषिः अनुष्टुप्छन्दो दिग्देवतानिष्क्रामणे विनियोगः।ॐ यदैषि मनसा दूरं दिशोनुपमानो वा हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु श्री * अमुकी देवीति।

पठन् वरस्तां निष्क्रामति॥ कन्यापिता 'परस्परं समीक्षेथाम्'-इति प्रेषयति। ततो वरकन्ययोः परस्परं निरीक्षणम्॥

ॐ अघोरचक्षुरित्यादिचतुर्णां मन्त्राणां प्रजापतिऋर्षिस्त्रिष्टुप्छन्दः कुमारीदेवता, परस्परनिरीक्षणे--विनियोगः॥ ॐ अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो

---

* अमुकी देवीत्यस्य स्थानेवधूनामगृह्णीयात्।

भव द्विपदेशञ्चतुष्पदे । ॐ सोमः प्रथमो
विविदे गन्धर्व्वो विविद उत्तरः । तृतीयो
ऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ॐ
सोमो ददद्गन्धर्व्वाय गन्धर्व्वो दददग्नये ।
रयिञ्च पुत्राँश्चादादग्निर्म्मह्यमथोऽइमाम् ।
ॐ सा नः पूषा शिवतमामैरयसा न ऽऊरू
उशती विहर । यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपं
यस्यामुकामा बहवो निविष्टचै ॥ इति
वरः पठन् परस्परं निरीक्षणं कुर्यात् ॥ ततो
बहिः मण्डपेषोडशस्तम्भान् प्रदक्षिणीकृत्य,
चतुर्हस्तां चतुरस्रां वेदिकाञ्च शुद्धोदके-
नोपलिप्य, तत्र तृणपूरककटं निधायाग्नेः
पश्चाद्वधूं स्वदक्षिणतः समुपवेश्य, वामतः
स्वयमुपविश्य,वरः सामग्रीं सम्पाद्य,पूर्वाऽ-
भिमुखः सङ्कल्पयेत् ॥ देशकालौ संकीर्त्या-
द्येत्यादि० असुकगोत्रो ऽमुकनाम शर्म्माऽ-
हम्, अस्या भार्यायाः पत्नीत्वसिद्धये वैवा-
हिक-होममहं करिष्ये ॥ तथा श्वसुरदत्ता-

मेनां कन्यां ब्राह्मविधिना संस्कारयिष्ये ॥ इति सङ्कल्पः ॥

ततो वेदीदक्षिणस्यां दिशि वारिपूर्णकलशं ऊर्ध्वं तिष्ठतो कस्यचिद् मौनिनो ब्राह्मण-दृढपुरुषस्यस्कन्धे ऽभिषेक-पर्यन्तं धारयेत् ॥ ततो ब्रह्मवरणम् ॥

पाद्यादीनि समर्पयामि ॥ वासोऽङ्गुलीयकाऽऽसनमूल्योपकल्पितवरणद्रव्याय नमः॥ सम्पूज्य ॥ ॐ ब्राह्मणाय नमः । ततो वरः पूगीफलं गृहीत्वा ब्राह्मणस्य दक्षिणजानु आलभ्य वदेत् । ॐ अद्येत्यादि-अमुक गोत्रोऽमुक प्रवरान्वितः शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाऽध्यायी अमुकनाम शर्मा वरोऽहम्, ममास्या वध्वाः करिष्यमाणविवाहाङ्गीभूत --(द्विसप्ततिसङ्ख्याकघृताहुति)--कर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तुमेतेन वरणद्रव्येणाऽमुकगोत्रममुकन्विरान्वितं शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत--माध्यप्रदनीय शाखा ऽध्यायिनममुकशर्माणं

ब्राह्मणं ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे ॥ इत्युक्त्वा तां पूगीफलमर्पयेत् ॥ पूगीफलञ्च गृहीत्वा ब्राह्मणो वदेत्। ॐ वृतोऽस्मि ॥ ॐ व्रतेन दीक्षा माप्नोति० ॥ पाद्यार्घगन्धाक्षतपुष्पादिभिः सम्पूज्य हस्ते कङ्कणबन्धनम् ॥ "ॐ यदा बध्नन्दाक्षायणा० " ॥ वरो वदेत् ॥ यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा, वेदशास्त्रविशारदः। तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् भव ब्रह्मा द्विजोत्तम ॥ यावत्कर्म समाप्येत, तावत्त्वं ब्रह्मा भव ॥ भवामीति प्रतिवचनम् ॥ 'यथाविहितं कर्म कुरु'—इति वरः ॥ 'करवाणीति' ब्राह्मणः ॥ "ॐ ब्रह्म जज्ञानम्प्रथमम्पुर०" ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्वा, तदुपरि प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य, ब्रह्माणमग्निप्रदक्षिणक्रमेणानीयास्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय, पूर्व कल्पितासने ब्रह्माणमुदङ्मुखमुपवेशयेत् ॥ अथाचार्यवरणं कुर्यात् ॥ ॐ अद्य कर्तव्य विवाह होम

कर्मणि कृताकृतावेक्षण–रूपाचार्य्यकर्म-कर्तुममुकगोत्रममुकशर्म्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिराचार्य्यत्वेनत्वा-महं वृणे ॥ तदाऽऽचार्य्यस्तु ॥ ओ३म् व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते। तत आचार्याय तिलकं कुर्यात् ॥ 'ओ३म् गन्ध-द्वारां दुराधर्षाम्०' ततो दक्षिणादानम् ॥ आचार्यः 'वृतो ऽस्मीति, वदेत् ॥ इति आचार्यं वृत्वा। प्रणीतापात्रं सव्यहस्ते कृत्वा, वारिणा परिपूर्य, कुशैराच्छाद्य, ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः पश्चि-मासने निधायाऽऽलभ्य ततः पूर्वासने कुशो-परि निदध्यात् ॥ ततः परिस्तरणम् ॥[1] कुशचतुर्थभागमादायाऽऽग्नेयादीशानान्तम्, ब्रह्मणो ऽग्निपर्यन्तम्, नैर्ऋत्याद्वायव्या-

[1] 'अथ तृणैः परिस्तृणामि'-इस श्रुति से कुशों का परिस्तरण अग्नि की नग्नता दूर करने के लिए होता है। अतः अग्नि से ८ अंगुल दूर तक चौड़ाव में कुशों-द्वारा अग्नि-शोभार्थ है ॥

न्तम्, अग्नितः (२) प्रणीतापर्य्यन्तम् ॥ परिस्तीर्य ॥ अग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशिवा पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयम्, पवित्रकरणार्थं साग्रमनंतगर्भं कुशपत्रद्वयम् (३) प्रोक्षणी-पात्रमाज्यस्थाली (४) सम्मार्जनीरूपकुशाः पञ्च, वेणीरूपोपयमनकुशाः सप्त, स्रुवः, आज्यं, पलाशसमिधस्तिस्रः, तण्डुलपूर्णपात्रं, एतानि पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणाऽऽसादनीयानि । तस्यामेव दिशि-शमीपलाशमिश्रिताः लाजाः, पालाशपत्र-द्वयम्, पेषणिकोपलम्, कुमारीभ्राता, शूर्पः दृढ़पुरुषः, उदकुम्भः (दधि, माष, तण्डुलाः, कार्पासवर्त्तिकाः ,दधिमोदकाः कटुतैलं, दर्पणः, चूडिकाः, दन्तपत्रिका, सिन्दूरम् कज्जलम्, विन्दिका, असाधारणमपिसौ-

२] प्रणीतापात्र वरना की लकड़ी का १२ अंगुल लम्वा, ४अंगुल चौड़ा, और ४ अंगुल मध्य में गड्ढे वाला होना चाहिए ॥ [३] प्रोक्षणीपात्र वरना की लकड़ी का १२ अंगुल लम्बा, हाथ के तलके बराबर हो ॥ [४] आज्यस्थाली का चरुस्थाली धातु वा मिट्टी की १२ अंगुल बीच से चौड़ी प्रदेशमात्र [बालिस्त भर] ऊँची होनी चाहिए ।

भाग्यद्रव्याणि) ॥ ततः ॥ पवित्रच्छेदन-कुशैः प्रादेशमितं पवित्रद्वयं (५) चिछत्वा सपवित्रदक्षिणकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रो-क्षणीपात्रे निधाय, दक्षिणाऽनामिकांगुष्ठा-भ्यामुत्तराग्रपवित्रद्वयं गृहीत्वा, तेन प्रोक्ष-णीजलं त्रिरुत्पूय, प्रणीतोदकेन प्रोक्षणी-प्रोक्षणम्, पुनः प्रोक्षणीजलेनासादितवस्तु-सेचनं कृत्वाऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणी-पात्रं निदध्यात् ॥ आज्यस्थाल्यामाज्य-निरूप्याऽधिश्रित्य । ज्वलत्तृणेन प्रदक्षिण-क्रमेण हविर्वेष्टयित्वा वह्नौ तत्प्रक्षिपेत् । स्रुवमधोमुखं (६) प्रतप्य, संमार्जनकुशा-नामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः संमृज्य, प्रणी-

(५)-छन्दोगपरिशिष्टे—अनन्तर्गभिण साग्रं, कौशं द्विदलमेव च प्रादेशमात्रं विज्ञेयं, पवित्रं यत्र कुत्रचित ॥१॥ दो-पत्तों की कुशा के एक ही पवित्र काटने का विधान है।

[६] स्रुक् स्रुव्-सोना-चांदी अथवा यज्ञीय-काष्ठके होने चाहियें। संक्षिप्त होम में छिद्र रहित ढाक अथवा पीपल के पत्तों का भी स्रुक् स्रुव् बन सकता है।

"वशिष्ठ-संहिता में

तोदकेनाभ्युक्ष्य, पुनः प्रतप्य, स्वदक्षिणतः कुशोपरि निदध्यात् ॥ आज्यमग्नेरवतार्य्यं प्रोक्षणीवदुत्पवनं कृत्वाऽवेक्ष्य च सत्यप-द्रव्ये तन्निरस्य प्रोक्षण्याः पुनरुत्पवनं कृत्वा, उपयमनकुशान् वामहस्तेधृत्वोत्तिष्ठन् प्रजापतिं (मसा) ध्यात्वा, तूष्णीं घृताक्ताः समिधस्तिस्रो जुहुयात् ॥ तत उपविश्य, सपवित्रप्रोक्षण्युदकेनेशानमारभ्येशानपर्यन्तं प्रदक्षिणक्रमेणाग्निं पर्य्युक्ष्य, प्रणीतापात्रे पवित्रं निधाय, वरः करौबध्वा देवताऽभिध्यानं करोति ॥ ततः पातितदक्षिण-जानुः कुशेन ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमे-योजक नामाऽग्नौ * स्रुवेणाऽऽज्योहुतीर्दद्यात् ॥ तत्राऽऽघारादारभ्य १२ द्वादशाहुतिपर्यंतं स्रुवावस्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ॥ ॐ प्राजापत्यादिचतुर्णां मन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, म-

---

* स्रुवः-धारण-विधिः- तुर्यांगुलं परित्यज्य, षडंगुलमथापि वा । ...ेण मूलमाच्छाद्य, धारयेच्छंखमुद्रया ॥१॥

न्त्रोक्ता–देवता, आज्यहोमे–विनियोगः ॥
*ॐ प्रजापतये–स्वाहा ॥१॥इदं प्रजापतये,
न मम ॥ इति–मनसा । ॐ इन्द्राय–स्वाहा
॥२॥ इदमिन्द्राय, न मम ॥ इत्याघारौ ॥
ॐ अग्नये–स्वाहा ॥ ३ ॥ इदमग्नये ॥ ॐ
सोमाय–स्वाहा ॥ ४ ॥ इदं सोमाय इत्या-
ज्यभागौ ॥ तत्र व्याहृतित्रयस्य विश्वा-
मित्रज–मदग्निभृगव–ऋषयो, गायत्र्यु-
ष्णिगनुष्टुप्छन्दांसि अग्निवायुसूर्य्या-
देवता, व्याहृतिहोमे–विनियोगः ॥ ॐ भूः
स्वाहा ॥५॥ इदमग्नये, न मम ॥ ॐ भुवः
स्वाहा ॥६॥ इदं वायवे न मम ॥ ॐ स्वः
स्वाहा ॥७॥ इदं सूर्य्याय, न मम ॥ एता
महाव्याहृतयः ॥ अथ प्रायश्चित्तहोमः ॥
ॐ त्वन्नो० ॐ स त्वन्नो० इति–मन्त्रद्व-
यस्य वामदेव ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्नि
वरुणौ देवते, प्रायश्चित्ताङ्गाज्यहोमे-विनि-

* कुण्ड का मध्यपार्श्व अग्नि-मुख कहाता है। इसी में हवन करना चाहिए ॥

योगः ॥ ॐ त्वन्नोऽअग्ग्ने व्वरुणस्य विद्वा-न्देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो व्वह्नितमः शोशुचानो व्विश्वा द्वेषाᳬसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥८॥ इदमग्नीवरुणा-भ्यां, न मम ॥ ॐ सत्त्वन्नोऽअग्ग्ने वमो भवोतीनेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ । अव-यक्ष्व नो व्वरुणᳬ रराणो व्वीहि मृडीकᳬ सुहवो नऽएधि—स्वाहा ॥९॥ इदमग्नी-वरुणाभ्यां न मम ॥ ॐ अयाश्चाग्न-इति प्रजापतिर्ऋषिर्विराट्छन्दोऽग्निर्देवता, प्रा-यश्चित्तहोमे-विनियोगः ॥ ॐ अयाश्चाग्ग्ने स्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्वमयाऽअसि । अयानो यज्ञं व्वहास्ययया नो धेहि भेषजᳬ स्वाहा ॥१०॥ इदमग्नये, अयसे न मम ॥ ॐ ये ते शतमिति-शुनःशेप ऋषिः, जगतीछन्दो वरुणादयः- देवताः, प्रायश्चि-त्तहोमे विनियोगः ॥ ॐ ये ते शतं व्वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ।

तेभिर्नो ऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ ११ ॥ इदंवरुणाय, सवित्रे, विष्णवे, विश्वेभ्यो देवेभ्यो, मरुद्भ्यः, स्वर्केभ्यश्च, न मम ॥ ॐ उदुत्तममिति शुनःशेपऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, वरुणो देवता, प्रायश्चित्तहोमे-विनियोगः ॥ ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यम ँ श्रथाय । अथाव्वयमादित्यव्रते तवानागसो ऽअदितये स्याम— स्वाहा ॥ १२ ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यादितये च न मम ॥ एताः प्रायश्चित्तसंज्ञकाः ॥ अतोऽग्रेऽन्वारब्धं विना ॥ ततः राष्ट्रभृद्धोमः । * ॐ ऋताषाडितिमन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो-मन्त्रलिंगोक्ता-देवता, आज्यहोमे—विनियोगः ॥ ॐ ऋताषाड् ऋतधामाऽग्निर्गन्धर्वः स न ऽइदम्ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहाव्वाट् ॥ इदमृतासाहे,

* राष्ट्र के धारण पोषण की शक्ति उत्पन्न करने के कारण इसका नाम राष्ट्रभृत् कहा है । अन्वारब्धं त्यक्त्वा राष्ट्रभृद्धोमं कुर्यात् ।

ऋतधाम्नेऽग्नये, गन्धर्वाय न मम ॥१॥
ॐ ऋताषाड् ऋतधामाऽग्निर्गन्धर्वस्तस्यौ-
षधयोऽप्सरसो मुदो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥
इदमोषधीभ्योऽप्सरोभ्यो, मुद्भ्यश्च न मम
॥२॥ ॐ स ँ हित-इति प्रजापतिऋर्षि-
र्यजुश्छन्दः, स ँ हितो विश्वसामा सूर्य्यो
गन्धर्वो देवता होमे—विनियोगः ॥ ॐ स
ँहितो विश्वसामा सूर्य्यो गन्धर्वः स नऽ-
इदम्ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा—वाट् ॥
इद ँ स ँ हिताय विश्वसाम्ने, सूर्य्याय,
गन्धर्वाय, न मम॥३॥पुनः ॐस ँ हित-इति
प्रजापतिऋर्षिर्यजुश्छन्दः,मरीचयोऽप्सरस
आसुवो देवता, होमे-वि० ॥ ॐ स ँ हितो
विश्वसामा सूर्य्यो गन्धर्वस्तस्य मरीच-
योऽप्सरस ऽआयुवो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥
इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यो न मम
॥४॥ॐ सुषुम्ण-इति—प्रजापति—ऋषिर्य-
जुश्छन्दः, सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्ध-

र्वो देवता—होमे वि० ॥ ओ३म् सुषुम्णः सूर्य-रश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः स न ऽइदम्ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहाव्वाट् ॥ इदं सुषुम्णाय सूर्यं रश्मये, चन्द्रमसे, गन्धर्वाय, न मम ॥५॥ पुनः ॥ ओ३म् सुषुम्णऽ-इति-प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो, नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो देवता-होमे वि० ॥ ओ३म् सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं नक्षत्रेभ्यो-ऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यो न मम ॥६॥ ओ३म् इषिर-इति-प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः, इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वो देवता-होमे-वि० ॥ ओ३म् इषिरो व्विश्श्व व्यचा व्वातो गन्धर्व्वः सन ऽइम्ब्रह्मक्षत्रंपातु तस्मै स्वाहा व्वाट् ॥ इद-मिषिराय व्विश्श्व-व्यचसे वाताय गन्धर्वाय, न मम॥७॥पुनः-ओ३म् इषिर-इतिप्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः,-आपोऽप्सरस ऽऊर्जो देवता-होमे वि० ॥ ओ३म् इषिरो व्वि-

श्वव्यचा व्वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽप्सरस
ऽऊर्जो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदमद्भयो
ऽप्सरोभ्य ऊर्ग्भ्यो,न मम॥८॥ॐभुज्युरिति
प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः, भुज्युः-सुपर्णो
यज्ञो-गन्धर्वो-देवता-होमे वि० ॥ ॐ भुज्युः
सुपर्णो यज्ञो गन्धर्व्वः स न ऽइदंब्रह्म क्षत्रं
पातु तस्मै स्वाहा व्वाट् ॥ इदं भुज्यवे,
सुपर्णाय, यज्ञाय,गन्धर्वाय,न मम॥९॥पुनः
ॐ भुज्युरिति-प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो,
दक्षिणाऽप्सरसस्तावा देवता-होमे वि० ॥ॐ
भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा-
ऽअप्सरसस्तावा नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं
दक्षिणाभ्यो ऽप्सरोभ्यस्तावाभ्यो, न मम
॥१०॥ ॐ प्रजापतिरिति-प्रजापति-ऋषि
र्यजुश्छन्दः,प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्ध-
र्वो देवता,–होमे–वि० ॥ ॐ प्रजापति-
र्विश्शवकर्म्मा मनो गन्धर्वः स न ऽइदम्ब्रह्म
क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा व्वाट् ॥ इदं प्रजा-

पतये, विश्वकर्मणे, मनसे, गन्धर्वाय, न मम ॥११॥ पुनः ॥ ॐ प्रजापतिरिति प्रजापति-र्ऋषिर्यजुश्छन्दः, ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो देवता--होमे वि० ॥ ॐ प्रजापतिर्व्विश्वकर्म्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस ऽएष्टयो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदमृक्सामभ्योऽप्सरोभ्यः एष्टिभ्यो न मम ॥१२॥ इति राष्ट्रभृद्धोमः ॥ ततो दक्षिणा-दानम्॥ ॐ अद्येह अमुकशर्मा सवधूकोऽहं, कृतैतद्राष्ट्रभृद्धोमस्य साङ्गफलप्राप्तये साद्गुण्यार्थञ्चेमां दक्षिणाम्, आचार्यब्रह्मभ्यां विभज्य दास्ये ॥ ॐ तत्सत् ॥ ततः मन्त्रपाठः ॥ गन्धर्वाऽप्सरसश्चैव, प्रयच्छन्तु यशः श्रियम् ॥ दीर्घायुर्धनमारोग्यमुभयोः स्त्रीकुमारयोः ॥ इति ॥ (प्रणीतोदकेनात्र वधूवरयोर्मूर्धानमभिषिञ्चति) इति राष्ट्रभृद्धोमः ॥ अथ * जय होमः ॥ चित्तञ्चे-

* अन्यत्रपद्धतिषु 'जयाहोम' इत्येव लिखितः पाठो दृश्यते, तत्प्राज्ञैर्विचार्यम् ।

त्यादीनां द्वादशमन्त्राणां परमेष्ठी-ऋषि-र्यजूँषि चित्तादयो मन्त्राम्नाता देवताः, विजयार्थे, प्रतिमन्त्रहोमे-विनि० ।। ओ३म् चित्तञ्च स्वाहा, इदञ्चित्ताय न मम ।।१।। ओ३म् चित्तिश्च स्वाहा, इदञ्चित्त्यै न मम ।।२।। ओ३म् आकूतञ्च-स्वाहा, इदमाकूताय न मम ।।३।। ओ३म् आकूतिश्च स्वाहा-इदमाकूत्यै न मम।।४।।ओ३म् विज्ञातञ्चस्वाहा, इदं विज्ञाताय न मम ।।५।। ओ३म्विज्ञातिश्च-स्वाहा, इदं विज्ञात्यै न मम ।।६।। ओ३म् मनश्च स्वाहा-इदं, मनसे न मम ।।७।। ओ३म् शक्वरीश्च-स्वाहा, इदं शक्वरीभ्योः न मम ।।८।। ओ३म् दर्शश्च-स्वाहा, इदं दर्शाय न मम ।।९।। ओ३म् पौर्णमासञ्च—स्वाहा, इदं पौर्णमासाय न मम ।।१०।। ओ३म् बृहच्च-स्वाहा, इदम्बृहते, न मम ।।११।। ओ३म् रथन्तरञ्च-स्वाहा, इदं रथन्तराय न मम ।।१२।। पुनश्च ओ३म् प्रजापतिरिति-मन्त्रस्य

परमेष्ठी—ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, प्रजापतिर्देवता, जयाहोमे—विनि० ॥ ॐ प्रजापतिर्ज्जयानिन्द्राय व्वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतना जयेषु ॥ तस्मै व्विशः समनमन्त सर्वाः स ऽउग्रः स ऽइ हव्यो बभूव स्वाहा—इदं प्रजापतये न मम ॥१३॥ (ततःप्रणीतोदकस्पर्शः(सङ्कल्प्य आचार्याय—दक्षिणां दद्यात्। पुनराचार्यः प्रणीतोदकेन-चिरञ्जीव्य महातेजश्चित्ताद्याश्च दिवौकसः। प्रयच्छन्तु करे वाञ्छामुभयोः स्त्रीकुमारयोः ॥ अभिषिंचेत् ॥ इति जयहोमः ॥ अथाऽभ्यातान होमः-ॐ अग्निर्भूतानामधिपतिरित्यादीनां पितरः पितामहा-इत्यन्तानामष्टादशमन्त्राणां प्रजापतिऋषिपंक्तिश्छन्दो, मन्त्राम्नाता अग्न्यादिदेवताः, प्रतिमन्त्रहोमे-विनियोगः ॥ ॐ अग्निर्भूतानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म-

ण्यस्यां देवहूत्या ७ स्वाहा ॥ इदमग्नये, भूतानामधिपतये, न मम ॥१॥ ॐ इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ७ स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय, ज्येष्ठानामधिपतये न मम ।२। ॐ यमः पृथिव्याऽअधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूता ७स्वाहा॥ इदं यमाय, पृथिव्याऽअधिपतये न मम ।३। (अत्र पित्र्यत्वात्प्रणीतोदकस्पर्शः) ॐ वायुरन्तरिक्षस्याऽधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या७स्वाहा। इदं वायवेऽन्तरिक्षस्याधिपतये न मम ।४। ॐ सूर्य्यो दिवोऽधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूता ७

स्वाहा ॥ इद ७ सूर्य्याय, दिवोऽधिपतये न मम ॥५॥ ॐ चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ७ स्वाहा ॥ इदञ्चन्द्रमसे, नक्षत्राणामधिपतये, न मम ॥६॥ ॐ बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्याँ देवहूत्या ७ स्वाहा ॥ इदं बृहस्पतये, ब्रह्मणोऽधिपतये न मम ॥७॥ ॐ मित्रः सत्यानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्याशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ७ स्वाहा ॥ इदं मित्राय, सत्यानामधिपतये न मम ॥८॥ ॐ वरुणोऽपामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ७ स्वाहा ॥ इदं वरुणायापामधिपतये न

मम ॥९॥ ओ३म् समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ७ स्वाहा ॥ इदं समुद्राय, स्रोत्यानामधिपतये न मम ॥ १० ॥ ओ३म् अन्न ७ साम्राज्यानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ७ स्वाहा ॥ इदमन्नाय, साम्राज्यानामधिपतये न मम ॥११॥ ओ३म् सोमऽओषधीनामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ७ स्वाहा ॥ इदं सोमायौषधीनामधिपतये, न मम ॥१२॥ ओ३म् सविता प्रसवानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ७ स्वाहा ॥ इदं सवित्रे, प्रसवानामधिपतये,

न मम ॥१३॥ ॐ रुद्रः पशूनामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रे ऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ᳪस्वाहा ॥ इदं रुद्राय, पशूनामधिपतये, न मम ॥१४॥ अत्र प्रणीतोदक स्पर्शः॥ ॐ त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूत्याᳪस्वाहा ॥ इदं त्वष्ट्रे, रूपाणामधिपतये न मम ॥१५॥ ॐ विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ᳪ स्वाहा ॥ इदं विष्णवे, पर्वतानामधिपतये न मम ॥१६॥ ॐ मरुतो गणानामधिपतयस्ते माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ᳪ स्वाहा ॥ इदं मरुद्भ्योगणानामधिपतिभ्यो, न मम ।१७।

ॐ पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्तता-
महाः इह माऽवन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्
क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्
कर्म्मण्यस्यां देवहूत्या ७ स्वाहा ॥ इदं
पितृभ्यः, पितामहेभ्यः, परेभ्योऽवरेभ्य-
स्ततेभ्यस्ततामहेभ्यो न मम ॥ १८ ॥
अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः इत्याभ्यातानाम
होमः ॥ ॐ अद्येहेत्यादि-अमुकशर्मा सवधू-
कोऽहमभ्यातानहोमस्य साङ्गफलप्राप्तये,
साद्गुण्यार्थञ्चेमां दक्षिणामाचार्य्यब्रह्मभ्यो
विभज्य दास्ये ॥ तत आशीर्वादाः ॥ उत्सर्गे
च तुरीये च, प्रयच्छन्त्वनलादयः । पुत्राँ-
ल्लक्ष्मीं तथा कामानुभयोः स्त्रीकुमारयोः ॥
अथ अग्न्यादिपञ्चाङ्गहोमः ॥ ॐ अग्नि-
रैत्वित्यादीनां चतुर्णां मन्त्राणां प्रजापति-
ऋ॑षिस्त्रिष्टुप्छन्दो, लिङ्गोक्ता-देवता, आ-
ज्यहोमे-विनियोगः ॥ ॐ अग्निरैतु प्रथमो
देवताना ७ सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपा-

शात् । तदय ँ राजा व्वरुणो ऽनुमन्यतां यथेय ँ स्त्रीपौत्रमघन्न रोदात्-स्वाहा ॥ इदमग्नये न मम ॥१॥ ॐ इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः । अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुद्ध्यतामिय ँ स्वाहा ॥ इदमग्नये न मम ॥२॥ ॐ स्वस्ति नो ऽअग्ने दिव ऽआपृथिव्या व्विश्वानि धेह्य यथा यदत्र । यदस्या महि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्र ँ स्वाहा ॥ इदमग्नये, न मम ॥३॥ ॐ सुगन्नु पन्थाम्प्रदिशन्न ऽएहि ज्ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्न ऽआयुः । अपैतु मृत्युरमृतन्न ऽआगाद्वैवस्वतो नोऽ अभयङ् कृणोतु—स्वाहा ॥ इदं वैवस्वताय, न मम ॥४॥ अत्र प्रणीतोदक स्पर्शः ॥ ततः ॥ वधूवरयोरन्त पटं दत्त्वा तूष्णीं जुहुयात् ॥ ॐ परं मृत्यविति सङ्कुसुक—ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, मृत्युर्देवता,

होमे-विनियोगः ॥ ॐ परं मृत्यो ऽअनुपरेहि पन्थां यस्ते ऽअन्य ऽइतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा ᳪ रीरिषो मोत व्वीरान्-स्वाहा ॥ इदं मृत्यवे न मम ॥५॥ अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः ॥

ततः पूर्ववद् दक्षिणां दत्वा आचार्यश्चाशीर्वादं दद्यात् ॥

ॐ गोविन्दो गोकुले तिष्ठन्, गोपीभिर्विहरन्मुदा तुष्टिपुष्टिकरो नित्यमुभयोः स्त्री-कुमारयोः ॥ अथ लाजाहोमः ॥

ततस्तिष्ठन्ती कुमारी अञ्जलिं विदधाति । वरश्चाऽनुपृष्ठं परिक्रम्योत्तरा ऽभिमुखो वध्वा दक्षिणतस्तिष्ठन्कुमार्यंञ्जलिं यथा समाचारमञ्जलिना दक्षिणहस्तेन वा ऽऽलभते ॥ तत्र कुमारी भ्राता शमीपलाशमिश्रलाजान् वारत्रयं कुमार्यञ्जलौ आवपति ॥ ततस्तान् कुमारी स्वहस्तेन वारत्रयं जुहोति ॥

ॐ अर्यमणमित्यादिमन्त्राणामाथर्वण-ऋषिरनुष्टुप्छन्द, अर्यमा-देवता,लाजाहोमे-वि० ॥ ॐ अर्य्यमणं देवं कन्या ऽअग्निमयक्षत । स नो ऽ अर्य्यमादेवः प्रेतो मुञ्चतु

मा पतेः-स्वाहा ॥ इदमर्यम्णे न मम ॥१॥
इति तृतीयांशहोमः ॥ ॐ इयं नार्य्युप-
ब्रूते लाजानावपन्तिका । आयुष्मानस्तु मे
पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम-स्वाहा ॥ इदमग्-
नये न मम ॥२॥ इत्यर्धांशहोमः ॥ ॐ इमाँ-
ल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव ।
मम तुभ्यञ्च संवननं तदग्निरनुमन्यतामिय
ᳬ स्वाहा ॥ इदमग्नये न मम ॥३॥ इति
सर्वांशहोमः अथवध्वा दक्षिणहस्तं सांगुष्ठ-
मुत्तानं वरो गृह्णाति ॥ ॐ गृभ्णामीत्या-
दीनां याज्ञवल्क्यभारद्वाजाथर्वण प्रजापतयः
ऋषयस्त्रिष्टुबुष्णिगनुष्टुबच्छन्दांसि, भगो-
ऽर्यमसवितृपुरन्ध्रयो देवता साङ्गुष्ठपाणि-
ग्रहणे विनि० ॥ ॐ गृभ्णामि ते सौभगत्-
वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्य्यथा सः ।
भगोऽअर्य्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यन्त्वाऽदु-
र्गार्हपत्याय देवाः ॥१॥ अमोऽहमस्मि सा
त्व ᳬ सा त्वमस्यमो ऽ अहम् ॥ सामाहमस्मि

ऋक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ॥२॥ ॐ तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै । प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून् ॥ ३ ॥ ॐ ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतम् ॥४॥

(अथैनामश्मानमारोहयतीति सूत्रम्) ॥

तद्यथा-अग्नेरुत्तरतः स्थापितेऽश्मनि वरो वध्वा दक्षिणं पादं स्वदक्षिणहस्तेन गृहीत्वा स्थापयेत् ॥

(वामहस्तेन तस्या वामस्कन्धञ्च स्पृशन् । पठति) ॐ आरोहेममित्यस्याऽथर्वण-ऋषिरनुष्टुप्छन्दो, वधूर्देवता, अश्मारोहणे-विनि० ॥ ॐ आरोहेममश्चानमश्मेव त्व ँ स्थिरा भव ॥ अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ॥१॥ इति मन्त्रेण—आरूढायामेव तस्यां वरो गाथां गायति ॥ ॐ सरस्वतीति-विश्वावसुऋषिरनुष्टुप्छन्दः, सरस्वतीदेवता, गाथागाने-वि० ॥ ॐ सरस्वति

प्रेदमव सुभगे त्वाजिनीवति । यान्त्वा त्विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः । यस्यां भूत ँ समभवद्यस्यां विश्वमिदञ्जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ॥२॥ *इति गाथागानम् ॥ ततोऽग्रे वधूः पश्चाद्वरोऽग्निं प्रदक्षिणी कुरुतः तदा वर पठनीय मन्त्रः-ओ३म् तुभ्यमिति-अथर्वण-ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता, परिक्रमणे-

---

*आधवेन्द्रे यथा सीता, विनता कश्यपे यथा। पावके च यथा स्वाहा,तथा त्वं मयि भर्त्तरि ॥१॥अनिरुद्धे यथैवोषा दमयन्ती नलेयथा। अरुन्धती वशिष्ठे च,तथात्वं मयि भर्त्तरि ॥२॥ 'सुदक्षिणा दिलीपेतु,वसुदेवे च देवकी,लोपामुद्रा तथाऽगस्त्ये तथा त्वं मयि भर्त्तरि॥ ३ ॥-शन्तनौ च यथा गंगा,सुभद्रा च यथाऽर्जुने।धृतराष्ट्रे च गान्धारी,तथात्वं मयि भर्त्तरि ॥ ४ ॥ गौत्तमे च यथाऽहल्या द्रौपदी पाण्डवेषु च। यथा वालिनितारा च तथात्वं मयि भर्त्तरि ॥५॥ मंदोदरीरावणे च, रामेयद्वत्तु जानकी। पाण्डुराजे यथा कुन्ती, तथात्वं मयि भर्त्तरि ॥६॥ अत्रौ यथानुसूया च, जमदग्नौ च रेणुका। श्रीकृष्णे रुक्मिणी यद्वत्तथात्वं मयि भर्त्तरि ॥७॥संवरे तपनी यद्वद्भरते च शकुन्तला मेरुदेवी यथा नाभौ तथात्वं मयि भर्त्तरि॥८॥शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रिय सखी वृत्तिं सपत्नी जने। भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः। भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने, भोगेष्वनुत्सेकिनी। यान्त्येवं गृहिणी पदं युवतयो वामाः कुलस्या धयः ॥ १ ॥ पृथिव्या यानि रत्नानि, गुणवन्ति गुणान्विते। त्वं तान्याप्नुहि कल्याणि सुखिनी शरदां शतम् ॥२॥

वि० ॥ ॐ तुभ्यमग्रे पर्य्यवहन्त्सूर्य्यां व्वहतुना सह । पुनः पतिभ्यो जायां दाऽग्ने प्रजया सह ॥ इति परिक्रमणम् ॥१॥

ततोऽर्य्यमणमितिमन्त्रादारभ्य, तुभ्यमग्रे इतिमन्त्रान्तं, पूर्ववत्-लाज होमादि-परिक्रमणान्तं कुर्य्याद्विद्वः । अन्ते पुनः कुमारीभ्राता शमी एतेन ६ लाजाहुतयः, ३ साङ्गुष्ठ हस्त ग्रहणं, ३ गाथा गानं ३ प्रदक्षिणञ्च सम्पद्यते । पलाशमिश्रलाजान् शूर्पस्थान स्वाञ्जलिना कन्याञ्जलौ ददाति । सा च स्वाञ्जलिस्थेन 'ॐ भगायेति तिष्ठन्ती जुहोति ॥

ॐ भगायेति'—प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो, भगो-देवता, लाजाहोमे-वि० ॥ ॐ भगाय-स्वाहा, ॐ इदं भगाय ॥

कन्यासर्वान्लाजाञ्जुहोति ॥ ततस्तूष्णी मग्रे वरः पश्चाद् वधूः कृत्वा चतुर्थपरिक्रमणम् ॥ उभौ चोपविश्य ॥

ॐ प्रजापतय—इति प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, प्रजापतिर्देवता, उत्तराङ्गहोमे-वि० ॥ ब्रह्मणाऽन्वारब्धः ॐ प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये न मम ॥ इति मनसा ॥ अथ सप्तपदी * ॥

---

* लोकाचारानुसार पहिली तीन परिक्रमाओं में कुमारी आगे

पुनरुत्तरतः स्थापिते दृपदि दध्याक्तण्डुलमाषनिर्मितसप्तपुञ्जेषु. सप्तज्वलद्वर्तिकाः संस्थाप्य, प्रत्येकपुञ्जे सिलं विस्तारयन्, तदुपरि वधूदक्षिणपदंनिधाय, तत्र—स्वदक्षिणहस्तं वरो निधाय, वामहस्तेन तस्या वामस्कन्धं स्पृशन् प्रत्येकं पुञ्जं प्रेषयन् प्रत्येकं मन्त्रं पटेत्—इयमेव सप्तपदी ॥

अथ कन्यासप्तवाक्यानि ॥ तत्र प्रथमपदे मन्त्रः—"विनियोगस्तु सप्तानामेक एव" ॐ एकमिषेत्यादीनां प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दः लिङ्गोक्ता देवता, सप्तपदीप्रक्रमणे—विनि० ॥ * ॐ एकमिषे विष्णुस्त्वा

और वर पीछे होता है इसमें संस्कारभास्कर-कारका वचन है कि "अग्रे तु शुभदा पत्नी मांगल्ये सर्वकर्मणि"। चौथी परिक्रमा में वर आगे कन्या पीछे होती है ॥ त्रिः परणीतां प्रजापत्यं हुत्वा अथैनामुदोचीं सप्तपदानि प्रक्रामयति। इन सूत्रोंके प्रमाण से तीनही परिक्रमा सूत्रकार को अभिमत हैं ॥ यहाँ उत्तर दिशा सोम्य होने से ज्ञानवृद्धि की उपलक्षिका है और पद शब्द चरणार्थ के अतिरिक्त व्यवसाय त्राण स्थानादिक भी वाचक है। अतः स्त्री गृहस्थाश्रम को सुखमय बनाने के लिए ७ पद अर्थात् सात प्रकार के व्यवसाय अथवा न्यायशास्त्रोक्त द्रव्य गुण आदिक द्रव्योपार्जन रूप उपलक्ष्य है। जिसे जातीयहित ईश्वर-भक्ति के साथ २ त्रिविध तापोपशमन होकर, अन्न बलादिकों की अभिवृद्धि प्राप्त हो।

* इन 'एकमिषे- द्वे ऊर्जे' आदिक सातों मन्त्रों का अर्थ मुझसे कतिपय महानुभाव पूछते आये हैं अतः क्रम से उन सातों मन्त्रों का

नयतु ।।१।। ॐ द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वा नयतु ।।२।। ॐ त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु ।।३।। ॐ चत्वारि मायो भवाय विष्णुस्त्वा नयतु ।।४।। ॐ पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु ।।५।। ॐ षड् ऋतुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु ।।६।। ॐ सखे सप्तपदा भव, सा मामनुव्रता भव, विष्णुस्त्वा नयतु ।।७।। (अथ वाक्यचतुष्टयम्) ।। उद्याने मद्यपाने च, पितुर्गेह गमनेन च । आज्ञाभङ्गो न कर्तव्यो, वर वाक्य चतुष्टयम् ।१।

अर्थात्-वाग बगीचे जंगल आदि स्थानों में तुम अकेली

अर्थ सर्वसाधारणों के सुलभार्थ यहाँ पर दे रहे हैं=यथा १ सर्व व्यापक ईश्वर मुझे एक पद अन्न के लिये चलाए। २ दूसरा पद, विष्णु बल के लिए तुझे चलाये। ३ तीसरा पद, धन वृद्धि के लिए विष्णु तुझे चलावे। ४ चौथा पद, आरोग्य के अर्थ विष्णु तुझे चलावे। ५ पांचवा पद, पशुओं के लिए विष्णु तुझे चलाये। ६ छटा पद, ऋतुओं के लिए तुझे चलाए। ७ सात पद वाली हो अर्थात्-पतिव्रत धर्म से भूः आदिक सात लोकों में अरुन्धती जानकी आदि के समान प्रख्यातहो यह तू मेरे अनुकूल बर्तने वालीहो विष्णु तुझे चलाए। यह अन्तिम मन्त्र का भाव हुआ। श्लोकों का अर्थ भी आचार्य दोनों को समझा देवे ।। इति ।।

ऊपर लिखित श्लोकों का अभिप्राय आचार्य दोनों को समझावे।

मत जाना ॥१॥ मदिरा-पान किये हुए मतवाले वा पागल पुरुषों के सामने कदापि खड़ी न होना ॥२। पिता के घर मेरी आज्ञा लिए बिना कभी न जाना ॥३॥ और मेरी आज्ञा का कभी उल्लंघन न करना, यह तुम वचन दो, तो मैं तुम्हें वामांग में बिठाऊँ ॥४॥ इति ।

ततः सप्तमं पुञ्जं घृतपूरितदीपे निधाय, परिक्रमणं कृत्वाग्नेः पश्चादुपविश्य पुरुष स्कन्धस्थित कुम्भाज्जलं गृहीत्वाम्रपल्लवेन वरो वधूमूर्ध्नि कुम्भस्थजलेनाभिषिचति।

ॐ आप इति प्रजापतिऋर्षिर्यजुश्छन्दः, आपो देवता वधूमूर्धाभिषेचने-विनियोगः॥ ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ १ ॥ ॐ आपो हिष्ठा०' ॥२॥ पुनः वरो वधूं सूर्यमुदीक्षस्वेति वदेत् ॥ ॐ तच्चक्षुरिति दध्यङ्ङाथर्वणऋषिर्ब्राह्मीत्रिष्टुप्छन्दः, सूर्य्यो देवता,सूर्योदीक्षणे—विनियोगः ॥ ॐ तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात् ।

(अस्तमिते सूर्ये ध्रुवमुदीक्षस्वेति वदेत् ॥ ॐ ध्रुवमसीति-प्रजापतिॠषिः, पंक्तिः छन्दः ध्रुवो देवता,ध्रुवदर्शने-विनियोगः ॥ ॐ ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधि-पोष्यो मयि । मह्यं त्वा ऽदाद्बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सञ्जीव शरदः शरम्) ।

ततो वरो हृदयमालभते ॥ ॐ ममेतिप्रजा-पतिॠषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, प्रजापतिर्देवता, वधूहृदयालम्भने–विनि० ॥ ॐ मम व्व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं तेऽ-अस्तु ॥ मम व्वाचमेकमना जुषस्व प्रजाप-तिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥

ततो वधू-शिरसि हस्तं धृत्वा वरोऽभिमन्त्रयते–

ॐ सुमङ्गलीरिति–प्रजापतिॠषिरनुष्टु-प्छन्दो, लिंगोक्ता देवता, वध्वभिमन्त्रणे–वि० ॥ ॐ सुमङ्गलीरियं वधूरिमा ँ समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन ॥

इति वधूवरौ परस्परं तैलाभ्यङ्ग-केशसंमार्जन- सिंदूर-तिलक-चूडिकाऽऽदर्श-कज्जलधारण-दधिप्राशन-परस्परोच्छिष्टलापनान्तकर्माणि कुरुतः ॥ ततो वरो वधूं स्ववामभागे समुपवेशयति स्त्रीणां स्थितिर्वामपार्श्वे, दक्षिणे त्वं कथं स्थिता। मया विवाहिता दत्ता, तव पित्रा च बन्धुभिः ॥१॥ उत्तिष्ठ वामभागं मे, पत्नीभावं भज प्रिये ! यत्किञ्चित्तव चित्तेऽस्ति, तद् वदस्व ममाग्रतः ॥२॥ तत्र वरस्य वामभागे उपविष्टा कन्या वरं प्रति प्रतिज्ञावचनानि ब्रूते ॥

न दानेन विवाहोऽस्ति, लाजाहोमेन नैव हि। विवाहस्तु स्तदाज्ञेयो, यदा सप्तपदी-क्रमः ॥१॥ सन्ति मे सप्तवाक्यानि, त्वया ग्राह्याणि सर्वदा। पालनीयानि यदि ते, वामाङ्गं संभजाम्यहम् ॥२॥ कन्योवाच ॥ ॐ तीर्थव्रतोद्यापनयज्ञदानं, मया सह त्वं यदि कान्त ! कुर्याः। वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयञ्जगाद वाक्यं प्रथमं कुमारी ॥१॥ हव्यप्रदानैरमरान्पितृँश्च, कव्यप्रदानैर्न-यदि पूजयेथाः। वामाङ्गमायामि तदा त्व-दीयञ्जगाद कन्या वचनं द्वितीयम् ॥२॥

कुटम्बरक्षाभरणे यदि त्वं, कुर्याः पशूनां परिपालनञ्च। वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयञ्जगाद कन्या वचनं तृतीयम् ॥ ३ ॥ आयव्ययौ धान्यधनादिकानां, पृष्ट्वा निवेशञ्च गृहे निदध्याः। वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयञ्जगाद कन्या वचनञ्चतुर्थम् ॥४॥ देवालयाऽऽरामतडागकूपवापीर्विदध्याः यदि पूजयेथाः। वामांगमायामि तदा त्वदीयञ्जगाद कन्या वचनञ्च पञ्चमम् ॥५॥ देशान्तरे वा स्वपुरान्तरे वा, यदा विदध्याः क्रयविक्रयौ त्वम्। वामांग० जगाद कन्या वचनं च षष्ठम् ॥६॥ न सेवनीया परकामिनी त्वया, न राग दृष्ट्या च विलोकनीया। वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनञ्च सप्तमम् ॥७॥ ततो वर उवाच ॥ मदीयचित्ताऽनुगतञ्च चित्तं, सदा ममाज्ञा परिपालनञ्च। पतिव्रता धर्मपरायणा त्वं, कुर्या सदा सर्वमिमं

प्रयत्नत् ॥१॥ इति मिथः प्रतिज्ञाय ॥ ॐ इहेति–प्रजापतिर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दो, लिंगोक्ता–देवता, वधूपवेशने विनि० ॥ ॐ इह गावो निषीदन्त्विहाश्वा ऽइह पूरुषाः। इहो सहस्रदक्षिणो यज्ञऽइह पूषा निषीदतु ।इति। परिकरमाकृष्योपविश्य । × ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते ॥

ततः संश्रवं प्राश्य, आचम्य, पवित्राभ्यांमार्जनम्। अग्नौपवित्र प्रतिपत्तिः ॥ पूर्णपात्रं ब्रह्मणे दद्यात् ॥

ॐ अद्येत्यादि० अमुकोऽहं सवधूकः कृतैतद्विवाहांगभूतहवनकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मणः सांगतासिद्धये इदं सदक्षिणं पूर्णपात्रंब्रह्मणे तुभ्यं सम्प्रददे ॥ ॐ स्वस्तीति ॥ ब्रह्मा वदेत्।

* पुरतः प्रणीतापात्रं न्युब्जी कुर्यात्'' ततः 'ॐ आपः

× शोभनप्रकार से मनोरथों को पूर्ण करने वाले देवता का नाम स्विष्टकृत् है।

* विवाहे व्रतवन्धे च शालायां चोलकर्मण गर्भाधानादि संस्कारे पूर्णाहुति न कारयेत् ॥ [गोभिल गृ० भाष्य से] सिद्ध है कि यहां पूर्णाहुति नहीं होनी चाहिये केवल त्र्यायुषकरण तिलक

शिवाः शिवतमाः०'-इतिमन्त्रेणोपयमन कुशैर्माजनम् । तत-स्त्र्यायुषकरणम् ।। स्त्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकयाऽग्रहीतभस्मना--

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेरिति--ललाटे । ॐ कस्यपश्य त्र्यायुषं ग्रीवायाम् ।। ॐ यद्देवेषु त्र्यायुंषम् दक्षिणांसे । ॐ तन्नो ऽअस्तु त्र्यायुषमिति हृदि ।।

ततो भूयसीदक्षिणादानम् ।। स्कन्धकलशाय दक्षिणादानमञ्चलमोक्षणम्, चतुर्थ्यन्ते तु--कङ्कणं मोचयाम्यद्य रक्षांसि न कदाचन ।। मयि रक्षां स्थिरां दत्त्वा, स्वस्थानं गच्छ कङ्कण ! ।। ततो गोदान कृत्वा, गणपत्यादिकावाहितदेवताविसर्जनं विधाय, ब्राह्मणद्वाराऽभिषेक--मन्त्रपाठतिलकादीनि वंधू वरौ गृह्णीतः ।। मण्डपोद्वासनं कृत्वा, आचारात्--

सम्बन्धियों को आमन्त्रणश्लोकाः

विद्या वृत्तियुताः प्रसन्न हृदया विद्वत्सु-

अभिषेक रक्षा सूत्र बन्धनादिक करें पूर्णाहुति नहीं क्योंकि यही अग्नि-चतुर्थी कर्म के होम के लिये सुरक्षित रखना चाहिये इसी कारण यहां विसर्जन नहीं होता है। देशाचार से इसी अवसर पर वसिष्ठाऽरुन्धती-पूजन भी वधू करती है। देशाचार से चतुर्थी इसी अवसर पर भी करते हैं। कन्यादान होने पर ही गोदान करना अत्यावश्यक है।

भो सम्बन्धिन् ! जिस उज्ज्वल कुल में आप जैसे गुण-निधि

बद्धादराः, श्रीनारायणपादपद्मयुगलध्या-
नावधूतांहसः ॥ श्रौताचारपरायणाः सवि-
नया विश्वोपकारक्षमा, जाता यत्र भवा-
दृशास्तदमलं, केनोपमेयकुलम् ॥१॥ पृथ्वी
तावदियं महत्सु महती, तद्वेष्टनं वारिधः,
पीतोऽसौकलशोद्भवेन मुनिना, स व्योम्नि
खद्योतवत् ॥ तद्विष्णोर्दनुजाधिनाथद
मने, पूर्णं पदं नाभवद्देवोऽसौ वसति
त्वदीयहृदये त्वत्तोऽधिकः को महान् ॥२॥

चतुर्थी कर्म विधिः

विवाहदिनाच्चतुर्थेहनि रात्रौ गृहाभ्यन्तर एव वरो वद्
ध्वा सहोद्वर्तनपूर्वकं समङ्गलं स्नात्वाऽहतपट्टादिवाससी

सत्पुरुष उत्पन्न हुए हैं, उस पवित्र-कुल की उपमा हम किससे दें? आपकी विद्या उपजीविका मे युक्त है एव आप स्वयं प्रसन्न-हृदय और निष्कपट अन्तःकरण वाले हो विद्वानों द्वारा आदरणोय होते हुए धर्माचारो, विश्वोपकारी एवं निरन्तर ईश्वराराधन द्वारा भगवत्कृपा-पात्र हो। श्रीमन्! प्रथम तो यह पृथ्वी सबसे बड़ी है, फिर उसे समुद्र ने चारों ओर से घेर रक्खा है, अतः समुद्र ही बड़ा हुआ, पृथ्वी नहीं। उस समुद्र को मुनिराज-अगस्त्य जी तीन आचमन द्वारा पी गये। तो फिर समुद्र बड़ा नहीं हुआ अगस्त्य जी ही बड़े हुए। वही अगस्त्य का तारा आकाश में एक खद्योतवत् (पटबीजना-

परिधाय' गृहं प्रविश्य धृतकुङ्कुमतिलको वेदिसमीपे शुभासने चोपविश्य, आचम्य, प्राणानायम्य गणेशवरुणौ सम्पूज्य-

अमुकोऽहं ममास्या वध्वाः सोमगन्धर्वाऽग्न्युपभुक्तदोषपरिहारार्थं विवाहव्रतसमाप्तिविहितं चतुर्थीकर्म करिष्ये।

इति-सङ्कल्प्य ॥ कांस्यपात्रोपनीतमग्निं पञ्चभूसंस्कारपूर्वकम्, 'ॐ अग्निदूतमिति' मन्त्रेण-संस्थाप्य, पुष्पचन्दनताम्बूलवस्त्राण्यादाय--

ॐ अद्येत्यादि० अमुकोऽहं कर्तव्यचतुर्थीहोमकर्मणिकृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तुमेभिः पुष्पचन्दनादिभिरमुकशर्म्माणं ब्राह्मणं त्वां ब्रह्मत्वेन * वृणे ॥

इति ब्रह्मणं वृत्वा कुशकण्डिकां यथोक्तां कृत्वा। तन्मध्ये विशेषः। प्रणीता-स्थानादुत्तरतस्ताम्राद्युदपात्रमग्न्यादि

की तरह) दिखाई देते हैं, तो अगस्त्य जी भी क्या बड़े रहे ? आकाश ही बड़ा रहा। फिर उस आकाश को भगवान ने वामन-अवतार धारण कर बलि दमन के समय एक पद में ही माप लिया, तो भगवान् बड़े हुए। वही पुरुषोत्तम भगवान आपके हृदय में बसते हैं, अतः अब हम किससे आपकी तुलना करें। आपसे बढ़कर कौन है ? कोई नहीं ॥ २ ॥

* यदि विवाह के होम का वरण किया हुआ ब्रह्मा हो तो वरण करें, अन्यथा नहीं।

प्रधानाऽऽहुति संस्रवधारणार्थं प्रतिष्ठापयेत् ॥

ततो मनसा प्रजापतिं ध्यात्वा, तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधस्तिस्रो जुहुयात् ॥ तत उपविश्य सपवित्र प्रोक्षण्युदकेनाग्निं तूष्णीं पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे स्थाप्य ब्रह्मणान्वारब्धः पातित दक्षिणजानुः समिद्धतमे ऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहुयात् । तत्राघारादारभ्याहुति चतुष्टये हुतशेषस्य प्रोक्षणी पात्रेत्यागः ॥ ॐ प्रजापत्यादिचतुर्णां मन्त्राणां—प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, मन्त्रोक्ता—देवताः, आज्यहोमे—वि० ॥ ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम ॥ इति मनसा । ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय इत्याघारौ ॥ ॐ अग्नये स्वाहा—इदमग्नये न मम ॥ ॐ सोमाय स्वाहा—इदं सोमाय न मम ॥ इत्याऽऽज्य भागौ ॥

आहुति पञ्चतये नान्वारब्धः ।

(स्थालीपाकहोमः ।)अग्नये प्रायश्चित्त-

इति पञ्चानां परमेष्ठी ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो लिङ्गोक्ता देवताः स्थाली पाकहोमे विनि० ॥ ॐ अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्यै पतिघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय-स्वाहा। इदमग्नये ॥ १ ॥ प्रणीतापात्रा दुत्तरतः स्थापित प्रोक्षण्याः जलपात्रे संस्रव-प्रक्षेपः पञ्चाऽऽहुतीनाम् ॥ पुनस्तद्वत् ॐ वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै प्रजाघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय—स्वाहा इदं वायवे न मम ॥२॥ उदपात्रे ॥ ॐ सूर्य्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै पशुघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा इदं सूर्य्याय न मम ॥३॥ उदपात्रे ॥ ॐ चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै गृहघ्नी

तनूस्तामस्यै नाशाय स्वाहा । इदं चन्द्रमसे न मम ॥४॥ उदपात्रे ॥ ॐ गन्धर्व्व प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै यशोघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय–स्वाहा ॥ इदं गन्धर्वाय न मम ॥५॥ उदपात्रे अन्वारब्धः स्थालीपाकमाज्येनाऽभिघार्य स्रुवेणादाय मनसा प्रजापतिं ध्यात्वा जुहोति ॥ ॐ प्रजापति ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः प्रजापत्यग्नी-देवते, उत्तराङ्गहोमे विनियोगः ॥ ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम ।

अनन्तरं स्रुवेणैवा ऽऽज्य चरुं गृहीत्वा, ब्रह्मणाऽन्वारब्ध–पूर्वकं स्विष्टकृतं जुहुयात् ॥

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ॥

अयमेव स्विष्ट कृद्धोमः ॥ तत आज्येन भूराद्या नवाहुतीः दद्यात् ॥

तत्रच व्याहृतित्रयस्य विश्वामित्र जम-

दग्निभृगव—ऋषयो, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभ-
श्छन्दांसि, अग्निवायुसूर्या-देवता, व्याहृति-
होमे—वि० ॥ ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये ॥
ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे ॥ ॐ स्वः
स्वाहा, इदं सूर्य्याय ॥ ॐ अग्निं प्रज्वलितं
वन्दे, हुताशं जातवेदसम् । सुवर्णवर्णमनलं,
समिद्धं सर्वतोमुखम् ॥ ॐ त्वन्नोऽग्न-इत्य-
स्य वामदेवऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, अग्नीवरुणौ
देवते, प्रायश्चित्तहोमे—वि० ॥ ॐ त्वन्नो-
ऽअग्ने व्वरुणस्य व्विद्वान् देवस्य हेडो ऽअ-
वया सिसीष्ठाः । यजिष्ठो व्विह्नितमः शोशु-
चानो व्विश्श्वा द्वेषा ᳪ सि प्रमुमुग्ध्यस्मत्-
स्वाहा ॥ इदमग्नी वरुणाभ्याम् न मम ॥
ॐ स त्वन्नो ऽअग्ने वमो भवोतीनेदिष्ठो-
ऽअस्या ऽउषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्वोनो व्वरुण
ᳪ रराणो व्वीहि मृडीक ᳪ सुहवो न ऽएधि-
स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम् न मम ॥
ॐ अयाश्चाग्ने—इति—प्रजापतिऋषिर्वि-

राट् छन्दोऽग्निर्देवता, होमे-विनि० ॥ ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाऽअसि ॥ अया नो यज्ञम्वहास्ययानो धेहि भेषज ँ स्वाहा—इदमग्नये अयसे न मम ॥ ॐ ये ते शतमिति—शुनःशेपऋषिर्जगतीछन्दो, वरुणसवितृविष्णुविश्वेदेवा मरुतः स्वर्का देवताः, प्रायश्चित्तहोमे—वि० ॥ ॐ ये ते शतं व्वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नोऽअद्य सवितोत व्विष्णुर्व्विश्श्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्काः-स्वाहा । इदं वरुणाय, सवित्रे, व्विष्णवे, विश्वेभ्यो देवेभ्यो, मरुद्भ्यः, स्वर्केभ्यश्च न मम ॥ ॐ उदुत्तममिति—शुनःशेपऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, वरुणादितीदेवते, प्रायश्चित्तहोमे—वि० ॥ ॐ उदुत्तमं व्वरुण पाशमस्मदवाधमं व्विमद्ध्यम ँ श्रथाय । अथा व्वयमादित्यव्रते तवानागसो ऽअदितये स्याम—स्वाहा ॥ इदं वरुणायादित्या-

यादित्यै च न मम ।। ॐ प्रजापतये—स्वाहा, इदं—प्रजापतये न मम ।। ततः संस्रवं प्राश्य आचम्य, पवित्राभ्यां मार्जनम्, अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः ।। पुनः सदक्षिणातण्डुलपूर्णपात्रं सम्पूज्य, ॐ ब्राह्मणाय नमइत्यपि—सम्पूज्य ।। ब्रह्मणे—पूर्णपात्रदानम् ।। तत्र सङ्कल्पः ।। ॐ अद्येह अमुकशर्म्मा सपत्नीकोऽहं कृतस्यास्य—चतुर्थीकर्मांगहोमकर्मणः सांगतासिद्ध्यर्थं, इदं पूर्णपात्रं सद्रव्यं तुभ्यं सम्प्रददे ।। 'स्वस्तीति'—प्रतिवचनम् ।।

ततः पूर्वस्थापितकलशादुदकमादाय वरो वधूमभिषिञ्चति ।

ॐ आपः शिवा० पुनः-ॐया त इति-प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, वधूर्देवता, अभिषेचने वि० ।। ॐ या ते पतिघ्नी प्रजाघ्नी पशुघ्नी गृहघ्नी यशोघ्नी निंदिता तनूर्जारघ्नी तत ऽएनां करोमि । साजीर्य्य त्वं मया सह ।। श्रीमत्यमुकी देवि! इत्यन्तेन मन्त्रेण ।।

अत्रैव वध्वा "आचारप्राप्तं वर्णाक्षराऽनुकूलं द्वितीयं नामकरणयुक्तम्" ॥ ततः ॐ सुमित्रिया न० ।

इति मन्त्रेण शिरसि किञ्चिज्जलमभिषिञ्चेत् । तथा-'दुर्मित्रिया'० इति मन्त्रेणैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणम् ॥ ततः परिस्तरणक्रमेणाऽऽज्याभिघारितं बर्हिर्गृहीत्वा ॥

ॐ देवा गातुइति—अत्रिर्ऋषिरुष्णिक्छन्दो, मनस्पतिर्देवता, बर्हिर्होमे विनियोगः ॥ ॐ देवा गातु विदो गातुं वित्वा गातुमित । मनसस्पत ऽइमं देवयज्ञ ँ स्वाहा वातेधाः स्वाहा ॥ अथ वरो वधूं हुतशेषं स्थालीपाकं प्राशयति सकृत् ॥ ॐ प्राणैस्त इति प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो, वधूर्देवता, स्थालीपाकप्राशने—वि० ॥ ॐ प्राणैस्ते प्राणान् सन्दधामि ॥१॥ ॐ अस्थिभिरस्थीनिसन्दधामि ॥२॥ मा ँ सैर्मा ँ सानि सन्दधामि ॥३॥ ॐ त्वचा ते त्वचं सन्दधामि ॥४॥ आचारात् ग्रासपञ्चकं

तूष्णीं वधूं प्राशयेत् वरः ॥ अत्राऽवसरे वध्वा दक्षिणस्कन्धस्योपरि स्वदक्षिणभुजस्य पाणितलं निधाय, मन्त्रं पठन् हृदयं स्पृशति—ॐ यत्त—इति—प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो, हृदयं देवता, हृदयाऽऽलम्भने विनियोगः ॥ ॐ यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितं। व्वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतम् ॥

ततः पूर्णाहुति ॥ वरो वध्वा सह उत्थाय, स्रुवस्थघृताक्तफलं दक्षिणहस्ते निधाय।

'ॐ पूर्णादर्वीति'—पूर्णनाभऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता, पूर्णाहुतिहोमो—वि० ॥ ॐ पूर्णा दर्व्वि परापत० इति शिखिनामग्नौ पूर्णाहुतिं विधाय, ॐ त्र्यायुषमिति-नारायणऋषिरुष्णिक् छन्दः, शिवो—देवता, त्र्यायुषकरणे विनियोगः ॥ * ॐ त्र्यायुष-

* वधू को विवाह-दिन में ही त्र्यायुष [भस्मी] दियाजाता है फिर नहीं

ञ्जमदग्नेरिति-ललाटे ॥ ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति-ग्रीवायाम् ॥ ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषमितिदक्षिणबाहुमूले । तत्तेऽअस्तु त्र्यायुषमिति हृदि ।

इति त्र्यायुषं कृत्वा अञ्चलग्रन्थिं कङ्कणञ्चमोचयेदाचारात्' । *कङ्कणं मोचयाभ्यह०' इति, दक्षिणाभूयसीतिलकमन्त्रपाठाश्च ॥

❀ अथ द्विरागमनविधिः ❀

चरेदथौजहायने घटालिमेखगे रवौ० इत्यादि शुभेह्नि फेणिकादिकं पाचयित्वा पेटिकायां निधाय, शिविकाद्यं यानमारुह्य, श्वशुरगृहं गत्वा, श्वशुरावभिवन्द्य, तत्कृतार्चां स्वीकृत्य, भोजनं विधाय, आदौ गणपतिं ध्यात्वा, शुभे लग्ने वधूं प्रस्थाप्य, श्वशुरावभिवन्द्य, ताभ्यां कृततिलकः पुरस्कृततद्दत्तयौतुकः सवधूको निजगृहमागत्य स्वदेशरीत्या देहलीसमीपे मिथोऽञ्चलग्रन्थिं सम्पाद्य, स्वासने समुपविश्य, स्ववामभागे पृथक्-पीठे वधूमुपवेश्य, आचभ्य, अर्घं संस्थाप्य, प्राणानायम्य, सङ्कल्पं कुर्यात् ॥

ॐ अद्येह अमुकशर्म्मा सपत्नीकोऽहं, मम द्विरागमनाङ्ग-गृहप्रवेशकर्मणि श्रीगणपते-

---

* कुछ विद्वान प्रचलन से इसी समय ही अञ्चल-ग्रन्थि-कंकण मोचन कराते हैं ।

द्वारमातृ्णाञ्च पूजनं करिष्ये ॥

इति संकल्प्य, यथाविधि गणेशं द्वारमातृ्श्च सम्पूज्य, लग्नदानं कुर्यात् ।

अद्येह—अमुकशर्म्मा सपत्नीकोऽहं मम द्विरागमनाङ्गगृहप्रवेशलग्नाद्यत्र कुत्रस्थानस्थितानामादित्यादिनवग्रहाणां शुभानां शुभफलाधिक्यप्राप्तये, दुष्टानां दुष्टदोषोपशान्त्यर्थमिदं सुवर्णं तन्निष्क्रयीभूतं द्रव्यं वा पुरोहितदैवज्ञादिब्राह्मणेभ्यो दातुमहमुत्सृजे॥

ॐ तत्सन्नममेति संकल्प्य, दक्षिणां दत्वा, स्वस्तिवाचनपुरः सरं गृहं प्रविश्य, भित्ति लिखितजीवमातृ्णां सविधे गत्वा, विधिवत्ताः सम्पूज्य, आचारात् कलशं संस्थाप्य, वध्वा सम्वृतः प्रदक्षिणीकृत्य, दक्षिणासंङ्कल्पं कुर्यात् ॥

ॐ अद्येह—अमुकशर्मा सवधूकोऽहं द्विरागमनाङ्गगृहप्रवेशकर्मण उत्तराङ्गत्वेन भित्तिलिखितकल्याण्यादि— जीवमातृपूजाकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यै इमां दक्षिणां ब्राह्मणाय दास्ये ॥ ॐ तत्सत् ॥

दक्षिणां दत्वा,अभिषेकतिलकमन्त्रपाठादिकं कारयित्वा,

अञ्चलग्रन्थि विमोच्य, तत्रैव दधिगुडफेणिकादिकं भुक्त्वा, मुखञ्च प्रक्षाल्य, वधूवरौ यथासुखं विहरेताम् ॥

❀ अथ कुम्भविवाह ❀

तत्र हेतुः ॥ बालवैधव्ययोगे तु कुम्भादिप्रतिमां भुवि । कृत्वा लग्नं ततः पश्चात्कन्योद्वाहं समाचरेत् ॥ विवाहात् पूर्वकाले च, चन्द्रताराबलान्विते । विवाहोक्ते शुभे लग्ने, कन्यां कुम्भेन चोद्वहेत् । तत्र पुनर्भूत्वदोषाभाव उक्ता विधानखण्डे—स्वर्णादिपिप्पलानां च, प्रतिमा विष्णुरूपिणी । तया सह विवाहे तु, पुनर्भूत्वं न जायते ॥ इति ॥ (तत्र प्रयोगः) ॥

पूर्वं स्वस्तिवाचन पूर्वकं गणेशं सम्पूज्य कन्यादानकर्तारः पित्रादयः देशकालौ संकीर्त्य ॥

ॐ अद्येह, अमुकगोत्राया अमुकराशेरस्याः कन्याया अमुकस्थानस्थितदुष्टग्रहजनितवैधव्यदोषोपशान्तये वैधव्यहरणार्थं कुम्भविवाहं करिष्ये । तत्पूर्वांगत्वेन मातृपूजाऽभ्युदयिकपुण्याहवाचनानि करिष्ये ॥

इति--सङ्कल्प्य ॥ मातृपूजादिपुण्याहवाचनान्तं कर्म कृत्वा, कलशे नवग्रहानावाह्य सम्पूज्य, तस्मिन्काले सुवर्णप्रतिमायां विष्णुवरुणौ अग्न्युत्तारणपूर्वकं पञ्चाऽमृतेन संस्नाप्य।

'ॐ एतन्ते०' इत्यादि ॐ भूर्भुवः स्वः, सुवर्णप्रतिमायां विष्णुवरुणौ सुप्रतिष्ठितौ भवतम् ॥ पूजा—संकल्पः ॥ ॐ अद्येह अमुकगोत्रा अमुकराशिरमुकदेव्यहं, वैधव्यदोषपरिहारार्थ—सुवर्णप्रतिमायां विष्णुवरुणयोः पूजनञ्च करिष्ये ॥ इति संकल्प्य। ॐ विष्णवे नमः ॥ ॐ वरुणाय नमः ॥ इति नाममन्त्राभ्याम् ॥ ॐ व्विष्णोरराटमसि व्विष्णोः श्नप्त्रेस्थो व्विष्णोः स्यूरसि व्विष्णोर्ध्रुवोसि। व्वैष्णवमसि व्विष्णवे त्वा ॥ इति ॥ पुनः ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो व्वरुणेहवोध्युरुश ᳪ समान ऽ आयुः प्रमोषीः ॥ इति वैदिकमन्त्राभ्यां च पाद्यादिनीराजनान्तं विष्णुवरुणौ सम्पूज्य,प्रार्थयेत् ॥ देहि विष्णो !

वरं देव, कन्यां पालय दुःखतः ॥ पतिञ्जी-
वय कन्यायाश्चिरं देव यथासुखम् ॥१॥
अथ वरुणप्रार्थना ॥ वरुणाङ्गस्वरूपस्त्वं,
जीवनानां समाश्रयः । पतिं जीवय कन्या-
याश्चिरं पुत्रसुखं कुरु ॥२॥ इतिसम्प्रार्थ्य ॥
विष्णुवरुणस्वरूपिणे कुम्भाय इमां श्रीरू-
पिणीं वरार्थिनीं कन्यां समर्पयामि ॥
परित्वेत्यादि—विष्णुप्रतिमास्थ १० दश
मन्त्रैरधस्तादुपरिष्टा मन्त्रावृत्त्या दशत-
न्तुकेन सूत्रेण कन्यां कुम्भञ्च परिवेष्ट्य,
ततः कुम्भञ्च निःसार्य्य विसृजेत् सलिला-
शये पञ्चपल्लवसहितेन जलेन । ॐ समुद्र
ज्येष्ठा—इत्यादिमन्त्रैः कन्यामभिषिच्य ॥
दक्षिणासङ्कल्पं कुर्यात् ॥ ॐ अद्येहेत्यादि-
अमुकराशेः कन्यायाः अमुकस्थानस्थितदु-
ष्टग्रहसूचितवैधव्यदोषपरिहारार्थं सौभाग्य-
फलप्राप्तये, कुम्भविवाहकर्मणि सुवर्णप्रति-
मायां विष्णुवरुणयोः पूजनकर्मणः साद्गु-

थ्यार्थमिमां सुपूजितां विष्णुवरुणयोः प्रतिमां सदक्षिणामाचार्याय दास्ये, इमां भूयसीं दक्षिणाञ्च ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दास्ये, तथा सिद्धान्नेन यथासंख्याकान् ब्राह्मणाँश्च भोजयिष्ये। ॐ तत्सत् ॥इति॥ संकल्प्य, आचार्य्याय प्रतिमां सदक्षिणां दत्त्वा, ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दक्षिणां दत्त्वा, अभिषेकतिलकमन्त्रपाठादिकं कारयित्वा, ब्राह्मणेभ्यो भोजनं च दत्त्वा, यदि कन्याविवाहं कुर्य्यात् तदा शुभम्भवेत् ॥

❀ अथ विष्णुप्रतिमाविवाहविधिः ❀

॥ तत्र हेतुः ॥ कन्यायाः जन्मकालीनक्रूरग्रहादिसूचितवैधव्ययोगनाशाय विष्णुप्रतिमाविवाहं पूर्वं विधाय, भूयः पाणिग्रहणं समाचरेत् ॥ तत् श्लोकेन वर्णयामि ॥

विवाहवैधव्यग्रहा यदा स्युस्तदा प्रकृत्या परमेश्वरस्य ॥ संस्कृत्यसंस्कार विधेर्विशेषां न दोषलेशो ग्रहणे त्वमुष्या—इति ॥

तत्र कर्ता मङ्गलं स्नात्वाऽहते वाससी परिधाय, धृतमङ्गलतिलकः शुभासने उपविश्याचम्य सामग्रीं सम्पाद्य,

तत्रादौ कार्यनिर्विघ्नार्थं गणेशादिपञ्चाङ्गदेवताः सम्पूज्यः।

ॐ अद्येत्यादौ—संकीर्त्य—अमुकोऽहममुकराशेरस्याः कन्याया जन्मसमयलग्नादेवैंधव्यसम्भावनासूचकैर्ग्रहैः सूचिताऽरिष्टनिवृत्तये, सौभाग्यप्राप्तये, विष्णुप्रतिमया सह विवाहं करिष्ये ॥ प्रतिमादानञ्च करिष्ये ॥ इति सङ्कल्प्य ॥ आचार्यं सम्पूज्य वरणं कुर्यात् ॥ ततस्ताम्रमयपात्रे विष्णुप्रतिमाया अग्न्युत्तारणपूर्वकम्—'ॐ एतन्त'—इति प्रतिष्ठाप्य ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः, विष्णुप्रतिमायां विष्णो ! इहागच्छ सुप्रतिष्ठितो वरदो भव ॥ इति प्रतिष्ठां विधाय ॥ ॐ अद्येत्यादि० देशकालौ स्मृत्वा, अमुकगोत्राया अस्याः कन्यायाः सम्भावितवैधव्यदोषनाशहेतवे, सौभाग्यसमृद्धये, सुवर्णप्रतिमायां श्रीविष्णोः पूजनं करिष्ये ॥ इतिसङ्कल्प्य ॥ विष्णुं ध्यात्वा ॥ ॐ तद्विष्णोः परमं पद ँ सदा पश्यन्ति सूरयः ॥ दिवीव

चक्षुराततम् ॥ ॐ त्रीणि पदा व्विचक्रमे व्विष्णुर्गोपाऽअदाभ्यः ॥ अतो धर्म्माणि धारयन् ॥ ॐ तद्विप्रासो व्विपन्यवो जागृवा ँ सः समिन्धते व्विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ इति वैदिकमन्त्रेण ॥ ॐ विष्णवे नम—इति नाममन्त्रेण च आवाहनादिनीराजनान्तं सम्पूज्य, प्रार्थयेत् ॥ ॐ देहि विष्णो ! वरं देव, कन्यां पालय दुःखतः। पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रसुखं कुरु ॥ ततः ॥ ॐ परि त्वागिर्वणो गिर ऽइमा भवन्तु व्विश्श्वतः । व्वृद्धायुमनुव्वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १ ॥ ॐ इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि । ऐन्द्रमसि व्वैश्वदेवमसि ॥ २ ॥ ॐ व्विभूरसि प्रवाहणो व्वह्निरसि हव्यवाहनः । श्वात्रोसि प्रचेतास्तुथोसि व्विश्ववेदाः ॥ ३ ॥ ॐ उशिगसिकविरङ्घारिरसि बम्भारिखस्यूरसि द्रवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्ज्जालीयः सम्राडसि

कृशानुः परिषद्योसि पवमानो न भोसि प्रतक्वा विष्टोसि हव्यसूदनऽऋतधामासि स्वर्ज्ज्योतिः ॥४॥ ॐ समुद्रोसि विश्वव्यचा ऽअजोस्येकपादहिरसि बुध्न्यो व्वागस्यैन्द्रमसि सदोस्पृतस्य द्वारौ मामासन्तापमध्वनामध्वपते प्रमातिरस्वस्ति मेस्मिन्पथि देवयाने भूयात् ॥५॥ ॐ मित्रस्य मा चक्षूषेक्षध्वमग्ग्नयः सगराः सगरास्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पातमाग्ग्नयः। पितृत माग्नयो गोपायत मा नमो वोस्तुमा मा हि ँ सिष्ट ॥ ६ ॥ ॐ ज्ज्योतिरसि व्विश्वरूपं व्विश्वेषां देवाना ँ समित्। त्वं ँ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोत्भ्योन्यकृतेभ्य ऽउरु यन्तासि व्वरूथ ँ स्वाहा जुषाणो ऽअप्तुराज्यस्य व्वेतु स्वाहा ॥७॥ ॐ अग्ग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्श्वानि देव व्वयुनानि व्विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम-

ऽउक्ति व्विधेम ॥८॥ ॐ अयन्नोऽअग्निर्व-
रिवस्कृणोत्त्वयम्मृधः पुरः एतु प्रभिन्दन् ।
अयं व्वाजाञ्जयतु व्वाजसा तावय ँ शत्रू-
ञ्ज यतु जर्हृषाणः स्वाहा—इति ॥९॥ ॐ
उरुव्विष्णो व्विक्रमस्वोरुक्षयाय नमस्कृधि।
घृतङ्घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर—
स्वाहा ॥१०॥ इति मन्त्रैरधस्तादुपरिष्टाच्च
मन्त्रावृत्या कन्यां प्रतिमाञ्च दशतन्तुसू-
त्रेण परिवेष्टयेत् ॥

ततः किञ्चत् स्थित्वा प्रतिमां निः सार्य दक्षिणां दद्यात् ॥ ततो विष्णुप्रतिमा—दानम् ॥

ॐअद्येत्यादि०अमुकाऽहं देवी स्ववैधव्यादि-
दोषपरिहारार्थं सौभाग्यसमृद्धये इमां सौ-
वर्णीं सुपूजितां विष्णुप्रतिमाममुकगोत्राय
ब्राह्मणाय तुभ्यं सम्प्रददे ॥ इति प्रतिमां
गृहीत्वा ब्राह्मणसन्निधौ । यन्मया प्राचि
जनुषि, घ्नन्त्या पतिसमागमम् । विषोप-
विषशस्त्राद्यैर्हतो वापि विरक्तया ॥ १ ॥

प्राप्नुवन्त्या महाघोरं, यशः सौख्यधनापहम्। वैध० याद्यतिदुःखौघं तन्नाशय सुखाप्तये ॥२॥ बहुसौभाग्यलब्ध्यै च, महाविष्णोरितां तनुम्। सौवर्णीं निर्मितां शक्त्या, तुभ्यं सम्प्रददे द्विज ! ॥३॥ इति द्विजकरे प्रतिमां दत्वा ॥ अनघाहमस्मि—इति निर्वदेत्॥ ब्राह्मणश्च ॥ द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा गृह्णातु ॥ ॐ स्वस्ति ॥ ॐ कोऽदादति पठित्वा 'अनघा भव बाले'—इति निर्वदेत् ॥ ततोऽद्यकृतैतत्प्रतिमादानप्रतिष्ठासिद्धार्थमिदं-सुवर्णमन्यद् द्रव्यं वा ब्राह्मणाय दास्ये ॥ ब्राह्मणश्च—'सौभाग्यवती भव कल्याणि चिरं सुखन्तेऽस्त्विति'—वदेत् ॥

ततोऽभिषेकतिलकपाठादिकं कारयित्वा, पूजितदेवानां विसर्जनं कुर्यात् ॥ इति '।

❀ अथाऽर्कविवाहपद्धतिः ❀

तृतीयविवाहात् प्राक् दिनचतुष्टयादिव्यवहिते रविवासरे शनिवासरे वा हस्तर्क्षेऽन्यस्मिन् शुभर्क्षे शुभतिथौ चन्द्रानु-

कूल्यादिसहिते शुभदिने प्राच्यामुदीच्यां वा फलपुष्पाक्षतादियुक्तोऽर्कसविधे गत्वा तदधस्तात्स्थण्डिलं निर्माय, अर्कसमीपमुपविश्याऽर्कविवाहसामग्रीं सम्पाद्य, गणेशादिपञ्चाङ्गदेवताः-सम्पूज्य, प्रधानसङ्कल्पं कुर्यात् ॥ ॐ अद्येहेत्यादि—अमुकोऽहं, मम तृतीयमानुषीपरिणयनदोषपरिहारार्थं शुभफलप्राप्तये तृतीयविवाहाधिकारसिद्ध्यर्थमर्कविवाहं करिष्ये ॥ तत्पूर्वाङ्गत्वेन मातृपूजानान्दीश्राद्धपुण्याहवाचनानिकरिष्ये ॥ तदंगत्वेन आचार्य्यस्य पूजनं वरणञ्च करिष्ये ॥ इति सङ्कल्पः ॥

आचार्य्यस्य पूजनं वरणञ्च कृत्वा, ततो वरः अर्कपुरतस्तिष्ठन् सूर्य्यं प्रार्थयेत् ॥

ॐ त्रिलोकव्यापिन् सप्ताश्वच्छायया सहितो रवे । तृतीयोद्वाहजं दोषं, निवारय सुखं कुरु ॥ इति सम्प्रार्थ्यसूर्य्यमेवम्—ततोऽर्कवृक्षे छायासहितमर्कमावाह्य, ॐ आकृष्णे-

नेति-पाद्यादिभिः सम्पूज्य, श्वेतवस्त्रसूत्राभ्यामर्कमावेष्ट्य, "ॐ आपो हिष्ठेत्यादिमन्त्रै"--रभिषिच्य, गुडौदनं ताम्बूलञ्च समर्प्य, प्रदक्षिणीकुर्वन् मंत्रं पठेत् ॥ मम प्रीतिकरा चेयं, मया सृष्टा पुरातनी । अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टा, अस्माकं परिरक्षतु ॥ इति जपित्वा। पुनः प्रदक्षिणीकृत्य प्रार्थयेत् ॥ ॐ नमस्ते मंगले देवि ! नमः सवितुरात्मने ! त्राहि मां कृपया देवि, पत्नी त्वं मे इहागता ॥ ॐअर्क त्वं ब्रह्मणा सृष्टः, सर्वप्राणिहिताय च । वृक्षाणामादिभूतस्त्वं, देवानां प्रीतिवर्धन ! ॥ तृतीयोद्वाहजं दोषं, निवारय सुखं कुरु ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ सङ्कल्पः ॥ अद्य० कश्यपगोत्रकाश्यपवात्स्यनैध्रुवेति त्रिप्रवरान्विताऽऽदित्यप्रपौत्रीं, सवितुः पौत्रीं ममाऽर्कस्य पुत्रीमिमां कन्याम् अमुकगोत्राय अमुकप्रपौत्राय अमुकपौत्राय अमुकपुत्राय अमुकनाम्ने वराय ॥ इति गोत्रोच्चारणं

कृत्वा, ततः सुमुहूर्ते कन्यां निरीक्ष्य, स्वस्तिवाचनं पठित्वा, तत्राऽऽचार्यो विप्रैः सहाशिषो दत्त्वा,ततो आचार्य्यः पूर्ववद्गोत्रोच्चारं कुर्य्यात् ॥ कश्यपगोत्राम् आदित्यस्य प्रपौत्रीम्, सवितुः पौत्रीम्, ममार्कस्य कन्याममुकगोत्राय अमुकशर्मणे वराय तुभ्यमहं सम्प्रददे ॥ इति वरहस्ते जलं दत्वा दानवाक्यं पठेत् ॥ अर्ककन्यामिमां विप्र !, यथाशक्तिविभूषिताम् । गोत्राय शर्मणे तुभ्यं,दत्तां विप्र ! समाश्रयः ॥इति॥ वरस्तु ॥ यज्ञो मे कामः समृद्ध्यताम्,धर्म्मो मे कामः समृद्ध्यताम्, यशो मे कामः समृद्ध्यताम्, इत्यक्षतैस्त्रिवारं सम्पूज्य,सूत्रेण कङ्कणबन्धनं कृत्वा, गायत्र्या अर्कं सूत्रेण दशवारं पञ्चवारं वा, ॐ परि त्वेत्यादि (१०) विष्णुप्रतिमाविवाहस्य मन्त्रैः सूत्रमावेष्ट्य, तत्सूत्रं पञ्चगुणं कृत्वा, अर्कस्कन्धे बद्ध्वा, ॐ बृहसोमेति-रक्षां कृत्वा,

ततो वरः अष्टदिक्षु कलशान् संस्थाप्य, वस्त्रेण त्रिगुणसूत्रेण वा कलशकण्ठे आवेष्ट्य हरिद्रादिकं निक्षिप्य, तेषु कलशेषु, ॐ इदं विष्णुरिति--विष्णुमावाहयेत् ॥ ॐ इदं व्विष्णुर्व्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पा ᳪ सुरे स्वाहा ॥

इत्यावाह्य ॥ अर्कस्योत्तरे स्थण्डिले पञ्चभूसंस्कारपूर्व्वकमग्निं संस्थाप्य, ॐ एतन्त'-इत्यादिना वरदनामाग्निं प्रतिष्ठाप्य, पाद्यादिभिः सम्पूज्य, आघाराऽऽज्यभागौ हुत्वा, द्रव्यत्यागं कुर्य्यात् ॥

ॐ अद्येह० अर्कविवाह कर्म्मणाऽहं यक्ष्ये ॥ तत्र ॥ प्रजापतिमिन्द्रमग्निं सोमं बृहस्पति-मग्निमग्निवायुं सूर्य्यंप्रजापतिञ्चाज्येनाहं यक्ष्ये ॥ ततः प्रधान होममन्त्रौ ॥ ॐ सङ्गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग ऽइमे दर्प्पमणं निनाय । जने मित्रो न दम्पतीऽअनक्ति बृहस्पतये व्वाजया सूरिवाजौ-स्वाहा । इदं बृहस्पतये ॥ ॐ यस्मै त्वा कामकामाय व्वय ᳪ सम्राडयजामहे । तमस्मभ्यं कामं

दत्वाऽथेदं त्वं घृतं पिव-स्वाहा ॥ इदमग्नये ॥ ततो व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्जुहुयात् ॥ ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये न मम ॥ ॐ भुवः स्वाहा—इदं वायवे न मम ॥ ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्य्याय न मम ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम ॥ ततो—भूरादिनवाहुतिहोमं विधाय, पूर्णपात्रदानान्तं कर्म्म समाप्य, अर्कं प्रदक्षिणीकृत्य प्रार्थयेत् ॥ मया कृतमिदं कर्म्म, स्थावरेषु जरायुणा । अर्काऽपत्यानि मे देहि, तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥

इति सम्प्रार्थ्य ॥ शान्तिसूक्तं पठित्वा ॥ अर्कं प्रतिष्ठितं सूर्य्यं विसृज्य, आचार्याय गोयुग्मं दक्षिणां दद्यात् ॥ अन्येभ्योऽपि ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या दक्षिणां दत्वा, पूजावस्तूनि गुरवे [आचार्याय] दत्त्वा, दिनचतुष्टयमर्कं कुम्भाँश्च रक्षयेत् ॥ ततः पञ्चमेन्हि प्रभाते पूर्ववत्प्रपूज्य । विसृज्य चैव होमाग्निं, विधिना मानुषी पराम् । उद्वहेदन्यथा नैव, पुत्रपौत्रसमृद्धिमान् ॥

गोयुग्मं दक्षिणां दद्यादाचार्य्याय च भक्तितः । इतरेभ्योऽपि विप्रेभ्यो, दक्षिणा-

ञ्चाऽपि शक्तितः । तत्सर्वं गुरवे दत्त्वा, पुण्याहं वाक्यमाचरेत् ॥ एवमर्कविवाहं कृत्वैव, तृतीय--विवाहं कुर्य्यात् ॥ इति अर्क विवाह समाप्तः ॥



मुद्रक—गोवर्द्धन प्रेस, काजी पाड़ा मथुरा।